विश्व हिंदी पत्रिका
2021
विश्व हिंदी सचिवालय
मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका
2021

संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423,
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : +230-6600800

ISSN No. : 1694-2477

सहायक संपादक
श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी

संपादन सहयोग
डॉ. वेद रमण पांडेय, आई.सी.सी.आर., हिंदी पीठ, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
डॉ. अलका धनपत, वरिष्ठ प्राध्यापिका, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

टंकण टीम
श्रीमती विजया सरजु, श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु,
श्रीमती जयश्री सिबालक-रामसर्न

निवेदन
विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना
आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा
आर. एस. प्रिंट्स

कवर डिज़ाइन
काटे प्रिंटिंग लिमिटेड, मॉरीशस

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित

संपादकीय

पंचतत्त्वों पर निर्भर हिंदी का अस्तित्व

सम्पूर्ण भौतिक जगत् प्रकृति के पाँच तत्त्वों से निर्मित है - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। तुलसीदास ने रामचरितमानस के किष्किन्धाकाण्ड में लिखा है -

"क्षिति जल पावक गगन समीरा
पंच रचित यह अधम सरीरा।"

मनुष्य का शरीर अथवा पृथ्वी के समस्त जीवों का शरीर उपर्युक्त पाँच तत्त्वों से सृजित है। ये पाँच महाभूत जब संतुलन में रहकर सामूहिक रूप से कार्य करते हैं, तब शरीर स्वस्थ और सुरक्षित रहता है। इन पंचतत्त्वों में किसी भी एक तत्त्व का बाहर निकल जाने से, शेष चार तत्त्व भी नहीं रहते हैं, जिससे शरीर की मृत्यु हो जाती है। जिस प्रकार पृथ्वी की सत्ता और जीवों के अस्तित्व को बनाए रखने में पाँच तत्त्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, उसी प्रकार हिंदी भाषा का अस्तित्व भी पाँच तत्त्वों पर निर्भर है - प्रेम, श्रद्धा, सेवा, त्याग और विश्वास।

हिंदी भाषा यदि सम्पूर्ण भारत में संपर्क भाषा बन पायी है और विश्व स्तर पर अपनी पहचान बना पायी है, तो इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दी प्रेमियों ने अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन में इस भाषा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। मनुष्य जिससे प्रेम करता है, उसे देखना और सुनना पसंद करता है और उसी के साथ अपना अस्तित्व जोड़ने की अभिलाषा करता है। उन्नीसवीं सदी में भारत से विश्व के कोने-कोने में जा बसने वाले शर्तबंद मज़दूरों ने यह अनुभव किया कि उनकी मातृभूमि तो छूट गयी है, पर यदि उनकी हिंदी भाषा और इस भाषा से जुड़ी संस्कृति भी छूट जाएगी, तो जीवन में भारी रिक्तता आ जाएगी। अपरिचित भूमि में शासकों का अनुचित व्यवहार सहते हुए भारतीय आप्रवासियों ने हिंदी को बाहरी आघातों से बचाए रखने का प्रण लिया। घुटने टेकने या हारने का नाम प्रेम नहीं होता है। प्रेम बाहर की परिस्थितियों पर भी निर्भर नहीं करता है। प्रेम तो भीतर होता है। भारतीय आप्रवासियों की धड़कनों और साँसों में हिंदी प्रेम बसा था। विशुद्ध भाषा-प्रेम के कारण उन्होंने अभावों के बीच भी पूर्णता की अनुभूति की। संध्याकाल या रात्रि के समय पेड़ के नीचे अथवा 'बैठका' में हिंदी पढ़ते और सीखते हुए वे अपने हिंदी प्रेम को सींचते रहे। फलस्वरूप विभिन्न भू-खण्डों में हिंदी के अनेक विद्यार्थियों, शिक्षकों, लेखकों, पत्रकारों आदि का जन्म होता रहा। आज भी भारतीय आप्रवास का हिंदी समुदाय हिंदी में अभिव्यक्ति करना चाहता है और हिंदी की प्रमुख डोर से ही अलग-अलग देशों में बसे भारतीय वंशज एक-दूसरे से और भारत से अभिन्न रूप से बंधे हुए हैं।

भाषा केवल प्रेम करने योग्य नहीं होती है; अपितु वह पूजा एवं सम्मान करने योग्य होती है। हिंदी के प्रति पूज्य भाव और श्रद्धा भाव भारत में उसी समय उमड़ चुका था, जब साधु-संत-महात्मा हिंदी में धर्म का प्रचार करते हुए पूरे देश में भ्रमण करने लगे थे। धर्म से जुड़ने वाली हिंदी श्रद्धा का पात्र बनी। अनेक धर्म-प्रचारक भारत से उन देशों में पहुँचे, जहाँ भारतीय शर्तबन्द मज़दूर निवास कर रहे थे। रामचरितमानस, हनुमान चालीसा, गीता आदि धर्म ग्रंथों के आधार पर भारतीय आप्रवासी पहले से ही हिंदी में कथा बाँचने की आदत का पोषण कर चुके थे। धर्म-प्रचारकों का पदार्पण होने पर भारतीय आप्रवास में शुद्ध हिंदी में धर्म-प्रचार होने लगा। शर्तबन्द मज़दूरों को अपनी हिंदी का परिष्कार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ और हिंदी के प्रति श्रद्धा का विकास हुआ। प्रेम और श्रद्धा के आधार पर ही हिन्दी धार्मिक अनुष्ठानों और सांस्कृतिक उत्सवों से होते हुए समाचार-पत्रों, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर और इंटरनेट पर अपनी उपस्थिति बनाती रही और अंततः विश्व भाषा बनी।

जहाँ सेवा न हो, वहाँ हिंदी के प्रति प्रेम और श्रद्धा का कोई अर्थ नहीं रहता है। हिंदी के उत्थान के लिए अभियान करना हिंदी की सेवा करना है। भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम विशेष आदर से लिया जाता है, क्योंकि उन्होंने अंतिम सांस तक हिंदी की सेवा की। हिंदी का नया स्वरूप गढ़ने और राष्ट्रभाषा के रूप में उसे प्रतिष्ठित करने की दिशा में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का उपयोग करते हुए अपनी लेखनी चलाई। उनकी हिंदी सेवा का प्रभाव इतना प्रबल था कि उनकी मित्र-मंडली में आने वाले लोग भी हिंदी के सेवक बन गए थे। चौंतीस वर्ष की अल्प आयु वाले जीवन में ही भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य का नक्शा बदल दिया और आधुनिक हिंदी के वे पितामह बने। उनकी जन्मशती-समारोह का उद्घाटन करते हुए कवयित्री महादेवी वर्मा ने यह उद्‌गार प्रकट किया था –

"जो कुछ शंकराचार्य ने धर्म की दृष्टि से किया, जो दयानंद ने आर्यवाणी के लिए किया, जो विवेकानंद ने दर्शन के लिए किया, वही भारतेंदु ने हिंदी साहित्य के लिए किया।"

जहाँ सेवा-भाव हो, वहाँ हिन्दी का संवर्धन करने के हज़ार उपाय दिख जाते हैं। विश्व में कई साहित्यकार सेवा-भाव से हिन्दी में साहित्य-सृजन कर रहे हैं। कई शिक्षक सेवा-भाव से हिंदी का अध्यापन कर रहे हैं। कई स्वैच्छिक संस्थाएँ सेवा-भाव से हिंदी का सुव्यवस्थित प्रचार कर रही हैं और कई देशों की सरकारें सेवा-भाव से हिंदी-विकास की सुविचारित योजनाएँ बना रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व हिंदी परिवार के सदस्य यह समझते हैं कि हिंदी के संवर्द्धन का मूल मन्त्र 'सेवा-भाव' है।

सेवा-भाव के साथ त्याग जुड़ा होता है। भाषा की वृद्धि करना एक ऐसा ऊँचा लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति के लिए निजी सुखों व स्वार्थों को उत्सर्ग करने की भी आवश्यकता होती है। एक साहित्यकार ने स्वयं के खर्च पर अपनी पुस्तक का प्रकाशन किया । पुस्तक-लोकार्पण के अवसर पर वे उपस्थित अतिथियों को अपनी पुस्तक की प्रतियाँ मुफ़्त में बाँटने लगे, तो एक अतिथि ने प्रश्न किया -

"इस पुस्तक का मूल्य क्या है? आप इसे बेच क्यों नहीं रहे हैं?"

साहित्यकार ने उत्तर दिया -

" इस पुस्तक का कोई मूल्य नहीं लगाया गया है, क्योंकि इसे मात्र बाँटने के विचार से प्रकाशित किया गया है।

अतिथि ने आश्चर्य से पूछा -

"आप यदि पुस्तक को मुफ़्त में बाँटेंगे, तो आपका खर्च कैसे निकलेगा?"

साहित्यकार ने सहज भाव से उत्तर दिया -

"मैं जीवन भर हिंदी से ही कमाता रहा हूँ। अपनी कमाई का एक अंश अब मैं हिंदी के हित में देना चाहता हूँ।"

हिंदी के कल्याणार्थ अपने समय, ऊर्जा और धन का त्याग करने वाले अनेक उदार जन इस धरती पर पूर्व में हुए, आज भी हैं और आगे भी होंगे। हिंदी प्रेमियों में त्याग-भाव जितना प्रगाढ़ होगा, विश्व- पटल पर हिंदी उतना ही चमकेगी।

भाषा मातृतुल्य होती है। एक बन्दर का बच्चा अपनी माँ से चिपका रहता है। उसे विश्वास है कि माँ के साथ वह सुरक्षित रहेगा। उसकी रक्षा कब, कहाँ और कैसे की जाएगी, इसका निर्णय वह अपनी माँ पर छोड़ देता है। एक युवक ने हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का निर्णय किया। उसके मित्रों ने पूछा -

"हिंदी में बी.ए. करने के बाद तुम्हें क्या अच्छी नौकरी मिल सकेगी?"

युवक ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, क्योंकि हिंदी भाषा उसे नौकरी दिला पाएगी कि नहीं, यह उसके लिए व्यर्थ का विवाद था। उसकी दृष्टि में हिंदी निरर्थक विवादों से परे थी। इसीलिए हिंदी में उच्च अध्ययन करने का निर्णय लेते समय उसने कोई तर्क या संदेह नहीं किया, अपितु मात्र हिंदी पर विश्वास किया । उसे यह अटल विश्वास था कि हिंदी उसे धोखा नहीं देगी। हिंदी सीखने से उसे कोई हानि नहीं होगी, अपितु हिंदी उसे अवश्य ही ऊपर उठाएगी। जीवन का सबसे बड़ा बल विश्वास से मिलता है। जहाँ विश्वास है, वहाँ दृढ़ता आती है और विश्वास से ही महान् उपलब्धि भी होती है।

प्रेम, श्रद्धा, सेवा, त्याग और विश्वास हिंदी के पाँच आवश्यक पौष्टिक तत्त्व हैं, जो बाहरी स्रोत से उपलब्ध नहीं होते हैं, अपितु मनुष्य के अंतर में उभरते और विकसित होते हैं। इन पंचतत्त्वों का सही अनुपात में संश्लेषण और विकास होगा और ये संतुलित व सामूहिक रूप से कार्य करेंगे, तो हिंदी का अस्तित्व निश्चय ही सुरक्षित होगा। हिंदी के एक नए युग की भी रचना होगी और हिंदी भाषा विश्व में अग्रणी बनेगी।

डॉ. माधुरी रामधारी
उपमहासचिव

अनुक्रम

हिंदी : उद्भव एवं विकास

1.	संयुक्त राष्ट्र संघ की राजभाषाएँ और अनुवाद	- श्री सुनील भुटानी	2
2.	हिंदी प्रदेश की जनपदीय भाषा मगही	- डॉ. विजया सिंह	5
3.	उज़्बेकिस्तान में हिंदी के बढ़ते कदम	- डॉ. कमोला रख़्मतजानोवा	11
4.	हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता और प्रवासी साहित्य का अवदान	- डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा	14
5.	असम में बहती हिंदी की अविरल धारा	- डॉ. उमा देवी	20

हिंदी : लिपि, साहित्य एवं संस्कृति

6.	गंगा प्रसाद विमल के साहित्य में हाशिए के लोग	- डॉ. जयप्रकाश कर्दम	27
7.	भवानी प्रसाद मिश्र : तुम लिखते हो, मैं बोलता हूँ	- श्री बृजराज सिंह	32
8.	अमेरिकी हिंदी कहानियाँ	- डॉ. मुनिल कुमार वर्मा	39
9.	भारतीय साहित्य का प्रतिफलित आशय	- डॉ. मनीष कुमार मिश्रा	46
10.	हिंदी कविता में कश्मीर	- श्री उमर बशीर	51
11.	रामायण और रामचरितमानस : विश्व के पाँचों भूखंडों में	- प्रो. विजयकुमारन सी.पी.वी.	58
12.	मॉरीशस में महिला साहित्यकार और उनका लेखन	- डॉ. नूतन पाण्डेय	70
13.	कवि गिरिधर की प्रासंगिकता	- डॉ. लक्ष्मी झमन	79
14.	फ़िजी में हिंदी साहित्य	- श्रीमती श्रद्धा दास	83

हिंदी का ई-संसार और जन-माध्यम

15.	भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप और विकास	- डॉ. परमानन्द पांचाल	90
16.	हिंदी सिनेमा में गांधी	- श्री राजेश अहिरवार	93
17.	मीडिया की दुनिया और नागरिक पत्रकारिता	- डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा	98
18.	कनाडा में हिंदी पत्रकारिता	- डॉ. जवाहर कर्नावट	102
19.	ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी का भविष्य	- डॉ. साईनाथ विट्ठल चपले	107

हिंदी-शिक्षण

20.	राजभाषा अध्ययन की नई दिशाएँ	- डॉ. प्रशांत प्रसाद गुप्त	116
21.	हिंदी और ब्रजभाषा में प्रयुक्त पुरुषवाचक सर्वनाम और उनके कारकीय प्रयोग	- डॉ. शेफ़ाली चतुर्वेदी	121
22.	हिंदी भाषा की जागरूकता के प्रति बी.एड के प्रशिक्षणार्थियों के मंतव्यों का अभ्यास	- डॉ. दीपक कुमार रविशंकर पंड्या	138

23. हिंदी-शिक्षण : हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के विशेष संदर्भ में - डॉ. बिन्द कुमार चौहान 143

हिंदी : विविध आयाम

24. हिंदी अंतरराष्ट्रीय फलक पर : पुर्तगाल में हिंदी - प्रो. शिव कुमार सिंह 149
25. हिंदी अंतरराष्ट्रीय फलक पर : सिंगापुर की धरती से हिंदी का नाद - डॉ. संध्या सिंह 155
26. नेपाल में हिंदी - श्रीमती वीणा सिन्हा 160

हिंदी : आज के प्रश्न

27. चिराग तले अंधेरा - श्री जनार्दन अग्रवाल 166
28. इंटरनेट पर हिंदी कम है, तो क्यों है? - श्रीमती सविता तिवारी 171
29. भारत में हिंदी भाषा की डबिंग ने खोले हैं विश्व सिनेमा कारोबार के नए आयाम - श्री महेश कुमार मिश्रा 175
30. डिजिटल युग में हिंदी की 'टेढ़ी चाल' बनाम हिंग्लिश - डॉ. कमलेश गोगिया 180

हिंदी के पथप्रदर्शक

31. पंजाब में हिंदी के उन्नायक : बाबू नवीनचंद्र राय - डॉ. राकेश कुमार दूबे 187
32. हिंदी साहित्य के दधीचि और अमर शहीदों के चारण : श्रीकृष्ण सरल - डॉ. स्वाति कपूर चड्ढा 191

श्रद्धांजलि

33. भारतीयता को समर्पित हिंदी साधक : प्रो.हरिशंकर आदेश - डॉ. दीपक पाण्डेय 187
34. जादुई अंगुलियाँ और कोकिल कंठ - धीरा वर्मा : एक अद्भुत व्यक्तित्व - श्रीमती भावना सक्सैना 206
35. शिकस्त पर फ़तह का परचम लहराता लेखक : श्री कृष्ण बलदेव वैद - डॉ. दत्ता कोल्हारे 210
36. प्रो. विजय गंभीर : एक शैक्षिक जीवन-यात्रा - प्रो. हेमंती बैनर्जी 214
37. डॉ. वशिनी शर्मा : नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा - श्रीमती सुनीता पाहूजा 217

हिंदी : उद्भव एवं विकास

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की राजभाषाएँ और अनुवाद - श्री सुनील भुटानी

2. हिंदी प्रदेश की जनपदीय भाषा मगही - डॉ. विजया सिंह

3. उज़्बेकिस्तान में हिंदी के बढ़ते कदम - डॉ. कमोला रख़्मतजानोवा

4. हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता और प्रवासी साहित्य का अवदान - डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा

5. असम में बहती हिंदी की अविरल धारा - डॉ. उमा देवी

संयुक्त राष्ट्र संघ की राजभाषाएँ और अनुवाद

श्री सुनील भुटानी
नई दिल्ली, भारत

अंतरराष्ट्रीय सहयोग, सुरक्षा, आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, मानवाधिकारों तथा विश्व शांति के उद्देश्यों को लेकर 24 अक्टूबर, 1945 को स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) विश्व के 193 देशों की अंतरराष्ट्रीय सर्वोच्च संस्था है। यू.एन.ओ. को विश्व संसद भी कहा जाता है। इस विश्व संसद में बनाए जाने वाले नियम एवं कानून इस संस्था के सभी सदस्य देशों पर समान रूप से लागू होते हैं। इस वैश्विक संस्था के सदस्य देशों की अपनी-अपनी राजभाषा है, जिसमें इन देशों का प्रशासनिक कामकाज होता है। प्रत्येक देश की राजभाषा इस संस्था की राजभाषा हो ऐसा व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। वर्तमान में, यू.एन.ओ. की छह राजभाषाएँ हैं - अरबी, चीनी (मंदारिन), अंग्रेज़ी, फ़्रेंच, रूसी और स्पेनिश। इन छः भाषाओं में से चार भाषाएँ - अंग्रेज़ी, चीनी, फ़्रेंच और रूसी यू.एन.ओ. के सबसे शक्तिशाली देशों अमेरिका, ब्रिटेन, चीन, फ़्रांस और रूस की राजभाषाएँ हैं। अरबी भाषा खाड़ी देशों की भाषा का प्रतिनिधित्व करती है, तो स्पेनिश यूरोपीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करती है। यू.एन.ओ. का कामकाज इन छह राजभाषाओं में भाषांतरकारों और अनुवादकों की सहायता से किया जाता है। यू.एन.ओ. की बैठकों में इस संस्था के सदस्य-देशों के प्रतिनिधि अपनी-अपनी भाषा में अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। छह राजभाषाओं से इतर किसी भाषा में वक्तव्य प्रस्तुत करने वाले देश के प्रतिनिधि के कार्यालय द्वारा वक्तव्य का भाषांतरण या लिखित पाठ यू.एन.ओ. की छह राजभाषाओं में से किसी एक भाषा में यू.एन.ओ. सचिवालय को अवश्य उपलब्ध करवाना होता है। ऐसे प्रतिनिधियों के वक्तव्य भाषांतरकारों के माध्यम से यू.एन.ओ. की छह राजभाषाओं में समानांतर रूप से उपलब्ध करवाये जाते हैं। प्रतिनिधियों के वक्तव्यों को छह राजभाषाओं में लिखित एवं ऑडियो रूप में संग्रहित किया जाता है।

भारतीय संदर्भ में, उदाहरण के तौर पर हम भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा यू.एन.ओ. की शीर्ष बैठकों में हिंदी में दिए जाने वाले वक्तव्यों को ले सकते हैं। वर्तमान में, हिंदी यू.एन.ओ. की छह राजभाषाओं में शामिल नहीं है, लेकिन भारतीय प्रतिनिधियों के हिंदी वक्तव्यों को यू.एन.ओ. की छह राजभाषाओं में भाषांतरकारों के माध्यम से साथ-साथ प्रसारित किया जाता है, तत्पश्चात्, लिखित एवं ऑडियो रूप में संग्रहित किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकांश दस्तावेज़ मूल दस्तावेज़ से अनुवाद करवाकर, सभी छह राजभाषाओं में जारी किए जाते हैं। यू.एन.ओ. में सभी छह राजभाषाओं को समान रूप से प्रोत्साहित करने और भाषा एवं सांस्कृतिक विविधता का उत्सव मनाने के लिए प्रत्येक राजभाषा के लिए भाषा दिवस स्थापित किए गए हैं। अरबी भाषा दिवस 18 दिसम्बर, चीनी भाषा दिवस 20 अप्रैल, अंग्रेज़ी भाषा दिवस 23 अप्रैल, फ़्रेंच भाषा दिवस 20 मार्च, रूसी भाषा दिवस 6 जून और स्पेनिश भाषा दिवस 23 अप्रैल को मनाया जाता है। यू.एन.ओ. मुख्यालय के अलावा विश्व के अनेक देशों में यू.एन.ओ. के कार्यस्थल स्थापित किए गए हैं और इन सभी कार्यस्थलों में इन भाषा दिवसों का हर्षोल्लास से आयोजन किया जाता है, जिसमें यू.एन.ओ. की प्रत्येक राजभाषा के इतिहास, संस्कृति और उपलब्धियों से परिचित करवाया जाता है।

इसके साथ ही, यू.एन.ओ. भाषा-विशेषज्ञों को रोज़गार देने वाला विश्व का सबसे बड़ा संगठन है। न्यूयॉर्क, जेनेवा, विएना और नाइरोबी में यू.एन.ओ. के

महत्त्वपूर्ण विभाग 'डिपार्टमेंट फ़ॉर जनरल असेंबली एंड कांफ़ेरेंस मेनेजमेंट' के लिए सैंकड़ों भाषा-विशेषज्ञ काम कर रहे हैं। इसके अलावा, यू.एन.ओ. के क्षेत्रीय आयोगों द्वारा भाषा-विशेषज्ञों की सेवाएँ ली जाती हैं। भाषा-विशेषज्ञ के तौर पर मुख्यतः भाषांतरकार, अनुवादक, संपादक, रिपोर्टर, शब्दावली-विशेषज्ञ, संदर्भ सहायक, कॉपी राइटर और प्रूफ़रीडर आदि की सेवाएँ ली जाती हैं।

संयुक्त राष्ट्र में अन्य पाँच भाषाओं की तुलना में राजभाषा अंग्रेज़ी के प्रति अधिक झुकाव के प्रति आवाज़ उठाई जाती रही है। स्पेनिश भाषा बोलने वाले सदस्य राष्ट्रों ने औपचारिक रूप से वर्ष 2001 में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव कोफ़ी अन्नान का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। इस पर श्री अन्नान ने कहा था कि मौजूदा बजटीय अवरोधों के चलते सभी छह राजभाषाओं को पूर्ण समानता देना संभव नहीं हो पाया है, परन्तु भाषिक संतुलन में सुधार करने के लिए ध्यान दिया जाएगा। वर्ष 2008 और 2009 में, संयुक्त राष्ट्र की महासभा के संकल्पों के माध्यम से सचिवालय से यह अनुरोध किया गया था कि सभी छह राजभाषाओं का समान आदर किया जाए और खासतौर पर सार्वजनिक सूचना के प्रचार-प्रसार में तो समानता का ध्यान रखा ही जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव ने 4 अक्टूबर, 2010 को बहुभाषावाद पर रिपोर्ट पेश की थी। इस रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए 19 जुलाई, 2011 को महासभा में बहुभाषावाद पर एक संकल्प ए/आरईएस/65/311 स्वीकृत किया गया था, जिसमें यह कहा गया था कि सभी छह राजभाषाओं को एक समान कार्य-परिस्थितियाँ और संसाधन उपलब्ध करवाए जाएँगे। इस संकल्प में इस चिंता की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया था कि संयुक्त राष्ट्र की वेबसाइट का बहुभाषिक विकास बहुत धीमी गति से चल रहा है।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना संबंधी दस्तावेज़ में संयुक्त राष्ट्र चार्टर में यू.एन. की राजभाषाओं के बारे में नहीं बताया गया था। यह चार्टर पाँच भाषाओं (अर्थात् चीनी (मंदारिन), फ़्रेंच, रूसी, अंग्रेज़ी और स्पेनिश) में तैयार किया गया था और इस चार्टर के अनुच्छेद 111 में कहा गया था कि ये पाँचों पाठ समान रूप से प्राधिकृत हैं। वर्ष 1946 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रथम सत्र में भाषा संबंधी नियम स्वीकृत किए गए थे और यह कहा गया था कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय से इतर संयुक्त राष्ट्र के सभी अंगों (अर्थात् संस्थाओं) की पाँच राजभाषाएँ (अर्थात् चीनी (मंदारिन), फ़्रेंच, रूसी, अंग्रेज़ी और स्पेनिश) और दो कार्य भाषाएँ (वर्किंग लेंग्वेज - अंग्रेज़ी और फ़्रेंच) होंगी। बाद में, स्पेनिश भाषा को भी कार्य भाषा (वर्किंग लैंग्वेज़) के रूप में शामिल कर लिया गया था और इसे 11 दिसंबर, 1948 को पारित किए गए संकल्प 262 में स्वीकृत कर लिया गया था। तत्पश्चात्, वर्ष 1968 में रूसी भाषा और वर्ष 1973 में चीनी (मंदारिन) भाषा को भी महासभा की कार्य भाषाओं (वर्किंग लेंग्वेज) के रूप में शामिल कर लिया गया था। वर्ष 1973 में ही अरबी भाषा को भी महासभा की राजभाषा एवं कार्य-भाषा (वर्किंग लेंग्वेज) के रूप में शामिल कर लिया गया था। इस तरह, सभी छह राजभाषाएँ कार्य-भाषाएँ (वर्किंग लेंग्वेज) भी बन गईं। एक ओर जहाँ अरबी भाषा को सिर्फ़ महासभा और इसकी प्रमुख समितियों की राजभाषा और कार्य भाषा (वर्किंग लेंग्वेज) बनाया गया, वहीं अन्य पाँच राजभाषाओं को महासभा के साथ-साथ सभी संयुक्त राष्ट्र समितियों तथा उपसमितियों की राजभाषा और कार्य भाषा (वर्किंग लैंग्वेज़) बनाया गया था। ऐसी स्थिति में, संयुक्त राष्ट्र के अरब सदस्यों ने अरबी भाषा को स्वीकृत किए जाने संबंधी संकल्प को लागू कराने के लिए होने वाली लागत की तीन वर्षों तक अदायगी करने के लिए सहमति दी थी। वर्ष 1980 में महासभा ने अरबी को महासभा की सभी समितियों तथा उपसमितियों की कार्य भाषा (वर्किंग लेंग्वेज) बना दिया था और उसी समय महासभा ने सुरक्षा परिषद् और आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् से अनुरोध किया था कि वे अरबी भाषा को अपनी आधिकारिक और कार्य-भाषाओं (वर्किंग लेंग्वेज) में शामिल कर लें। वर्ष 1983 में सुरक्षा परिषद् ने सभी

छह भाषाओं को आधिकारिक और कार्य भाषाओं के रूप में मान्यता दे दी थी। वर्ष 1992 तक आर्थिक और सामाजिक परिषद् की छह राजभाषाएँ (अर्थात् अरबी, चीनी (मंदारिन), फ़्रेंच, रूसी, अंग्रेज़ी और स्पेनिश) थी और इनमें से तीन कार्य भाषाएँ (अंग्रेज़ी, फ़्रेंच और स्पेनिश) थीं। बाद में, अरबी, चीनी (मंदारिन) और रूसी भाषा को भी आर्थिक और सामाजिक परिषद् की कार्य भाषाओं में शामिल कर लिया गया था। वर्ष 1996 में भाषा संबंधी अधिकारों का वैश्विक घोषणा-पत्र यूनेस्को में पेश किया गया था, परन्तु आधिकारिक रूप से अभी तक इसका समर्थन नहीं किया गया है। अनेक भाषाओं को नई राजभाषाओं के रूप में शामिल किए जाने की माँग की जा रही है, जिनमें हिंदी, स्वाहिली और मलय भाषा सबसे प्रमुख हैं। वर्तमान में, संयुक्त राष्ट्र सचिवालय में अंग्रेज़ी और फ़्रेंच दो कार्य भाषाओं का प्रयोग किया जा रहा है और सभी महासचिवों को इन दोनों भाषाओं का कार्य-ज्ञान (वर्किंग नॉलेज) होता है। वर्ष 2002 में, संयुक्त राष्ट्र के महासचिव कोफ़ी अन्नान ने यह प्रस्ताव रखा था कि संयुक्त राष्ट्र को ऐसी भाषाओं को 'अर्ध-आधिकारिक' या ''क्षेत्रीय'' भाषाओं का दर्जा देना चाहिए, जो विश्व की अधिकांश जनसंख्या द्वारा बोली जाती हैं, परन्तु उन्हें संयुक्त राष्ट्र की राजभाषा का दर्जा प्राप्त नहीं है, ताकि इन भाषाओं को बोलने वाली बड़ी जनसंख्या को संयुक्त राष्ट्र के कार्यकलापों से परिचित कराया जा सके। अभी तक संयुक्त राष्ट्र द्वारा किसी भी भाषा को 'अर्ध-आधिकारिक' या 'क्षेत्रीय' भाषा का दर्जा नहीं दिया गया है, जिसका मुख्य कारण इन भाषाओं में होने वाले अनुवाद पर खर्च होने वाली राशि है। जून, 2018 में संयुक्त राष्ट्र की मीडिया शाखा, यू.एन. न्यूज़ (https://news.un.org/) वेबसाइट पर 6 राजभाषाओं के अलावा पुर्तगाली और स्वाहिली में भी अनुवाद किया गया है। अन्य यू.एन. दस्तावेज़ों और वेबसाइटों को बांग्ला, हिंदी, उर्दू, क्रिओल, पुर्तगाली और स्वाहिली भाषाओं में पहले से ही अनूदित किया जा रहा है, परन्तु ऐसा आधिकारिक तौर पर तथा लगातार नहीं किया जा रहा है।

sunilbhutani2020@gmail.com

हिंदी प्रदेश की जनपदीय भाषा मगही

- डॉ. विजया सिंह
वर्धा, भारत

हिंदी प्रदेश की जनपदीय भाषा पर विचार और चर्चा करने से पहले उसकी संस्कृति और इतिहास से परिचय आवश्यक है, क्योंकि संस्कृति और भाषा शताब्दियों से एक-दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'जनपदीय भाषाओं का संबंध प्राचीन गण-भाषाओं से रहा है। ये गण-भाषाएँ सैकड़ों वर्षों तक एक-दूसरे को प्रभावित, परिवर्तित और विकसित करती रही हैं। अन्य भाषा-परिवारों से तत्व लेती रही हैं और देती भी रही हैं। कोई भी जनपदीय भाषा अनेक बोलियों का समूह होती है और इन बोलियों में शब्द-भंडार की ही नहीं व्याकरण और ध्वनि-तंत्र की भी काफ़ी विभिन्नता होती है। गण-भाषाएँ भी बोलियों का समूह थीं और इनके समाज जनपदीय समाज की अपेक्षा छोटे होते थे। लेकिन फिर भी चाहे ध्वनि-तंत्र हो, चाहे शब्द-भंडार चाहे वाक्य-तंत्र, ये भाषा (जनपदीय) तत्व, एक सुदीर्घ विकास के परिणाम हैं और इस विकास में प्राचीन गण-समाज परस्पर और निरंतर भाषा तत्वों का आदान-प्रदान करते रहे हैं।'

जनपदीय भाषाओं के रूप और चरित्र को समझने के लिए उनके इतिहास को समझना उपयोगी होगा। प्राचीन भारत में राज्य या प्रशासनिक इकाइयों को जनपद कहते थे। उत्तर वैदिक काल में कुछ जनपदों का उल्लेख मिलता है। बौद्धग्रंथों में इनका कई बार उल्लेख हुआ है। ये सभी महाजनपद आज के उत्तरी अफ़गानिस्तान से बिहार तक और हिन्दुकुश से गोदावरी नदी तक फैले हुए थे। महाभारत में उपलब्ध जनपद सूची के अनुसार उत्तर में हिमालय से कन्याकुमारी तक तथा पश्चिम में गांधार प्रदेश से लेकर पूर्व में असम तक के प्रदेश इन जनपदों में शामिल थे। ईसा पूर्व छठी सदी में वैयाकरणाचार्य पाणिनि ने 22 महाजनपदों का उल्लेख किया है। इनमें से तीन- मगध, कोसल तथा वत्स को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में कुल सोलह महाजनपदों के नाम मिलते हैं, पर ये नामकरण अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न हैं। इतिहासकार ऐसा मानते हैं कि यह अंतर भिन्न-भिन्न समय पर राजनीतिक परिस्थितियों के बदलने के कारण हुआ है। इसके अतिरिक्त इन सूचियों के निर्माताओं की जानकारी भी उनकी भौगोलिक स्थिति से अलग हो सकती है। बौद्धग्रंथ अंगुत्तर निकाय, महावस्तु में 16 महाजनपदों का उल्लेख है, जिनमें मगध को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। प्राचीन मगध भारत का एक शक्तिशाली गणराज्य था। अशोक और उसके बाद मगध का जो अभ्युदय हुआ, वह आकस्मिक नहीं था। उसके पहले एक सुदीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया पूरी हो चुकी थी। वैदिक संस्कृति का केंद्र उत्तर-पश्चिमी भारत में था और संस्कृत भाषा इसी संस्कृति का माध्यम थी। यही कारण है कि मगध की प्राचीन गण-भाषा का अलग से न तो कोई अभिलेख प्राप्त है और न उसका संस्कृत के समानांतर स्वतंत्र भाषा के रूप में अलग से उल्लेख है।

संस्कृतकाल में मागधी (मगही) गाँव की वाणी अर्थात् लोकवाणी रही, क्योंकि संस्कृत नाटकों में सामान्य ग्रामीण पात्रों के मुख से मागधी भाषा का प्रयोग मिलता है। प्राचीन काल में जिसे 'मागधी' कहा गया है, उसे ही आज 'मगही' के नाम से जाना जाता है। हम जानते हैं कि भाषा का नामकरण जाति अथवा क्षेत्र के नाम पर होता है। ऋग्वेद में जिसे 'कीकट' कहा गया है, अथर्ववेद में उसी को 'मगध' के नाम से पुकारा गया है। अतः क्षेत्र के नाम

पर भाषा के नामकरण के अनुसार 'मागधी' मगध की भाषा थी। यह संस्कृत से भिन्न रूप में थी। भगवान बुद्ध ने इसे ही अपने प्रवचन का माध्यम बनाया। बुद्धघोष ने स्थान-स्थान पर 'मागधी' शब्द का प्रयोग किया है

'मागधिकाय सब्बसत्तानं मूलभाषाय', 'सकायनिरुत्तिनाम सम्मासम्मबुद्धेन वुत्तप्पकारो मागध को वोहोरो।' (विसु., पृष्ठ 34, समन्त पृष्ठ 308) पालि का व्याकरण लिखते समय आचार्य मोग्गलान ने कहा है,

सिद्धिमिद्धिगुणं साधु नमस्सित्वा तथागत।
सद्धम्मसङ्ग भासिस्स मागधं सघलक्खणं।'
(मोग्गलानपच्चिका, पृष्ठ – 3)

कच्चान के शब्दों में,

'मागधीकाय बालानं बद्धिया बुद्धसासने।
वक्खं कच्चायनसारं जङधदसकं।।'

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मगध की भाषा मागधी उस समय काफ़ी विकसित थी। इसे भगवान बुद्ध ने प्रवचन का माध्यम बनाया। भिक्षु सिद्धार्थ का कहना है कि 'निःसन्देह भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश मगध की टकसाली भाषा में दिए और उसी में शिष्यों ने उन्हें सीखा और उपदेश दिया।' इसी मत का समर्थन पालि भाषा-साहित्य के विद्वान इतिहासकार डॉ. भरत सिंह ने भी किया है, "जिस भाषा में त्रिपिटक लिखा गया है, उसके लिए 'मागधी', 'मागध भाषा', 'मागधा-निरुक्ति', 'मागधिक भाषा' जैसे शब्दों का व्यवहार किया गया है, जिसका अर्थ होता है; मगध में बोली जाने वाली भाषा। इस तरह मागधी भगवान बुद्ध के प्रवचन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इसका कारण यह था कि भगवान बुद्ध जन-सामान्य को परंपरा के विरोध में खड़ा करना चाहते थे, इसलिए संस्कृत की जगह लोकवाणी मागधी को स्वीकार करना आवश्यक था। इसी मागधी को बाद में 'पालि' के नाम से जाना गया। कह सकते हैं कि 'मागधी' उस समय की संपन्न भाषा थी। इसका कारण यह है कि मगध प्रतिष्ठित और प्रतापी राजाओं का केंद्र रहा। बाद में बौद्ध अनुयायी राजाओं के द्वारा इसे संरक्षण भी मिलता रहा। राज-काज की भाषा के रूप में मागधी को अपनाया गया। उस समय की प्राप्त मूर्तियाँ और शिलालेख इसके प्रमाण हैं।

ग्रियर्सन ने मागधी को 'बिहारी हिंदी' कहा है। इनके अनुसार, 'इस पालि भाषा को गलती से मगध या दक्षिण बिहार की प्राचीन भाषा मान लिया जाता है; वैसे यह उज्जैन से मथुरा तक के मध्यदेश के भू-भाग की भाषा पर आधारित साहित्यिक भाषा है। इसे पश्चिमी हिंदी का एक प्राचीन रूप कहना ही उचित होगा।' (भारतीय आर्यभाषा हिन्दी -पृष्ठ - 174-175)। बावजूद इसके भाषाविद् मानते हैं कि मागधी भाषा (पालि) का व्याकरण इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि मागधी मगध की भाषा रही है।

दूसरी ओर यह जन-सामान्य की भाषा के रूप में चलती रही, जिसे प्राकृत के रूप में जाना जाता है। कालांतर में इसी प्राकृत ने साहित्यिक रूप ग्रहण किया। प्राकृत के अन्य रूपों में मागधी प्राकृत का विशेष स्थान है। यह मागधी प्राकृत, मगध की भाषा थी। इसी को सम्राट अशोक ने अपनी राजभाषा बनाकर सुदूर तक फैलाया। ई.पू. चौथी शताब्दी में बौद्ध-जैन जैसे महान् दार्शनिक संप्रदाय, जो कि सिंधु की ओर फैलते जा रहे थे, इसके विस्तार में सहायक हुए। फलतः मगध सभ्यता का केंद्र बन गया और अपनी भाषा को सारे भारत में सम्मानित करने में सफल हुआ।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने मगही भाषा के विकासात्मक इतिहास को अशोक के शासन काल को केंद्र में रखकर निम्न रूप में प्रस्तुत किया है :

समय	मगही की स्थिति
अशोक शासन के पूर्व की मागधी	ई. पू. 600 से 300 तक (अनुपलब्ध)
अशोक के समय की मागधी	ई. पू. 300 से 200 तक (सुलभ)
अशोक के बाद की मागधी	ई. पू 200 से सन् 200 तक (दुर्लभ)
प्राकृत मागधी	ई. सन् 500 तक (सुलभ)
अपभ्रंश मागधी	ई. सन् 500 से 700 तक (अनुपलब्ध)
मगही प्राचीन	ई. सन् 800 से 1200 तक (सुलभ)
मध्यकालीन मगही	सन् 1200 से 1600 तक (अनुपलब्ध)
आधुनिक मगही	सन् 1600 से अब तक (जीवित)

ग्रियर्सन ने मगही के दो रूपों को स्वीकार किया है :

- पूर्वी मगही
- शुद्ध मगही

पूर्वी मगही

पूर्वी मगही का कोई श्रृंखलाबद्ध रूप नहीं है। यह मगही हज़ारीबाग के दक्षिण-पूर्व भाग, मानभूमि एवं रांची के दक्षिण-पूर्व भाग खारासावां तथा दक्षिण में मयूरभंज एवं बामरा तक बोली जाती है। नालंदा ज़िले के पश्चिमी भाग में भी पूर्वी मगही का क्षेत्र है।

शुद्ध मगही

शुद्ध मगही पश्चिमी क्षेत्र में पटना, गया, हज़ारीबाग, मुंगेर और भागलपुर ज़िले में ही नहीं बल्कि पूर्व क्षेत्र में रांची के दक्षिण भाग में, सिंहभूमि के उत्तरी क्षेत्र में तथा सरायकेला एवं कारसावां के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती है।

कृष्णदेव प्रसाद के अनुसार मगही भाषा के निम्नलिखित भेद हैं :

- आदर्श मगही
- शुद्ध मगही
- टलहा मगही
- सोनतरिया मगही
- जंगली मगही

आदर्श मगही : यह मुख्यत: गया ज़िले में बोली जाती है।

शुद्ध मगही : इस प्रकार की मगही राजगृह से लेकर बिहार शरीफ़ के उत्तर (बयना स्टेशन) पटना ज़िले के अन्य क्षेत्रों में बोली जाती है।

टलहा मगही : टलहा मगही मुख्य रूप से मोकामा, बड़हिया, बाढ़ अनुमंडल के कुछ पूर्वी भाग और लक्खीसराय थाना के कुछ उत्तरी भाग गिद्धौर और पूर्व में फ़तुहां में बोली जाती है।

सोनतरिया मगही : सोन नदी के तटवर्ती भू-भाग

में पटना और गया ज़िले में सोनतरिया मगही बोली जाती है।

जंगली मगही : राजगृह, झारखंड प्रदेश के छोटा नागपुर (उत्तरी छोटा नागपुर मूलत:) और विशेष तौर से हज़ारीबाग के वन्य या जंगली क्षेत्रों में जंगली मगही बोली जाती है।

भोलानाथ तिवारी ने मगही के चार रूपों का निर्धारण 'हिंदी भाषा' नामक पुस्तक में किया है :

- आदर्श मगही
- पूर्वी मगही
- जंगली मगही
- सोनतरी मगही

भोलानाथ तिवारी के अनुसार मगही का परिनिष्ठित रूप गया ज़िले में बोला जाता है। ग्रियर्सन ने भी गया ज़िले में बोली जाने वाली मगही को विशुद्धतम मगही की संज्ञा दी है। प्राचीन गया जनपद में मगही भाषा के तीन स्पष्ट भेद प्रचलित थे। नवादा अनुमंडल, औरंगाबाद अनुमंडल तथा गया के शेष क्षेत्र, जिनका मगही में स्पष्ट अंतर है। लेकिन ज़िले के पुनर्गठन के पश्चात् गया ज़िला में एक ही प्रकार की मगही प्रचलित है। पटना ज़िले के दक्षिणी भाग और प्राय: संपूर्ण गया ज़िले में विशेष रूप से एकरूपता पायी जाती है। अतः भाषाविदों के अनुसार पटना और गया ज़िले की भाषा को ही परिनिष्ठित मगही मानना युक्तिसंगत एवं समीचीन है।

आंकड़े बताते हैं कि मगध संस्कृति की तरह मागधी (अब मगही भाषा) भी लगातार उतार-चढ़ाव के बाद भी अस्तित्व में बनी हुई है। भाषाविदों ने यह भी माना है कि मगही, मागधी प्रसूत नहीं, बल्कि मागधी का विस्तार है। हालाँकि आधुनिक मगही की बात करें तो इसका विकास उस तरह नहीं हो रहा है, जिस तरह 'बिहारी हिंदी' का। बावजूद इसके मगही के विकास के प्रयास अनवरत जारी हैं। वर्तमान में मगही साहित्य की विपुलता, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, मगही अकादमी, आकाशवाणी केंद्र, पटना से स्वतंत्र प्रसारण और इंटरमीडिएट, स्नातक व स्नातकोत्तर तक शिक्षण संस्थानों में पठन-पाठन की व्यवस्था आदि इसके स्वतंत्र अस्तित्व को संजोए रखने की पहचान है। दूसरी ओर मगही के उत्पन्न स्रोत यानी पालि, प्राकृत आदि से जोड़कर, देखने पर इसका इतिहास गौरवपूर्ण प्रतीत होता है। हालाँकि यह बात भी सही है कि संस्कृति और बदलते परिवेश के कारण प्राचीन मागधी और आधुनिक मगही के स्वरूप में बहुत अंतर आया है।

आधुनिक मगही का व्याकरणिक स्वरूप

बिहारी हिंदी (मगही, मैथिली, भोजपुरी) की तीनों भाषाओं को देखें तो तुलनात्मक रूप से मगही भाषा मानक हिंदी के ज़्यादा करीब है। जैसे मगही की वर्तमान कालिक सहायक क्रिया 'हइ' है, जो हिंदी के 'है' से मिलती है। बिहार की अन्य भाषाओं में भोजपुरी में इसके लिए 'बा, बाड़न, बाटे, बानी या बानू' का प्रयोग होता है। मैथिली में 'अछि, छी, छै' का प्रयोग होता है। इसी तरह 'आप' के लिए भोजपुरी में 'राउर' का प्रयोग होता है, लेकिन मगही में 'आप' के लिए 'अपने' का प्रयोग होता है।

उदाहरण :
हिंदी : आपका नाम क्या है ?
मगही : अपने के का/ की नाम हइ ?
भोजपुरी : राउर के का नाम बा?

इसी तरह हिंदी का 'तू' मगही में ज्यों-का-त्यों (कहीं-कहीं अनुनासिकता के कारण 'तूँ') रह जाता है। 'तुम' के लिए मगही में 'तों' और 'तुम्हारा' के लिए 'तोर' तोहर' और 'तेरा' के लिए 'तोरा' का प्रयोग होता है।

मगही भाषा और ध्वनियाँ :

'ल' का 'र' में बदलना : फरना (फलना), जरना (जलना), कुदार/ कुदारी (कुदाल/ कुदाली), उज्जर (उज्ज्वल) ।

'श' व 'ष" का 'स' में बदलना : आसा (आशा), सिव/ सिउ (शिव), अकास (आकाश) विख (विष) कहीं-कहीं 'ष" का स्थान 'ख' ले लेता है।

उपसर्ग में तो नहीं मगर प्रत्यय में बदलाव होता है, जैसे 'वान' की जगह 'मान' हो जाता है। जैसे : भगमान (भगवान), गाड़ीमान (गाड़ीवान), परतीभामान (प्रतिभावान)।

इसी तरह 'वाला' प्रत्यय 'हार, हरबा, हारा' और 'अइया' में बदल जाता है। जैसे – देखनेवाला - देखनहार, देखनहारा, देखबइया, पढ़नेवाला - पढ़निहार, पढ़बइया, करनेवाला - करनिहार, करबइया आदि।

'आई प्रत्यय 'आय' में बदल जाता है। जैसे - पढ़ाई -पढ़ाय, लिखाई -लिखाय, मिठाई - मिठाय, लड़ाई -लड़ाय, बड़ाई -बड़ाय, जमाई -जमाय आदि।

भूतकालिक (पूर्ण) प्रत्यय 'आ' के लिए मगही में 'लक' का प्रयोग होता है। जैसे,

प्रत्यय	धातु	शब्द (हिंदी / मगही)
आ	पढ़	पढ़ा / पढ़लक
या	सो	सोना (सोया) / सुतलक

भविष्यत्कालिक प्रत्यय 'गा'/ 'गे'/ 'गी' के लिए मगही में 'अइ' का प्रयोग होता है। जैसे,

प्रत्यय	धातु	शब्द (हिंदी / मगही)
गा	पढ़	पढ़ेगा / पढ़तइ
गा	सो	सोएगा / सुततइ

जैसे :

वह घर गया (हिंदी)

उ घर/ घरे गेलइ (मगही)

मगही में 'मैं' के स्थान पर 'हम्मे' (हम) का, 'हम' के लिए' 'हम सब्हे / हम्मेसभ का', 'वह' के लिए 'उ' का और 'उ' वाले शब्द (जैसे उधर) के लिए 'ओ' का प्रयोग होता है। उसी तरह 'इ' के लिए 'ए' का प्रयोग भी मिलता है। जैसे इधर-उधर (हिंदी), एन्ने-ओन्ने (मगही) ।

अकारांत शब्दों के साथ मगही में 'ए' लगाया जाता है। जैसे–'घर' (हिंदी) का 'घरे' (मगही), 'कल' (हिंदी) का 'कल्हे' आदि।

मगही में कर्ता के आधार कर्म में लिंग परिवर्तन नहीं होता है। जैसे - विवेक घर जाएगा, माला बाज़ार जाएगी। लेकिन मगही में, विवेक घरे जइतइ/ जतैइ, माला बाज़ार जइतइ / जतैइ। कर्त्ता के स्त्रीलिंग व पुल्लिंग में अंतर के बावजूद क्रिया से रूप में कोई अंतर नहीं पड़ता है।

इस तरह मगही की एक बड़ी शब्द-संपदा है, जो अन्य जनपदीय भाषाओं के इतर प्रतीत होती है। जिस मज़बूत प्राचीन धरातल पर मगही पनपी, इससे इस भाषा की जड़ों की गहराई का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। लेकिन आधुनिक साहित्य में इसके रख-रखाव की कमी दिखती है। हालाँकि मगही भाषा को उसमें रचित साहित्य के माध्यम से बचाने और संजोने के कई बड़े काम भी हुए हैं। इसमें पं. रामनरेश त्रिपाठी का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने अपनी किसी रेल-यात्रा के दौरान कुछ देहाती स्त्रियों के मुख से 'रेलियासवतिया मोरे पिया लेके भागी' लोकगीत की पंक्ति सुनकर, लोक साहित्य संकलन का बीड़ा उठा लिया। त्रिपाठी जी ने संपूर्ण भारत में घूम-घूमकर अत्यंत परिश्रम से हज़ारों गीत एकत्र किए; जिनमें कुछ चयनित गीतों को इन्होंने 'कविता कौमुदी' भाग-पाँच में 'ग्रामगीत' नाम से सन् 1929 ई. में प्रकाशित किया। इसी काल के विद्वान संकलनकर्ता श्री देवेन्द्र सत्यार्थी जी ने भारत के अतिरिक्त बर्मा तथा लंका में भ्रमण कर सन् 1945 ई. तक लगभग तीन लाख लोकगीतों का संकलन किया।

इसके अलावा कुछ ग्रामीण कवियों के द्वारा

लिखित पुस्तिकाएँ प्रकाश में आईं। इनमें श्रीधर प्रसाद की 'गिरिजा-गिरीश चरित' तथा 'उमा शंकर विवाह कीर्तन' आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, श्री रामचंद्र प्रसाद, डॉ. राम प्रसाद सिंह, पं. श्रीकांत शास्त्री आदि प्रमुख विद्वान हैं, जिन्होंने मगही लोक साहित्य का संकलन किया।

संदर्भ :

1. ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन
2. बुद्धिष्टिक स्टडीज़सन, डॉ. लाहा द्वारा संपादित, पृष्ठ – 649
3. पालि साहित्य का इतिहास, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ – 10
4. पुरातत्व निबंधावली, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, इंडियन प्रेस लि., प्रयाग पृष्ठ – 186
5. गंगा पुरातत्वांक, संपादक, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भागलपुर, जनवरी, 1933

singhvijya710@gmail.com

उज़्बेकिस्तान में हिंदी के बढ़ते कदम

- डॉ. कमोला रख़्मतजानोवा
ताशकंद, उज़्बेकिस्तान

भारोपीय भाषा-परिवार की भाषा 'हिंदी' भारतीय गणराज्य के संविधान में स्वीकार की गयी भाषाओं में से एक ऐसी भाषा है, जिसका भारतीय जन मातृभाषा के रूप में सब से ज़्यादा प्रयोग करते हैं। सन् 2011 की भारत की जनगणना के अनुसार 121 करोड़ भारतीयों में से 52.83 करोड़ अर्थात् 43.63% भारतीयों ने हिंदी को अपनी मातृभाषा माना है, जबकि हिंदी बोल सकने और समझ सकने वालों की संख्या 57.1% बताई गई है। सन् 1998 में मातृभाषा की संख्या की दृष्टि से विश्व भर में सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषाओं के जो आंकड़े मिलते हैं, उनमें चीनी भाषा के बाद हिंदी का स्थान है, जबकि कुछ विद्वान लोग मानते हैं कि दुनिया भर में हिंदी बोलने और समझने वालों की संख्या चीनी भाषा बोलने और समझनेवालों से ज़्यादा है। यह तो हकीकत है कि हिंदी बोलने-समझने वालों की तादाद दुनिया भर में तेज़ी से बढ़ रही है। सन् 2005 में जहाँ संसार के 160 देशों में हिंदी बोलनेवालों की संख्या 110 करोड़ मानी गई थी, वहीं 2015 के आंकड़ों के अनुसार 206 देशों के 130 करोड़ लोग हिंदी बोल और समझ सकते हैं। आज संसार भर में 135 देशों के सौ से ज़्यादा विश्वविद्यालियों में हिंदी पढ़ाई जाती है, जिससे साबित होता है कि हिंदी का महत्त्व संसार भर में बढ़ रहा है।

उज़्बेकिस्तान में भी सन् 1947 से हिंदी का उच्च स्तर पर अध्ययन और अध्यापन किया जा रहा है। पहले मास्को और लेनिनग्राद से विद्वान उज़्बेकिस्तान हिंदी सिखाने और पढ़ाने के लिए आते थे। सन् 1950 – 1970 के काल में उज़्बेकिस्तान के अपने विद्वान भी भारत विद्याविद् (Indologists) के रूप में मंच पर आने लगे। उन विद्वानों ने भारत देश तथा हिंदी भाषा के अनेक पहलुओं का अध्ययन किया था, जैसे नागिरक शास्त्र, शब्दकोश-निर्माण कला, व्याकरण और संरचनात्मक टाइपोलॉजी आदि।

इक्कीसवीं शताब्दी में उज़्बेकिस्तान में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के बढ़ने के साथ, हिंदी भाषा से संबंधित शोधकार्य में नयी दिशाएँ खुलने लगीं। उदाहरण के लिए 2001 में स्वार्गीय प्रोफ़ेसर अन्सारूद्दिन इब्राहिमोव ने 'बाबरनामा में हिंदी शब्दों का अध्ययन' विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। यह शोधकार्य लेक्सिकोलॉजी के क्षेत्र में किया गया था। आजकल इस क्षेत्र में अन्य शोधकर्ता भी कार्य कर रहे हैं, जिनमें से एक उल्लेखनीय नाम है - नादिरबेक सलिम्बेकोव, जो "हिंदी भाषा में तुर्की शब्द" विषय पर काम कर रहे हैं। उन्होंने इस विषय से संबंधित कई निबंध भी लिखे हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी के आगमन के साथ उज़्बेकिस्तान में हिंदी रचनाओं के अनुवाद एवं उनके अध्ययन का दौर शुरू हुआ। सन् 2019 में डॉ. नीलोफ़र खोदजाएवा ने "प्रेमचंद की रचनाओं के उज़्बेकी अनुवाद की शाब्दिक विशेषताएँ" विषय पर अपना पी.एच.डी. का काम किया है। उन्होंने अपने शोधकार्य में प्रेमचंद की रचनाओं एवं उनके उज़्बेकी अनुवाद की शाब्दिक तथा अर्थगत विशेषताओं की तुलना की है।

भाषा सीखने-सिखाने में टाइपोलॉजी का बड़ा महत्त्व है। इसलिए इधर के सालों में उज़्बेकिस्तान में हिंदी तथा दूसरी भाषाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन की शुरूआत हुई है।

सन् 2005 में डॉ. सुराजुद्दिन नुर्मातोव ने "हिंदी और सिंहली भाषाओं में संख्याओं की रूपात्मक विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन" विषय पर अपना

पी.एच.डी. का काम किया। हिंदी और सिंहली एक ही भाषावैज्ञानिक परिवार की भाषाएँ हैं। फिर भी उनमें समानताओं के साथ-साथ अनेक विषमताएँ भी हैं। इतना ही नहीं डॉ. सुराजुद्दिन नुर्मातोव आजकल "भारतीय आर्य भाषाओं में संख्यावाचक शब्दों की व्युपत्ति एवं विकास" विषय पर डी.एस.सी. की थीसिस लिख रहे हैं।

सन् 2020 में टाइपोलॉजी क्षेत्र में एक और नया अध्याय खुलने से दो अलग-अलग भाषा वैज्ञानिक परिवार की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन शुरू हुआ है। उज़्बेकिस्तान की राष्ट्रीय भाषा उज़्बेकी है। हिंदी और उज़्बेकी भाषावैज्ञानिक और संरचनात्मक दृष्टि से अलग-अलग परिवार की भाषाएँ हैं। हिंदी भारोपीय भाषा-परिवार की है और उज़्बेकी भाषा तुर्की भाषा-समूह की। फिर भी इन भाषाओं के बीच शब्दों में और व्याकरण में कई समानताएँ नज़र आती हैं। उदाहरण के लिए उज़्बेकी भाषा में संस्कृत भाषा के बहुत से शब्द मिलते हैं, जैसे चर्म, कुलाल आदि। इन शब्दों के अर्थ उज़्बेकी में भी charm, kulol हैं। 'शाली' शब्द का दोनों भाषाओं में अर्थ 'चावल का पौधा' है। हिंदी में ऐसे बहुत से शब्द हैं, जिनको 'देशज' कहते हैं। उदाहरण के लिए "तवा" -दोनों भाषाओं में इसका मतलब है, खाने-पकाने का एक बर्तन, "चपाती" का मतलब दोनों भाषाओं में एक तरह की रोटी, इसी तरह "खिचड़ी" शब्द दोनों भाषाओं में है, परन्तु उज़्बेकी में यह शब्द 'माश' के साथ प्रयोग में आता है, जैसे 'moshkichri'।

इसके अलावा इन दोनों भाषाओं की संरचना में अनेक समानताएँ भी पायी जाती हैं। हिंदी में कहते हैं कि "उसने अपने मित्र के लिए पुस्तक खरीदी।" उज़्बेकी में कहेंगे "U do'sti uchun kitob sotib oldi"। इस प्रकार देख सकते हैं कि दोनों भाषाओं में भी पहले कर्त्ता और अंत में क्रिया आती है। विशेषण और कर्म जैसे शब्द बीच में आते हैं।

उज़्बेकिस्तान में भाषाओं के अलग-अलग अंगों के तुलनात्मक अध्ययन करने वालों में पिछले दिनों डॉ. कमोला रख़्मतजानोवा का नाम भी जुड़ गया है। डॉ. कमोला ने अपने शोधकार्य में हिंदी और उज़्बेकी भाषाओं का शब्द-विचार (morphology) की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन किया है। दो भिन्न भाषावर्गों की इन भाषाओं के अध्ययन में दोनों भाषाओं में उपस्थित शब्दों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है, हिंदी में 'विकारी' और 'अविकारी' शब्द एवं उज़्बेकी में 'mustaqil' और 'yordamchi' शब्द। उनके इस अध्ययन से मालूम होता है कि दोनों भाषाओं में संज्ञा विकारी शब्द-समूह में आती है। दोनों भाषाओं में प्रयोग किए जानेवाले शब्दों का बड़ा हिस्सा, संज्ञा शब्द-समूह का हिस्सा है। दोनों भाषाओं में संज्ञाओं की अपनी व्याकरणिक कोटियाँ हैं। तुलनात्मक अध्ययन से जानकारी मिलती है कि हिंदी में संज्ञाओं की वचन, कारक एवं लिंग के अनुसार तीन कोटियाँ हैं और उज़्बेकी भाषा में भी संज्ञा की तीन व्याकरणिक कोटियाँ हैं – वचन, कारक, स्वामिबोधक। स्पष्ट है कि वचन और कारक की उपस्थिति दोनों भाषाओं में है। इन समानताओं की संरचना, अर्थ और कार्यात्मक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। अब कमोला रख़्मतजानोवा अपने तुलनात्मक शोध अध्ययन से संबंधित एक मोनोग्राफ़ लिख रही है।

प्रसन्नता की बात है कि आजकल उज़्बेकिस्तान में Tashkent State University of Oriental Studies, Uzbekistan State World Languages तथा Lyceium under Tashkent State University of Oriental Studies, School № 24 में हिंदी सिखाई जाती है। इसके अलावा लाल बहादुर शास्त्री भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में भी हिंदी का अध्यापन चल रहा है। कुछ अध्यापक हिंदी सिखाने के साथ हिंदी सिखाने से संबंधित पुस्तकें भी लिख रहे हैं। उदाहरण के लिए :

डॉ. ख. ब. बेगिज़ोवा की सन् 2004 में "हिंदी भाषा में पाठ - ग्रह" और सन् 2007 में "हिंदी पाठ्य पुस्तक" शीर्षक से दो पुस्तकें छपीं।

स्व. र. अ. अऊलोवा, ब. र. रखमतोव और म. क. सदिकोवा की सन् 2008 में "हिंदी भाषा" पाठ्य-

पुस्तक - प्रथम भाग छपी।

स्व. प्रोफ़ेसर आ. न. शामातोव की पुस्तक सन् 2010 में "हिंदी भाषा का प्रामाणिक व्याकरण"- प्रथम भाग छपी।

सन् 2011 में युनुसोवा आदालत की हाईस्कूल के विद्यार्थियों के लिए "हिंदी भाषा" पाठ्य-पुस्तक - प्रथम भाग छपी।

सन् 2018 में ब. र. रखमतोव, म. क. सदिकोवा, डॉ. स. नुर्मातोव और म. सुलेयमानोवा की "हिंदी भाषा" पाठ्य-पुस्तक छपी।

आजकल उज़्बेकिस्तान में जिस तरह हिंदी के अध्ययन के लिए छात्रों में शौक और उत्साह बढ़ रहा है, उससे आशा है कि भविष्य में भाषाविज्ञान के क्षेत्र में कार्य की ओर भी नयी-नयी दिशाएँ खुलेंगी।

अंत में, मैं कहना चाहूँगी कि अत्यंत प्राचीनकाल से उज़्बेकिस्तान और भारत के मधुर संबंध चले आ रहे हैं, जो हिंदी सीखने से अधिक मज़बूत होंगे। भारतीय संस्कृति दुनिया की सबसे पुरानी संस्कृति है। हिंदी सीखकर हम भारत की प्राचीन संस्कृति और महान सभ्यता को ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं। इतना ही नहीं रोज़गार की दृष्टि से भी हिंदी सीखकर हमें अध्यापक, अनुवादक और दुभाषिये के रूप में विभिन्न संस्थाओं और दूतावासों में अच्छा काम करने का अवसर मिल सकता है। हिंदी सीखने में सरल और वैज्ञानिक भाषा है, जिसको सीखकर हम भारत के विशाल साहित्य का आनंद भी उठा सकते हैं।

rakhmatjanova@mail.ru

हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता और प्रवासी साहित्य का अवदान

- डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा
दिल्ली, भारत

हिंदी के वैश्विक विस्तार को देखते हुए आज हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जिससे हिंदी का सही परिप्रेक्ष्य में वैश्विक स्तर पर मूल्यांकन हो सके, ताकि हिंदी की साहित्यिक समृद्धि और शक्ति का विश्व को परिचय मिल सके।

भाषा वैज्ञानिक सामान्यतः यह मानते हैं कि एक भाषा का जीवन काल लगभग 1500 वर्षों का होता है। इतने समय में भाषा में इतने ध्वन्यात्मक और संरचनात्मक परिवर्तन हो जाते हैं कि भाषिक अभिव्यक्ति लोगों के लिए अबोधगम्य होने लगती है। हिंदी भाषा का प्रारम्भ 950 ई. के आसपास से माना जाता है, जब सिद्धों, नाथ मुनियों और जैन मुनियों की रचनाओं में पुरानी हिंदी के तत्व दिखने लगते हैं। यह समय अपभ्रंश के अवसान और हिंदी के उदय का समय है। चंद बरदाई, नरपति नाल्ह, विद्यापति, अमीर खुसरो आदि हिंदी के प्रारंभिक कवियों में गिने जाते हैं। हिंदी का इतिहास अब तक लगभग 1000 वर्षों का इतिहास है। इस बीच हिंदी का कई स्तरों पर गुणात्मक विकास हुआ है, नए और व्यापक अनुसंधान के कारण नए तथ्य प्रकाश में आए हैं; हिंदी का वैश्विक स्वरूप उभर रहा है, स्वदेश ही नहीं विदेश में भी हिंदी में प्रभूत लेखन हो रहा है, इसलिए आज हिंदी में लिखे साहित्य के पुनर्मूल्यांकन और हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता है।

हिंदी आज भारत के सीमित क्षेत्र की भाषा नहीं रही। हिंदी भारत के ग्यारह प्रदेशों की मातृभाषा है। सारे भारत को जोड़ने वाली भाषा होने के कारण संपर्क भाषा भी है। उसे राजभाषा के रूप में संवैधानिक गौरव मिला है। विदेश में बसे हुए विविध भाषा-भाषी भारतीयों की भारतीय अस्मिता का प्रतीक भी हिंदी भाषा है। भारत के हिंदीतर क्षेत्रों में हिंदी भाषा का स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षण और प्रभूत सृजनात्मक और अकादमिक लेखन हो रहा है। आंकड़ों के अनुसार विदेश में बसे हुए प्रवासी भारतीयों की संख्या दो करोड़ से भी अधिक है, हिंदी सभी बोलते और समझते हैं, पारस्परिक विचार-विनिमय के लिए हिंदी का प्रयोग करते हैं और बहुत तो हिंदी में लिखते भी हैं। प्रवासी भारतीयों में जो गिरमिट काल में मॉरीशस, सूरीनाम, फ़िजी, दक्षिण अफ़्रीका, त्रिनिदाद और टोबेगो तथा गयाना आदि देशों में गए थे, उनके वंशज प्रयत्नपूर्वक हिंदी को बचाए और संजोये हुए हैं तथा हिंदी में निरंतर लिख रहे हैं। भारत से बाहर फ़िजी ऐसा देश है, जहाँ के सभी निवासी हिंदी बोलते और समझते हैं और संभवतः यही कारण है कि भारत से बाहर फ़िजी ही ऐसा देश है जहाँ हिंदी, देश की संसदीय मान्यता प्राप्त भाषा है। फ़िजी में भी आज हिंदी में प्रभूत लेखन हो रहा है।

उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर हिंदी विश्व की तीसरी प्रधान भाषा है। विश्वभाषा-सर्वेक्षण यह भी संकेत देते हैं कि विश्व की प्रधान भाषाओं में अंग्रेज़ी, मेंडरिन तथा हिंदी भाषा के बोलनेवालों का प्रतिशत बढ़ा है। वस्तुस्थिति तो यह है कि आज हिंदी भारत में करोड़ों की मातृभाषा और विश्व में करोड़ों की अनुराग-भाषा है। हिंदी अपने विविध रूपों में आज विश्व के अनेक देशों में बोली जाती है। विदेश में आज हिंदी का प्रचार-प्रसार जहाँ एक ओर विदेशी विद्वानों के प्रयास और उनके अध्ययन एवं अनुसंधान से हो रहा है, वहीं दूसरी ओर

विदेश में बसे प्रवासी भारतीयों के प्रयास से भी हिंदी की स्थिति सुदृढ़ हुई है और उसे नए क्षितिज मिले हैं। पिछली अर्धशती में स्वतंत्र भारत की एशिया में बढ़ती हुई साख ने भी विदेश में हिंदी की प्रतिष्ठा बढ़ाई है।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा वर्ष 1839 से प्रारंभ हुई थी और अनेक विदेशी और भारतीय विद्वानों ने हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ लिखे। हिंदी साहित्य का पहला इतिहास फ़्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी ने 'इस्त्वार द ला लितेरात्युर एंदुई ऐं हिन्दुस्तानी' नाम से फ़्रांसीसी भाषा में लिखा था। इसके बाद वर्ष 1917 में एडविन ग्रीव्स ने 'ए स्केच ऑफ़ हिंदी लिटरेचर' प्रकाशित कराया। ऍफ़ .ए . की का हिंदी साहित्य का इतिहास वर्ष 1920 में 'ए हिस्ट्री ऑफ़ हिंदी लिटरेचर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। भारतीय विद्वानों में शिवराज सिंह सेंगर, मिश्रबंधु ने साहित्य के इतिहास लिखे, पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिंदी साहित्य का इतिहास' का प्रकाशन वर्ष 1929 में हुआ, जो अपनी विद्वत्ता और गहन विवेचनात्मक शैली के लिए आज भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का लिखा ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (1940), डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखा गया 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' तथा डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, डॉ. श्रीकृष्णलाल तथा डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर' द्वारा आधुनिक साहित्य के विविध काल खंडों को लेकर लिखे गए साहित्य के इतिहास ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने सोलह खण्डों में 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास' प्रकाशित किया, जो हिंदी साहित्य का अब तक का प्रकाशित सबसे बड़ा हिंदी साहित्य का इतिहास ग्रन्थ है। 1960 तक की अवधि से पूर्व हिंदी साहित्य के विस्तार को समाहित करने वाला अनेक विद्वानों द्वारा लिखित और संपादित 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास' सबसे विशद ग्रन्थ है। ये सभी हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण होते हुए भी स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विस्तार और वैविध्य को देखते हुए आज अधूरे से लगते हैं। वस्तुतः पिछले पाँच दशकों में हिंदी का जो विस्तार हुआ है उसका विवेचन विश्लेषण समेकित हिंदी साहित्य के इतिहास के रूप में हिंदी में आज उपलब्ध नहीं है।

ये सभी हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ अर्धशती से भी अधिक समय पूर्व लिखे गए ग्रन्थ हैं। आज हिंदी की स्थिति 50-60 वर्षों में बहुत सुदृढ़ हुई है, हिंदी का विश्वव्यापी विस्तार हुआ है और इस अवधि में देश और विदेश में भी प्रभूत हिंदी लेखन हुआ है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श और प्रवासी साहित्य को लेकर बड़े परिमाण में साहित्य लेखन हुआ है, जिनका लेखा-जोखा आज भी व्यवस्थित रूप में कहीं उपलब्ध नहीं है। हिंदी साहित्य केवल परिनिष्ठित खड़ी बोली का ही साहित्य नहीं है। हिंदी की सत्रह उपभाषाओं में निरंतर पर्याप्त सृजनात्मक लेखन हो रहा है, जिनका आज कहीं एक जगह विवरण उपलब्ध नहीं है। भारत के हिंदीतर प्रदेशों के विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन से हिंदी आलोचना के क्षेत्र में तो पर्याप्त काम हुआ ही है, सृजनात्मक लेखन भी पर्याप्त हो रहा है, जिसकी सूचना तक हिंदी प्रेमियों और हिंदी सेवियों को नहीं है। इसका कारण यही है कि हिंदी साहित्य का कोई समग्र इतिहास इन पचास वर्षों में नहीं लिखा गया, जो हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण जानकारियों से परिपूर्ण हो।

आज हिंदी में सृजनात्मक साहित्य का लेखन विदेश में भी व्यापक स्तर पर हो रहा है। विदेश में लिखा जा रहा हिंदी का सर्जनात्मक साहित्य सामान्यत: तीन कोटियों का है -

पहली कोटि में वे साहित्यिक रचनाएँ हैं, जो विदेशी हिंदी-प्रेमियों द्वारा लिखी गई हैं। परिमाण की दृष्टि से इस कोटि की रचनाएँ बहुत ही कम हैं। प्रोफ़ेसर ओदोलेन स्मेकल के हिंदी में कई काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं – 'मेरी प्रीत तेरे गीत' (1982), 'स्वाति बूँद' (1983), 'कमल को लेकर चल' (1983), 'तेरे दिग्दिगंतर अभिराम' (1984) इत्यादि। इन कविताओं में कवि का भारत तथा हिंदी के प्रति प्रेम झलकता है। एक विदेशी

शुद्ध साहित्यिक हिंदी में काव्यात्मक अभिव्यक्ति कर सके, यह उसके हिंदी-भाषा पर अधिकार का द्योतक है और प्रशंसनीय है। कोरिया की किम यांग शिक, रूस की विक्तोरिया शिलिना, हंगरी के इमरे बंघा इत्यादि कुछ विदेशी हिंदी-प्रेमियों ने हिंदी में अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

दूसरी कोटि में उन प्रवासी भारतीयों की रचनाएँ आती हैं, जो 1950 या उसके बाद के वर्षों में शिक्षा-प्राप्ति या धन-उपार्जन अथवा अधिक सुखद भविष्य की तलाश में विदेश गए और वहाँ बस गए। इनका भारत आना-जाना निरंतर बना हुआ है। विदेश में बसे हुए ये भारतीय हिंदी में अपनी भावाभिव्यक्ति करते हैं और अपने साहित्य-सृजन से हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं। ये भारतीय अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, जर्मनी, डेनमार्क, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, अर्जेंटीना आदि देशों में बसे हुए हैं और हिंदी में लेखन कर रहे हैं। अमेरिका के गुलाब खंडेलवाल, अंजना संधीर, रामेश्वर अशांत, विजय कुमार मेहता, वेदप्रकाश बटुक, विनोद तिवारी, सत्यदेव गुप्ता, भूदेव शर्मा, रजनीकांत लहरी, सुषम बेदी, शैलजा सक्सेना; इंग्लैंड की अचला शर्मा, उषा राजे सक्सेना, उषा वर्मा, ओंकार नाथ श्रीवास्तव, कीर्ति चौधरी, कृष्ण कुमार, सत्येंद्र श्रीवास्तव, तेजिंदर शर्मा; कनाडा के अश्विनी गोपी, राजेंद्र सिंह, नॉर्वे के सुरेश चंद्र शुक्ल, अमित जोशी, डेनमार्क की अर्चना पेन्यूली इत्यादि हिंदी में निरंतर लिख रहे हैं और उनकी रचनाएँ भारत में प्रकाशित हो रही हैं। प्रवासी भारतीयों की रचनाओं के समेकित संकलन भी प्रकाशित हुए हैं। विदेशों में रचे जा रहे इस साहित्य का मूल्यांकन आज अपेक्षित है।

तीसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण कोटि में उन प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखित हिंदी का साहित्य है, जो गिरमिट प्रथा के अंतर्गत 150 वर्ष पूर्व भारतीय, ब्रिटिश उपनिवेशों में काम करने के लिए विदेश गए थे और वहीं बस गए। उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी सामान्य बोलचाल में हिंदी-भाषा का प्रयोग करती है और अपने विचारों और भावों की अभिव्यक्ति हिंदी में करती है।

भारतीय आजीविका की खोज में शर्तबंद प्रथा के अंतर्गत मज़दूरों के रूप में मॉरीशस (1834), त्रिनिदाद (1845), दक्षिण अफ़्रीका (1860), गयाना (1870), सूरीनाम (1873), फ़िजी (1879) गए थे, किंतु अपने परिश्रम, लगन तथा ईमानदारी से वे हर देश में सुशिक्षित, सुप्रतिष्ठित तथा सम्मानित नागरिक बन गए। उनकी उन्नत सामाजिक स्थिति के कारण उनकी भाषा भी सम्मानित बनी। प्रवासी भारतीयों के मध्य हिंदी संपर्क-भाषा थी इसीलिए वह भारतीय अस्मिता की प्रतीक बन गई। डेढ़ सौ वर्षों में हिंदी की विविध भाषिक शैलियाँ इन देशों में विकसित हो गईं, जो मूलत: अवधी और भोजपुरी का मिश्रित रूप थीं तथा इनमें स्थानीय भाषाओं का पुट भी था। ये विविध भाषिक शैलियाँ फ़िजी में 'फ़िजी बात', सूरीनाम में 'सरनामी' तथा दक्षिण अफ़्रीका में 'नेटाली' नाम से अभिहित हुईं। प्रवासी भारतीय अपने देश में सामान्य बोलचाल में इसी हिंदी का प्रयोग करते हैं तथा यह हिंदी सभी भारतीयों के मध्य तथा स्थानीय लोगों के बीच भी समझी एवं बोली जाती है। आज इन देशों में भाषा द्वैत की स्थिति उत्पन्न हो गई है। सामान्य बोलचाल और अनौपचारिक अवसरों पर वे परिनिष्ठित खड़ी बोली या मानक हिंदी का प्रयोग करते हैं और अपने गिरमिटिया समाज द्वारा विकसित हिंदी को टूटी-फूटी, अशुद्ध कहकर उसे साहित्य-लेखन के लिए अनुपयुक्त मानते हैं। पर इधर दो-तीन दशकों में स्थिति बदली है और अब ये प्रवासी भारतीय अपनी मातृभाषा हिंदी के इस नवविकसित रूप को अपनी उपलब्धि के रूप में देखते हैं और उसमें सृजनात्मक लेखन कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। ये प्रवासी भारतीय हिंदी में कविता, कहानी, निबंध इत्यादि लिखकर हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं। उनके समक्ष रचनाओं के प्रकाशन की विकट कठिनाई है। अपने देशों में हिंदी की जो छोटी-मोटी पत्रिकाएँ निकलती रहीं हैं, उन्ही में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हो पाती हैं। फ़िजी के कमला प्रसाद मिश्र, विवेकानंद शर्मा, रामनारायण,

महावीर मित्र, काशीराम कुमुद, ज्ञानीसिंह, सुब्रमनी, मॉरिशस के अभिमन्यु अनत, प्रह्लाद रामशरण, डॉक्टर बृजेन्द्र मधुकर, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, रामदेव धुरंधर, बीरसेन जागासिंह, सोमदत्त बखोरी, सुमति बुधन, पूजानंद नेमा; सूरीनाम के मुंशी रहमान खाँ, अमरसिंह रमण, सुरजन परोही, जीत नराइन; त्रिनिदाद की ममता लक्ष्मना, हरिशंकर आदेश; गयाना के रंडल बूटी सिंह, दक्षिण अफ़्रीका के रामभजन सीताराम, राम बिलास, उषा देवी शुक्ल इत्यादि हिंदी के प्रसिद्ध लेखक हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा हिंदी-साहित्य को समृद्ध किया है तथा भारत में वे साहित्यकार के रूप में पढ़े जाते हैं और चर्चित हैं। विडंबना यह है कि प्रवासी भारतीय लेखक अपने देश में विकसित हिंदी के शैली-रूप को न अपनाकर परिनिष्ठित हिंदी में लिखने के लिए प्रयत्नशील हैं। ऐसे बहुत कम लेखक हैं, जो साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए अपनी सहज, सरल भाषा का प्रयोग करते हों। फ़िजी के लेखक प्रोफ़ेसर सुब्रमनी एवं प्रोफ़ेसर रेमंड पिल्लई इत्यादि कुछ प्रवासी भारतीयों ने प्रवासी भारतीय साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। अपनी भाषा में लिखी गई रचनाओं में अधिक प्रौढ़ता तथा अभिव्यक्ति-सामर्थ्य होती है, जिससे वे आज परिचित हैं और अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति में वे अपनी हिंदी का आज प्रयोग करते हैं। विदेश में रह रहे और हिंदी में साहित्यिक रचनाएँ करनेवाले प्रवासी भारतीयों की लंबी सूची है।

भारत में यह आम राय है कि विदेश में लिखा जा रहा हिंदी-साहित्य स्तरीय नहीं है और उसमें ऐसा कुछ नहीं है, जो साहित्य में रुचि रखनेवाले पाठक को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। यह राय आमतौर पर उन लोगों की है, जिनका विदेशी हिंदी-साहित्य से परिचय नहीं है। यदि आप ऐसे लोगों से जिज्ञासा-भरे स्वर में यह पूछें कि "महाशय, आपने यह राय कैसे बनाई?" तो उनके पास इसका कोई उत्तर भी नहीं होगा। प्रवासी साहित्य विदेश में बसे हुए लाखों भारतीयों की अनुभूतियों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। वह साहित्य के कलात्मक निकष पर भारत में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य के समकक्ष चाहे न हो, पर उनकी ये रचनाएँ प्रवासी जगत के लिए भाषिक निधि के समान हैं। इन साहित्यिक अभिव्यक्तियों का सांस्कृतिक, समाजशास्त्रीय और भाषाशास्त्रीय दृष्टि से बहुत महत्त्व है। प्रवासी भारतीयों की ये साहित्यिक रचनाएँ कालांतर में उस देश की संस्कृति की कभी ऐतिहासिक दस्तावेज़ बनेंगी।

प्रश्न यह है कि प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की जो मूलभूत कठिनाई है, वह है सामग्री का अभाव। प्रवासी साहित्य की महत्ता को देखते हुए भारत के अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में प्रवासी साहित्य आज पढ़ाया जा रहा है, पर यथेष्ट सामग्री आज भी उपलब्ध नहीं है। फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम और दक्षिण अफ़्रीका के सृजनात्मक साहित्य के शोधपरक सम्पादन और आलोचनात्मक अध्ययन इधर दो दशकों में प्रकाशित तो हुए हैं, पर इस दिशा में अभी और अधिक श्रम, गंभीर अध्ययन और अनुसंधान अपेक्षित है। यह कार्य विश्वविद्यालयीय स्तर पर अथवा हिंदी संस्थाओं के माध्यम से हो सकता है।

प्रवासी भारतीय लेखन को हिंदी-साहित्यिक जगत में मान्यता मिले, इसके लिए आवश्यक है कि इन लेखकों की अच्छी साहित्यिक रचनाएँ विधिवत संपादित होकर भारत में अच्छे प्रकाशक द्वारा प्रकाशित हों; वे प्रबुद्ध पाठक तक पहुँचे, उनका समुचित मूल्यांकन हो तथा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में अन्य भारतीय लेखकों के साथ उन्हें स्थान मिल सके और उनका साहित्य पढ़ा जाए। प्रवासी साहित्य पर साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्श हों।

इस नई सदी में हिंदी के वैश्विक विस्तार और विविध देशों में विशेषकर फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम, दक्षिण अफ़्रीका, त्रिनिदाद व टोबेगो तथा गयाना आदि देशों में हिंदी में हो रहे प्रभूत लेखन को देखते हुए अब यह आवश्यक हो गया है और समय की माँग है कि हिंदी

साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन हो, जिसमें प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य के अवदान का व्यापक स्तर पर उल्लेख और विवेचन हो। प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य हिंदी को वैश्विक प्रतिष्ठा देगा और हिंदी की व्याप्ति तथा समृद्धि का समुचित मूल्यांकन हो सकेगा।

सन्दर्भ सूची :

1. वर्मा, धीरेन्द्र, हिंदी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
2. विमलेश कान्ति वर्मा, हिंदी स्वदेश में और विदेश में, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, सूचना भवन, नई दिल्ली
3. विमलेश कान्ति वर्मा, हिंदी और उसकी उपभाषाएँ - एक संक्षिप्त सर्वतोमुखी सर्वेक्षण, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1997
4. विमलेश कान्ति वर्मा : प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली व महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा 2016, पृष्ठ 511
5. Crystal, David: The Cambridge Encyclopaedia of Languages, Cambridge University Press, 1988, p287
6. Callewaert, S. World Almanac and Book of Facts 2000.
7. Verma, Vimlesh Kanti, Studies on Hindi - A Comprehensive Bibliography, Pilgrims Publishing, Varanasi 2007
8. वर्मा, राम कुमार, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राम नारायण लाल, इलाहाबाद, 1958
9. सक्सेना, उषा राजे (कविता-संग्रह), शर्मा, तेजेंद्र देशांतर (कहानी-संग्रह), हिंदी अकादमी, दिल्ली सरकार 2012
10. बहुवचन, वर्ष 2015, अंक 46, अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (क) विमलेश कान्ति वर्मा, फ़िजी बात हिंदी की विदेशी भाषिक शैली, (ख) रामभजन सीताराम -नेताली हिंदी, (ग) मोहन कान्त गौतम - करेबियाई हिंदी (घ) तात्याना ओरान्स्क्या -पार्या
11. वर्मा, विमलेश कांति, फ़िजी में हिंदी : स्वरूप और विकास, पीताम्बरा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
12. साक्षात्कार सुनंदा वर्मा की बातचीत (क) आर्य रत्न पंडित भुवन दत्त से (फ़िजी), प्रवासी जगत, खंड 4, अंक 2, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, (ख) हीरालाल शिवनाथ से (दक्षिण अफ़्रीका) साहित्य संगम, 2018, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस, (ग) प्रो. रामभजन सीताराम से (दक्षिण अफ़्रीका) आजकल, जन. 2016, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली और (घ) बिरजानंद बदलू 'गरीब भाई' से (दक्षिण अफ़्रीका) भाषा, जनवरी 2018, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, दिल्ली
13. साक्षात्कार भावना सक्सेना की जीत नराइन (सूरीनाम) से बातचीत कादम्बिनी, सुरजन परोही (सूरीनाम) से बातचीत, राजभाषा मंजूषा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली, नवम्बर 2017, हरिदेव सहतू (सूरीनाम) से बातचीत, कादम्बिनी जून 2011 और सुरजन परोही से बातचीत, विश्व हिंदी पत्रिका 2018
14. साक्षात्कार विमलेश कान्ति वर्मा की प्रो. सुब्रमनी (फ़िजी) समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 41, अंक 211, अक्टूबर 2020, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली और प्रो. ब्रिज विलाश लाल (फ़िजी) से बातचीत, आजकल, जून 2020, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
15. वर्मा, विमलेश कान्ति : फ़िजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, रबीन्द्र भवन, नई दिल्ली 2012, पृष्ठ 296 वर्मा
16. विमलेश कान्ति व धीरा वर्मा, फ़िजी में हिंदी : स्वरूप और विकास, पीताम्बरा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 2000, पृष्ठ 210
17. ऋतुपर्ण, सुरेश, कमला प्रसाद मिश्र की काव्य साधना, गौरव प्रकाशन, नई दिल्ली

18. वर्मा, विमलेश कान्ति मॉरीशस का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, रबीन्द्र भवन, नई दिल्ली 2016, पृष्ठ 472 पृष्ठ 296
19. वर्मा, विमलेश कान्ति व भावना सक्सेना, सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली व महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, 2016, पृष्ठ 296
20. भावना सक्सेना : सूरीनाम में हिन्दुस्तानी, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
21. वर्मा, विमलेश कान्ति, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली व महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, 2016, पृष्ठ 511

vimleshkanti@gmail.com

असम में बहती हिंदी की अविरल धारा

- डॉ. उमा देवी
असम, भारत

आज हिंदी भारत में सबसे ज़्यादा बोली और समझी जाने वाली भाषा है। यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति, संस्कारों की संवाहक तथा संप्रेषक है। हिंदी केवल एक भाषा नहीं है, यह राष्ट्र के मान-सम्मान और गौरव का प्रतीक है। विश्व की लोकप्रिय तथा सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में दूसरा स्थान प्राप्त कर, हिंदी ने अपनी महत्ता सिद्ध कर दी है। हिंदी की सर्वव्यापकता, सरलता तथा उसका सर्वग्राही गुण, विविधताओं वाले देश को एकसूत्र में बाँधने की क्षमता ने इसे हमारी राजभाषा, अघोषित राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा तथा विश्वभाषा की मर्यादा से मंडित किया है। स्वतन्त्रता पूर्व जो हिंदी भारत के उत्तरी क्षेत्रों में सीमित थी, आज सम्पूर्ण भारत ही नहीं, विश्व के अनेक देशों की संपर्क भाषा बन चुकी है।

तमाम विविधताओं वाले भारत के हर प्रांत की अपनी कोई-न-कोई प्रांतीय भाषा अवश्य है, जिसमें उस प्रांत के लोगों के विचारों का आदान-प्रदान होता है। दुविधा यह है कि जब किसी प्रांत या क्षेत्र की अपनी स्वीकृत प्रांतीय भाषा नहीं होती या फिर अनेक भाषा-भाषी जनसमुदाय होने के कारण एक-दूसरे की भाषा या बोली से अनभिज्ञ होते हैं, तो एक संपर्क भाषा की महती आवश्यकता होती है। भारत के पूर्वोत्तर के संदर्भ में विचार करें, तो यह हिंदीतर भाषा-भाषी क्षेत्र है, जहाँ अनेक जनजातीय भाषाएँ एवं बोलियाँ बोली जाती हैं। 'असम' में क्षेत्रीय स्तर पर संपर्क और राजकीय कामकाज की भाषा असमिया है। यहाँ बोली जाने वाली भाषाओं में असमिया, बंगाली, बोड़ो एवं नेपाली अष्टम अनुसूची में शामिल हैं। शेष जनजातीय बोलियों को बोलने वालों की संख्या कम है या वे अविकसित स्थिति में हैं।

अतः ऐसी स्थिति में पूर्वोत्तर के अन्य प्रान्तों तथा शेष भारत से संपर्क हेतु हिंदी भाषा को सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। असमवासियों में हिंदी की प्रगति के प्रति विशेष प्रेम एवं आग्रह देखा जाता है। जहाँ असमिया भाषा यहाँ के जातीय अस्तित्व की पहचान है, वहाँ हिंदी राष्ट्रीय भावना की। यहाँ हिंदी और प्रांतीय भाषाओं के संदर्भ में लोकमान्य तिलक का मन्तव्य महत्त्वपूर्ण है - "निःसंदेह हिंदी दूसरे कार्यों के लिए प्रांतीय भाषाओं की जगह ले ही नहीं सकती। सब प्रांतीय कार्यों के लिए प्रांतीय भाषाएँ ही पहले की तरह काम में आती रहेंगी। प्रांतीय शिक्षा और साहित्य का विकास प्रांतीय भाषाओं के द्वारा ही होगा, लेकिन एक प्रांत दूसरे प्रांत से मिले तो, पारस्परिक विचार-विनिमय का माध्यम हिंदी ही होनी चाहिए।"[1]

असम में हिंदी की स्थिति आज अत्यंत संतोषजनक है। मेरी दृष्टि में इसे असमिया हिंदी कहा जा सकता है, जिसमें असमिया भाषा के शब्द, शैली आदि का पर्याप्त प्रभाव देखा जाता है। केवल संपर्क भाषा के रूप में ही नहीं, हिंदी आज असमिया भाषा के समानान्तर साहित्य की भी भाषा बनती जा रही है। अपने इस दृढ़ मुकाम को हासिल करने में हिंदी को लंबा सफ़र तय करना पड़ा है। अनेक उतार-चढ़ाव, स्वीकार-अस्वीकार को सहते हुए, असम में हिंदी पल्लवित और पुष्पित हुई है - "हिंदी मानव के बुद्धि-कौशल, विवेक-चिंतन, आचार-व्यवहार तथा संस्कृति की भाषा है। इसी में रचनात्मकता, व्यवहार-धर्मिता एवं गतिमयता है। राजा राममोहन राय ने हिंदी को 'युक्तिदायिनी', बंकिमचन्द्र चटर्जी ने इसे 'ऐक्य बंधन' का आधार तथा दयानन्द ने हिंदी को 'सर्वस्व' कहा। मुहम्मद इकबाल के अनुसार - "हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा।"[2]

प्रस्तुत शोध-पत्र में असम में हिंदी की इसी यात्रा पर प्रकाश डालेंगे। असम में हिंदी की यात्रा का आरंभ मध्यकाल से माना जाता है। मध्यकाल अर्थात् हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग, अपनी सामाजिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से असमिया साहित्य का भी स्वर्ण युग कहा जा सकता है। उत्तर भारत में जहाँ सूर, तुलसी और कबीर के विचारों से साहित्य और संस्कृति समृद्ध हुए, वहीं पूर्वोत्तर भारत के असम में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने अपने साहित्य एवं विचारों से समाज का मार्गदर्शन किया। शंकरदेव का समय पंद्रहवीं शताब्दी है। बारह वर्षों तक उन्होंने भारतवर्ष के विभिन्न तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया। इस दौरान वे देश के अनेक महापुरुषों, दर्शनों, विचारों, साहित्य, भाषाओं आदि के संपर्क में आए। असम लौटकर उन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार किया। इस पुनीत कार्य हेतु उन्होंने जिस साहित्य की रचना की, उसकी भाषा ब्रजबुलि है, जो ब्रजावली ही है। उन्होंने छः नाटक और बरगीतों (श्रेष्ठ गीतों) की रचना ब्रजबुलि में की। ब्रजावली तत्कालीन हिंदी थी। इस संबंध में प्रो. धर्मदेव तिवारी 'शास्त्री' लिखते हैं - "वे असम में हिंदी के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में याद किये जाते हैं। उन्होंने असमिया, ब्रजावली (ब्रजबुलि) और संस्कृत में रचनाएँ की हैं।... ब्रजावली तत्कालीन हिंदी है।"[3]

आज हम हिंदी के रूप में जिस खड़ी बोली हिंदी को जानते हैं, उसका इतिहास भी असम के संदर्भ में काफ़ी पुराना है। अहिंदी भाषी क्षेत्र होने के बावजूद हिंदी के प्रति यहाँ के लोगों का अनुराग प्रेरणीय है। असम में अंग्रेज़ों का प्रवेश 1826 ई. में हुआ। अंग्रेज़ों के आगमन के साथ असम में बांग्ला और अंग्रेज़ी भाषा को महत्ता मिलने लगी। यहाँ के दूरदर्शी विद्वान रामखारघरिया फुकन बांग्ला, अंग्रेज़ी भाषा की अपेक्षा हिंदी अनुरागी थे। उन्होंने हिंदी सीखने पर अधिक बल दिया। हिंदी पुस्तकों के अभाव के कारण, उनका उद्देश्य सफल नहीं हो पा रहा था। अतः उन्होंने स्वयं हिंदी पुस्तकें तैयार करने की योजना बनायी। अपनी योजना का प्रारूप कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'समाचार दर्पण' के 19 मई, 1832 ई. के अंक में प्रकाशित किया। जिसमें हिंदी व्याकरण और अभिदान के संबंध में सूचना दी गई थी। दुर्भाग्यवश इस योजना को पूर्ण करने के पूर्व ही अति अल्पायु में उनकी मृत्यु हो गई। फलस्वरूप असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार को गहरी चोट पहुँची और एक लंबे अंतराल तक यह कमी बनी रही। तथापि यह महत्त्वपूर्ण है कि 1832 ई. में ही असम में हिंदी सीखने और सिखाने की प्रवृत्ति जागृत हो गई थी। बांग्ला भाषा का प्रभुत्व एवं अंग्रेज़ों के भाषिक दमन के बावजूद असम में उत्पन्न होता हिंदी प्रेम यहाँ हिंदी के सुनहरे भविष्य की ओर संकेत करता है। भले रामखारघरिया फुकन की पुस्तक-योजना पूर्ण नहीं हो पाई, फिर भी उन्हें हम असम में हिंदी के प्रथम लेखक की श्रेणी में रख सकते हैं।

1832 ई. के लंबे अंतराल के पश्चात् 1918 ई. असम के इतिहास में हिंदी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण वर्ष रहा। 1918 ई. में देशप्रेमी भुवनचन्द्र गोगोई ने शिवसागर के बकता ग्राम में 'असम पोलिटेकनिक इन्स्टीट्यूशन' नामक शिक्षा संस्थान की स्थापना की। 1926 ई. में इस संस्था में गोगोई ने हिंदी की शिक्षा एक अनिवार्य विषय के रूप में आरंभ कर दिया। कक्षा तीसरी से आठवीं तक हिंदी अनिवार्य विषय के रूप में तथा कक्षा नौवीं-दसवीं में ऐच्छिक रूप में पढ़ने-पढ़ाने का प्रावधान किया गया। इस संस्था को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त थी। अतः 1928 ई. में काशी, बिहार से अनेक हिंदी शिक्षक बुलाए गए। इससे हिंदी शिक्षण-कार्य को गति मिली। उनके पाठ्यक्रम को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अनुरूप कर दिया गया। भुवनचन्द्र गोगोई के अथक प्रयासों से 1926 ई. से असम में अनिवार्य और ऐच्छिक रूप में हिंदी अध्ययन-अध्यापन का श्रीगणेश हुआ। इस प्रकार असम में हिंदी प्रचार-प्रसार एवं शिक्षण की व्यवस्थित परंपरा का आरंभ करने वाले प्रथम हिंदी प्रेमी भुवनचन्द्र गोगोई ही थे।

द्रष्टव्य है कि असम में हिंदी प्रेम का बीजारोपण बहुत पहले ही हो गया था, किन्तु गांधी जी की प्रेरणा

से ही हिंदी यहाँ फली-फूली। वे जितने देशप्रेमी थे, उतने ही हिंदी-प्रेमी। अतः उन्होंने हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्यभार काका साहब कालेलकर को सौंपा। 1921 ई. में गांधी जी असम आए। तत्पश्चात् पूर्वोत्तर में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उत्तर प्रदेश से कर्मठ पुरुष बाबा राघवदास को 1934 ई. में असम भेजा गया। उन्होंने हिंदी प्रचार-कार्य के उद्देश्य से यहाँ के अनेक स्थानीय हिंदी प्रेमियों के साथ जोरहाट, डिब्रूगढ़, शिवसागर, नगाँव, गुवाहाटी, गोलाघाट आदि स्थानों का दौरा किया और उन्हें हिंदी प्रचार का दायित्व सौंपा। इस प्रकार 1934 ई. से 1937 ई. तक अंबिका प्रसाद त्रिपाठी को जोरहाट, शिवसिंहासन मिश्र को डिब्रूगढ़, सूर्यवंशी मिश्र को शिवसागर, देवेन्द्रदत्त शर्मा को नगाँव, धनेश्वर शर्मा को गुवाहाटी, बैकुंठनाथ सिंह को गोलाघाट में हिंदी प्रचारक नियुक्त किया गया। भारत माँ के इन सपूतों ने हिंदी प्रचार में अपना तन-मन-धन समर्पित कर दिया। प्रारम्भ में किसी समिति का गठन नहीं किया गया था। बाबा राघवदास देवरिया ज़िले के अपने बहरज आश्रम से ही पूर्वोत्तर में हिंदी के प्रचार-प्रसार का संचालन कर रहे थे। 1937 ई. में अहिंदी भाषियों को हिंदी का उत्तम ज्ञान कराने के उद्देश्य से चलाए गए शिविर में असम से नवीनचंद्र कलिता, रजनीकान्त चक्रवर्ती और हेमकान्त भट्टाचार्य को भेजा गया।

1938 ई. के अंत में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास के अनुभवी और दूरदर्शी प्रचारक जमुना प्रसाद श्रीवास्तव, असम में संचालक बनकर आए। बाबा राघवदास और जमुना प्रसाद श्रीवास्तव ने एक होकर प्रचार-प्रसार हेतु पूरे असम का दौरा किया। असम के तत्कालीन प्रधानमंत्री लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै के आग्रह पर उन्हीं की अध्यक्षता में 3 नवंबर, 1938 को 'हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना की गई। उक्त संस्था की पहली बैठक 11-12-1938 में कॉटन कॉलेज, गुवाहाटी में सम्पन्न हुई, जिसमें डॉ. हरेकृष्ण दास को समिति का अध्यक्ष तथा देवकान्त बरुवा को हिंदी प्रचार समिति का मंत्री पद प्रदान किया गया। इस बैठक में बाबा राघवदास, रमेशचन्द्र, बी. के. भण्डारी, नीलमणि फुकन, आर. डी. साही, जे. एन. उपाध्याय, ति. जो. स्माल आदि गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे। इसी अवसर पर गोपीनाथ बरदलै ने सरकार की ओर से समिति को 1200 रुपये वित्तीय अनुदान के साथ कक्षा पाँचवीं से हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाए जाने की घोषणा कर दी। इस प्रकार सरकार एवं स्वयंसेवी संस्था हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए एकजुट हो गए। जनता और सरकार के एकजुट होते ही काका साहब कालेलकर के प्रस्तावानुसार 'हिंदी प्रचार समिति' का नाम "असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" रखा गया। 1942 ई. में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को स्वतंत्रता प्रदान कर दी। अतः अक्टूबर 1948 से इस समिति ने अपनी स्वतंत्रता का लाभ उठाते हुए परीक्षा संचालन, पाठ्य पुस्तकों का चयन एवं निर्माण का कार्य प्रारंभ किया।

1950-51 ई. में सरकारी अनुदान के सहयोग से समिति ने हिंदी शिक्षक-प्रशिक्षण केंद्र चलाने की योजना बनाई, जो अब राज्य सरकार के अधीन हो गई। इस केंद्र को 1951 ई. में सर्वप्रथम दुधनै, फिर मिसामारी और अंत में कार्बी आंग्लांग के डिफु में स्थानांतरित कर दिया गया। समिति अपने प्रचारकों द्वारा हिंदी का प्रचार-प्रसार बड़ी तत्परता से करती रही। कालांतर में सरकार के आदेश पर इन्हीं प्रचारकों को सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में औपचारिक रूप से हिंदी पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया। शिक्षकों की कमी होने पर सरकार ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा से उत्तीर्ण व्यक्तियों को भी नियुक्त किया। आवश्यकतानुसार उन्हें प्रशिक्षण के लिए आगरा भी भेजा गया। समिति के गुरुत्तर कार्यों को देखते हुए 1961 ई. में शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीनस्थ, हिंदी निदेशालय ने अखिल भारतीय हिंदी शिक्षक संगोष्ठी के आयोजन का भार समिति को सौंपा। इसी वर्ष हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु राज्य सरकार को सलाह देने के लिए हिंदी सलाहकार समिति का भी गठन किया गया। 1958

ई. में सरकार ने हिंदी-निरीक्षक की आवश्यकता महसूस करते हुए, लोकनाथ भराली को इस पद के लिए नियुक्त किया। लोकनाथ भराली पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 1952 ई. में काशी विद्यापीठ से हिंदी में एम. ए. किया था।

1973 ई. में असम सरकार ने पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की योजना बनाई। समिति के आग्रह पर सरकार ने पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य समिति को सौंप दिया। असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में 'असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति', राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, का महत्त्वपूर्ण योगदान है। साथ ही, विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज विद्यालयों में छठी कक्षा से आठवीं कक्षा तक अनिवार्य तथा नौवीं-दसवीं में ऐच्छिक विषय के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। अधिकांश गैरसरकारी स्कूलों में कक्षा पहली से ही हिंदी पढ़ाई जाती है। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति संतोषजनक नहीं है, क्योंकि अधिकांश विद्यालयों में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था नहीं है, तो कहीं योग्य शिक्षकों की नियुक्ति का अभाव है।

महाविद्यालयों में हिंदी पठन-पाठन का कार्य 1961 ई. से आरंभ हुआ है। सर्वप्रथम प्रागज्योतिश कॉलेज, गुवाहाटी और डी. एच. एस. कनोई कॉलेज, डिब्रूगढ़ में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था की गई। तत्पश्चात् 1972 ई. में कॉटन कॉलेज, गुवाहाटी में हिंदी ऑनर्स की पढ़ाई आरंभ की गई। आज लगभग असम के सभी महाविद्यालयों में हिंदी (क) आधुनिक भारतीय भाषा (एम. आई. एल.), (ख) प्रधान हिंदी (ऐच्छिक विषय), (ग) ऑनर्स के रूप में पढ़ाई जाती है। विश्वविद्यालयों की बात करें, तो हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता एवं हिंदी प्रेमी विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या को देखते हुए सर्वप्रथम गुवाहाटी विश्वविद्यालय में 1970 ई. में हिंदी विभाग खोला गया। आज प्रतिवर्ष लगभग साठ छात्र-छात्राओं का नामांकन होता है। सुखद विषय है कि इनमें लगभग 95% विद्यार्थी असमिया भाषी होते हैं। यहाँ 1984 ई. से निरंतर शोध-कार्य भी चल रहा है। कॉटन विश्वविद्यालय, असम विश्वविद्यालय एवं तेजपुर विश्वविद्यालय में भी हिंदी विभाग हैं। यहाँ स्नातकोत्तर की पढ़ाई के साथ-साथ शोध-कार्य एवं अनुवाद संबंधी पाठ्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं।

अतः असम में विद्यालयों एवं महाविद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक हिंदी की स्थिति अत्यंत संतोषजनक कही जा सकती है। खेद इस बात का है कि 2009-10 ई. में डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग (स्टडी सेंटर) खोलने की स्वीकृति प्राप्त हुई। किन्तु शिक्षक नियुक्ति के अभाव में यह कार्य ठप्प पड़ा हुआ है। फलतः हिंदी में उच्च शिक्षा लेने के इच्छुक विद्यार्थियों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

असम में हिंदी केवल प्रचार-प्रसार तक सीमित नहीं रही। इसमें पर्याप्त सृजनात्मक लेखन, अनुवाद कार्य भी किये गए और आज भी हो रहे हैं। इस कार्य में असम के असमिया भाषी हिंदी लेखकों तथा असमवासी हिंदी भाषी लेखकों की महत्त्वपूर्ण साझेदारी रही है। जिसमें कमल नारायण देव, चक्रेश्वर भट्टाचार्य, रजनीकान्त चक्रवर्ती, बापचन्द्र महंत, तरुण आज़ाद डेका, महेश्वर महंत, नवारुण वर्मा, चित्र महंत, डॉ. भूपेन्द्रराय चौधरी, परेशचन्द्र देव शर्मा, डॉ. हीरालाल तिवारी, डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', डॉ. धर्मदेव तिवारी 'शास्त्री', डॉ. इंद्रदेव सिंह जैसे अनेक हिंदी प्रेमियों और साहित्यकारों के अथक प्रयास से असम में हिंदी फली-फूली। असम में हिंदी का पहला प्रेस 1936 ई. में शिवसिंहासन मिश्र ने डिब्रूगढ़ में 'मिश्र प्रेस' की स्थापना की थी। इसके पश्चात् 1957 ई. में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने 'राष्ट्रभाषा प्रेस' की स्थापना की।

असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में यहाँ की पत्र-पत्रिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रथम पत्रिका 1919 ई. में विश्वेश्वर दत्त शर्मा द्वारा संपादित 'प्रकाश' थी, जो डिब्रूगढ़ से निकली थी। इसके पश्चात् 'नव-जागृति' (1935), 'अकेला' (1947), 'शंखनाद' (1958), 'पूर्वज्योति' (1959), 'असम प्रदीप' (1972),

'नवध्वनि' (1976), 'जयहिंद' (1977), 'पूर्वगंधा' (1982), 'रजनीगंधा' (1984) आदि। उल्लेखनीय है कि असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पत्रिका 'राष्ट्रसेवक' का असम में हिंदी का अलख जगाने में अतुलनीय योगदान है। आज यह पत्रिका विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिकाओं की सूची में स्थान पाने में सक्षम हुई है। यह द्विभाषी पत्रिका हिंदी और असमिया में प्रकाशित होती है - "असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मुख पत्र "राष्ट्र सेवक" का हिंदी- असमिया भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।"[4] वर्तमान समय में 'उलुपी' एवं 'समन्वय पूर्वोत्तर' पत्रिकाएँ भाषा और साहित्य के क्षेत्र में सेतु का कार्य कर रही हैं।

असम से प्रकाशित होने वाला हिंदी का प्रथम दैनिक समाचार-पत्र जी. एल. अग्रवाल द्वारा 16 मई, 1989 को प्रकाशित 'पूर्वाञ्चल प्रहरी' है। इसके अलावा 30 मई, 1989 ई. में प्रकाशित 'सेंटिनल' और 14 सितंबर, 1989 में प्रकाशित हिंदी दैनिक 'उत्तर काल' हैं। 1991 ई. को 'पूर्वाञ्चल प्रहरी' समूह ने साप्ताहिक 'सत्यसेतु', 30 मार्च, 1996 ई. को गुवाहाटी से सांध्य दैनिक 'द ब्लास्ट' एवं 2005 से प्रकाशित हो रहे 'पूर्वोदय' समाचार-पत्र प्रमुख हैं। आज भी पूर्वाञ्चल प्रहरी, सेंटिनल, पूर्वोदय खबर आदि दैनिक समाचार-पत्र नियमित रूप से प्रकाशित हो रहे हैं। इनसे हिंदी और उनका साहित्य दिन-ब-दिन समृद्धि की ओर बढ़ रहे हैं। साथ ही, असमिया और हिंदी साहित्य के अनुवाद कार्य को भी विशेष प्रोत्साहन मिलने से इस कार्य में गति आई है।

इस प्रकार हिंदी की बहती अविरल धारा ने मध्यकाल से लेकर आज तक पूर्वोत्तर भारत, विशेषकर असम को देश की मुख्यधारा, संस्कृति तथा राष्ट्रीयता से बाँधे रखा है। अंग्रेज़ी एवं बंगाली भाषा के प्रभुत्व के बावजूद असम के दूरदर्शी विद्वानों ने हिंदी को अपनाया। हिंदी हमारी एकता एवं राष्ट्रीयता की संवाहिका बनी। असम जैसे अहिंदी भाषी क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार में यहाँ के विद्वानों तथा हिंदी प्रेमियों ने तन-मन-धन लगाया। हिंदी की जनसुलभता और बोधगम्यता के कारण इसकी लोकप्रियता तीव्र गति से बढ़ी है। असमिया भाषा के समानान्तर हिंदी भी यहाँ की संपर्क भाषा बन चुकी है। हिंदी की लोकप्रियता एवं प्रचार-प्रसार में दूरदर्शन, फ़िल्म तथा आकाशवाणी की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। असम में हिंदी की अब तक की इस लंबी यात्रा में उसके शिक्षण-प्रशिक्षण, प्रयोग-प्रसार में शिक्षानुष्ठानों, प्रचार समितियों, पत्र-पत्रिकाओं, हिंदी सेवियों तथा लेखकों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। इस कार्य में 'केंद्रीय हिंदी संस्थान', आगरा एवं 'केंद्रीय हिंदी निदेशालय', दिल्ली, हिंदी शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिये निरंतर पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों व संगोष्ठियों के आयोजन, मुफ़्त में पुस्तकें और हिंदी पत्रिकाएँ उपलब्ध कराने तथा यहाँ के अहिंदी भाषी लेखकों एवं अनुवादकों को पुरस्कार द्वारा प्रोत्साहित कर अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन सबके अथक प्रयासों से ही वर्तमान असम में हिंदी की स्थिति अत्यंत सुखद कही जा सकती है। यह व्यापार, बाज़ार, संपर्क से लेकर शिक्षित-अशिक्षित सभी की भाषा बनती जा रही है, जो हिंदी के उज्ज्वल भविष्य को दर्शाता है।

हिंदी प्रेमियों को इतने में ही संतोष कर लेना पर्याप्त नहीं है। हिंदी के विकास की और संभावनाएँ यहाँ मौजूद हैं। जिसके लिए निरंतर प्रयासरत रहना आवश्यक है। यहाँ के सरकारी स्कूलों में जहाँ कक्षा छठवीं से आठवीं तक हिंदी शिक्षण अनिवार्य है, उसे कक्षा पहली से दसवीं तक करना आवश्यक है, जिससे विद्यार्थी जल्दी हिंदी सीख सकें। विद्यार्थियों को शुद्ध और मानक हिंदी सीखने तथा लिखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। प्राथमिक स्तर से ही हिंदी भाषा और व्याकरण के ज्ञान, हिंदी भाषा के महत्त्व तथा उसमें भविष्य जैसे उद्देश्यों को लेकर कार्यशालाओं का आयोजन करने से हिंदी पठन-पाठन में विद्यार्थियों की रुचि और बढ़ेगी। उनमें हिंदी अध्ययन-अध्यापन के प्रति रुचि पैदा करने हेतु इसे रोज़गारोन्मुख बनाना अति आवश्यक है। इस हेतु सरकार तथा स्वयंसेवी संस्थाओं, समितियों को एक होकर हिंदी के सर्वांगीण

विकास हेतु और कार्य करने होंगे, क्योंकि "राष्ट्र की एकता को यदि बनाकर रखा जा सकता है, तो उसका माध्यम हिंदी ही हो सकती है।"[5]

संदर्भ :

1. वंशी, डॉ. बलदेव (सं.), हिंदी के तीन पग : राजभाषा, राष्ट्रभाषा, विश्वभाषा, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2012, पृष्ठ - 25
2. प्रो. मोहन (सं.), समन्वय पूर्वोत्तर, अंक - 14, जनवरी - मार्च 2012, पृष्ठ - 135
3. चौबे, कृपाशंकर (सं.), हिंदी और पूर्वोत्तर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2018, पृष्ठ - 46
4. जीनी, डॉ. सी. इ., पूर्वाञ्चल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1990, पृष्ठ - 75
5. वंशी, डॉ. बलदेव (सं.), हिंदी के तीन पग : राजभाषा, राष्ट्रभाषा, विश्वभाषा, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2012, आवरण पृष्ठ से

msuma.chetri@gmail.com

हिंदी : लिपि, साहित्य एवं संस्कृति

6. गंगा प्रसाद विमल के साहित्य में हाशिए के लोग - डॉ. जयप्रकाश कर्दम

7. भवानी प्रसाद मिश्र : तुम लिखते हो, मैं बौलता हूँ - श्री बृजराज सिंह

8. अमेरिकी हिंदी कहानियाँ - डॉ. मुनिल कुमार वर्मा

9. भारतीय साहित्य का प्रतिफलित आशय - डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

10. हिंदी कविता में कश्मीर - श्री उमर बशीर

11. रामायण और रामचरितमानस : विश्व के पाँचों भूखंडों में - प्रो. विजयकुमारन सी.पी.वी.

12. मॉरीशस में महिला साहित्यकार और उनका लेखन - डॉ. नूतन पाण्डेय

13. कवि गिरिधर की प्रासंगिकता - डॉ. लक्ष्मी झमन

14. फ़िजी में हिंदी साहित्य - श्रीमती श्रद्धा दास

गंगा प्रसाद विमल के साहित्य में हाशिए के लोग

- डॉ. जयप्रकाश कर्दम
नई दिल्ली, भारत

गंगा प्रसाद विमल मानवीय संवेदना के साहित्यकार हैं। विमल जी का बचपन पहाड़ों में बीता और बाद का जीवन और कार्यक्षेत्र दिल्ली जैसे महानगर में। इसलिए बहुत स्वाभाविक रूप से उनकी रचनाओं की विषयवस्तु और पात्र ग्राम और शहर दोनों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए उनके लेखन में एक ओर प्रकृति, पहाड़ और गाँव हैं, तो दूसरी ओर नगर और महानगर हैं। उनका लेखन एक तरह से देखा जाए, तो गाँव और शहर के बीच तथा नैसर्गिक और निर्मित के बीच आना-जाना है। अपनी इस आवाजाही में वह नैतिकता और अनैतिकता, यथार्थ और कृत्रिमता तथा परम्परा और आधुनिकता के विश्वासों और मूल्यों से टकराते हुए आगे बढ़ते हैं। वह अपनी रचनाओं में कुछ नया गढ़ते या रचते नहीं हैं, अपितु जो है उसे ही विभिन्न कोणों से जानने, समझने की कोशिश करते हैं। वह न कुछ बताते या समझाते हैं और न किसी भी व्यक्ति, विचार या वस्तु की व्याख्या करते हैं। बस, सहज रूप से अभिव्यक्त करते हैं।

विमल जी के साहित्य से गुज़रते हुए हम यह देखते हैं कि उनके कहे में बहुत कुछ अनकहा होता है और अनकहा बहुत कुछ कहता है। शायद यह कहा, अनकहा ही गंगा प्रसाद विमल के शब्दों में मालूम और नामालूम है। इसी मालूम और नामालूम को ही वह अपनी कविता और कहानियों में अभिव्यक्त करते हैं। यथा - 'जो मालूम है उसे नामालूम बनाने के लिए मैं कविताएँ लिखता हूँ और जो नामालूम है, उसे एकदम विश्वसनीय बनाते हुए कहानी और सबसे बड़ा सच है कि मैं हर विधा में सिर्फ़ कहानी ही लिखता हूँ।' मालूम को नामालूम और नामालूम को विश्वसनीय बनाना सरल नहीं है। इसके लिए कौशल चाहिए और कहने की आवश्यकता नहीं है कि गंगा प्रसाद विमल में ऐसा करने का कौशल था।

जिस तरह का विमल जी का सहज और सरल व्यवहार था, वैसी ही सहजता और सरलता उनके लेखन में है। उनकी रचनाओं में किसी तरह का कोई दुराव, छिपाव या भटकाव नहीं है। न वह किसी मत के पक्ष में खड़े होते हैं और न विरोध में दिखायी देते हैं। दूर खड़े होकर जीवन को जैसा देखते हैं, वैसा ही चित्रित कर देते हैं। उन्हें कुछ भी कहने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, सब कुछ उनकी चेतना से स्वत: बाहर आता है। हाशिए के लोग भी उनकी रचनाओं में इसी तरह आए हैं। उनके प्रति विमल जी कोई सहानुभूति व्यक्त नहीं करते हैं और न करुणा दिखाते हैं। हाशिए की दुनिया का सच क्या है तथा समाज का उनके प्रति क्या दृष्टिकोण और व्यवहार है, वह इसको बारीकी से देखते हैं और यथावत अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करते हैं।

भारत में हाशिए के लोगों की पहचान वैसी नहीं है, जैसी इसके बारे में अँटोनियो ग्रामसी की संकल्पना है, उससे भिन्न है। भारत में, हाशिए के लोग दो तरह के हैं, एक वह, जो आर्थिक रूप से कमज़ोर तथा श्रम करके अपनी आजीविका चलाते हैं। दूसरे, सामाजिक रूप से निम्न जातीय और अस्पृश्यता के कारण समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग और हाशिए पर रहने वाले लोग। हाशिए के ये लोग मेहनत को अपना ईमान तथा सत्य और नैतिकता को धर्म मानते हैं। ईमानदारी के रास्ते पर चलते हुए, रात-दिन कड़ी मेहनत करके भी उनका जीवन कष्टमय और संघर्षपूर्ण बना रहता है, जबकि दूसरी ओर झूठ और बेईमानी से निरंतर सम्पन्न होते लोग हैं। ईमानदारी और

सत्य के मार्ग पर चलकर यदि पेट नहीं भरता है, तो ये मूल्य किस काम के हैं। अदम गोंडवी का प्रसिद्ध शेर याद आ रहा है - 'चोरी न करें, झूठ न बोलें तो क्या करें, चूल्हे पे क्या उसूल पकाएँगे शाम को।' हाशिए के लोगों के इस दर्द को गंगा प्रसाद विमल की कहानी 'आत्महत्या' के एक पात्र के उन शब्दों से अच्छी तरह समझा जा सकता है, जो आत्महत्या करना चाहता है और आत्महत्या करने से पहले एक पत्र लिखता है, जिसमें वह लिखता है, 'हाँ, मैं आत्महत्या कर रहा हूँ, इसलिए कि कोई विकल्प नहीं है। मूल्य, नारे, ईमानदारी और सच्चाई.....ये सब बातें झूठी हैं। जो लोग मूल्यों, ईमानदारी और अच्छाई के झूठ से बंधे नहीं हैं, वे सुखी लोग हैं। भौतिक रूप से सम्पन्न लोग। ये ही वे लोग हैं, जो अपेक्षा रखते हैं कि कोई ग़रीब मास्टर ग़रीब बच्चों के मन में बचपन से ही धर्म, दया आदि के बीज बो डाले, ताकि इन बंधनों में जीवन भर बँधे रहें। वे बैल की तरह समाज का सारा भार ढोते रहें.....हमेशा के लिए दब जाएँ, जिसके रहते वे कभी अपना हक़ न माँग सकें। इन उपदेशों से पीढ़ियाँ की पीढ़ियाँ कायर और नपुंसक बनी पड़ी हैं।'

समाज समता के मूल्यों पर निर्मित और विकसित होता है। समाज की संकल्पना में जो कुछ होता है, मिला-जुला होता है, उसमें हाशिया जैसी किसी चीज़ के लिए कोई स्थान नहीं है। हाशिए का निर्माण किया जाता है। हाशिए का समाज कैसे बनता है? आत्महत्या करने वाले युवक के इन शब्दों से इस तथ्य को बहुत सहजता से समझा जा सकता है। कहानी यह संकेत करती है कि चतुर-चालाक लोग झूठ, बेईमानी और छल-कपट से सीधे-सच्चे और ईमानदार लोगों को मूर्ख बनाकर उनका शोषण करते हैं। सदैव सत्य बोलना, चोरी न करना, ईमानदारी का आचरण करना, दीन-दुखियों की सेवा करना और ईश्वर में विश्वास करना, ये सब धर्म की शिक्षा के अंग रहे हैं। निम्न वर्ग या हाशिए के समाज इन सब का पालन करता रहा है और अपने साथ होने वाले धोखे, बेईमानी, और शोषण को भी इस संतोष के साथ सहता है कि भगवान देखेगा और न्याय करेगा। लेकिन कोई भगवान उसके साथ न्याय नहीं करता, न अन्याय और शोषण करने वालों को कोई सज़ा देता है और न उसे शोषण से मुक्ति दिलाता है। आत्महत्या करने वाला युवक अपने पत्र में यह लिखता है, 'डकैत, तस्कर, चोरबाज़ारिए.....वे लोग तो मानव-मूल्य या मानव-करुणा या सच को ताक पर रख, बहुत ही क्रूरतापूर्ण ढंग से अपनी तिजोरियाँ भरे जा रहे हैं और मैं स्कूल में बच्चों को पढ़ा रहा था कि झूठ बोलना पाप है, हमेशा सच बोला करो, दीन-दुखियों की मदद के लिए आगे आओ.....।'

दया, धर्म, ईमानदारी, न्याय, नैतिकता - ये सब किताबी आदर्श की बातें हैं, जो पढ़ने, कहने या सुनने में अच्छी लगती हैं, लेकिन व्यवहार के धरातल पर इनका कोई मूल्य नहीं है। आत्महत्या करने वाला युवक अच्छी और नैतिक शिक्षा के नाम पर पढ़ायी और सिखायी जाने वाली इन बातों के खोखलेपन और अर्थहीनता को अच्छी तरह जानते समझते हुए भी विद्यार्थियों को वही सब बातें पढ़ाने के लिए स्वयं को अपराधी समझता है। वह महसूस करता है कि अच्छी कही जाने वाली, लेकिन अव्यावहारिक बातें पढ़ाकर, वह उनके साथ न्याय नहीं कर रहा है, जिनका शोषण इन सब बातों पर अमल करने के कारण ही होगा। उसका दर्द उसके इन शब्दों में अनुभव किया जा सकता है, 'क्या दे सकता हूँ मैं अपने बच्चों को? क्या छोड़ सकता हूँ विरासत में... सिर्फ़ भूख... क़र्ज़... पराजय... और एक निकम्मी-सी धारावाहिक प्रतीक्षा... मैं उन लोगों को जानता हूँ जो हमारी सुरक्षा के लिए सीधे ज़िम्मेदार हैं, पर मैं उनका कर ही क्या सकता हूँ।'

इस दर्द को कहानी के एक अन्य पात्र धर्मराज के इन शब्दों से और गहराई से समझा जा सकता है, जो वह विमल से प्रश्न करते हुए कहता है, 'कभी आप कल्पना कर सकते हैं कि कोई मज़दूर पिछले सात वर्ष से सुबह-शाम का खाना जुगाड़ने के लिए मेहनत किए जा रहा हो और वह.....जीवन हर रोज़ दुष्कर बनाता जाता है।'

हाशिए के लोगों का शोषण की चक्की में पिसने

का यह सारा खेल, धर्म की धुरी पर चलता है। धर्म के नाम पर, धर्म की अफ़ीम खिलाकर ही उनका शोषण किया जाता है। ईश्वर यदि धर्म के व्यापार का ब्रांड नेम है, तो मंदिर एक ट्रेड सेंटर की तरह है। धार्मिक मूल्यों में विश्वास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यहीं आना है और यहीं पर अपनी जेब ख़ाली करके जाना है। यही वह तंत्र है, जो हाशिए के समाज का निर्माण करता है। धर्मराज, विमल से यही कहता है, 'धर्म, मंदिर.....विश्वास, ये चीज़ें आदमी को बेचारा साबित करने में लगी हैं।'

हाशिए के असली लोग वे हैं, जो वर्ण-जाति-व्यवस्था के कारण समाज से अलग-थलग, उपेक्षित और हाशिए पर हैं। जो गाँवों का हिस्सा होकर भी गाँवों के अंदर नहीं रह सकते, उनकी बस्तियाँ गाँवों से बाहर एक ख़ास दिशा में होती हैं। यूँ तो वे आर्थिक रूप से भी विपन्न होते हैं, किंतु यदि इस समाज का व्यक्ति आर्थिक रूप से सम्पन्न हो जाए, तो भी गाँव के बीच में उसका घर बनाकर रहना उच्चजातीय लोगों को स्वीकार्य नहीं होता है। इसके अलावा, वर्ण-व्यवस्था द्वारा निर्धारित पेशे या कार्य ही प्रायः हाशिए के इन लोगों को करने पड़ते हैं। धर्म के उपदेश भी इन लोगों में ही सबसे अधिक दिए जाते हैं, मानो ये ही सबसे अधिक अधार्मिक लोग हों।

आर्थिक और जातिगत आधार के अलावा दो अन्य तरह के लोग, हाशिए के लोग होते हैं, एक ग्रामीण हाशिए के लोग और दूसरे शहरी हाशिए के लोग। ग्रामीण हाशिए के लोगों में कुछ के पास अपनी थोड़ी-बहुत कृषि भूमि भी होती है, किंतु अधिकांश लोग भूमिहीन कृषि मज़दूर होते हैं, वे दूसरों के घर और खेतों में काम करते हैं। इन लोगों के पास, बेशक कच्ची मिट्टी के हों या पक्की ईंटों के, प्रायः अपने घर होते हैं, किंतु शहरी हाशिए के लोगों में कोई निर्माण कार्यों में ईंट और तसला उठाने का काम करता है, कोई रिक्शा चलाता है, सब्ज़ी बेचता है, कोई दूसरों के घर, दुकान या कारख़ानों में काम करता है और कोई सड़क के किनारे पटरी पर सामान बेचता है या छोटी-मोटी चाय की दुकान या ढाबा चलाता है। जहाँ दो फ़ुट की ज़मीन में ही उनका धंधा और घर चलता और पलता है। कुछ लोग झुग्गी-झोंपड़ियों में रहते हैं और कुछ सड़कों के किनारे आसमान की छत के नीचे। कुछ किराए के कमरे लेकर रहते हैं। बहुत कम लोगों के पास ही अपने घर होते हैं।

रोटी और रोज़गार की तलाश में अपने घर-गाँव छोड़कर नगरों-महानगरों में विस्थापन करने वाले श्रमिक हों अथवा गाँवों में उच्च जातियों के अत्याचार और शोषण से मुक्ति पाने के लिए अपनी ज़मीन से उजड़कर अन्यत्र जाकर रहने को विवश निम्न जातियों के लोग, वे सब हाशिए के लोग हैं। गंगाप्रसाद विमल जी अपनी कविताओं में श्रमिकों के विस्थापन के दर्द को महसूस करते दिखायी देते हैं। भूखे, नंगे, अभावग्रस्त, मन में अतीत की यादें और आँखों में भविष्य के सपने लिए, कमर में लगे पेट, पिचके गालों के साथ रोटी की जुगाड़ में यहाँ-वहाँ भटकने वाले ये श्रमिक ज़िंदा लाशों की तरह हैं। अपनी एक कविता में वे कहते हैं, '.....मैंने उन्हें चलते ही देखा /सड़क किनारे रेवड़ों में /सरों पर लादे /बेतरतीब सामान /वे शांति की तलाश में थे वहाँ /सुकून की /कौन कहे /चलते हुए सपनों की स्मृति /हर ठोकर की कल्पना पर ही /विलो जाती है विस्मृति में/ xxxxxxxxxxxxxxxx मैंने उन्हें चलते ही देखा /आज भी ढोते हुए अपने शरीर /वे चलते ही रहते हैं कर्मवीर /पुरुषार्थी....'

गंगाप्रसाद विमल हाशिए के इस समाज को पहचानते हैं और इन हालातों में वे कैसे ज़िंदा रहते हैं, इसे एक चमत्कार के रूप में देखते हैं। 'बदहवास' कहानी का नायक इसका चित्रण इस प्रकार करता है, 'जिस चमत्कार की बात मैं कर रहा था, वह देशकाल का चमत्कार वहीं घटित था, यानी दो फ़ुट चौड़ी और अनंत विस्तार जैसी लम्बी उस पटरी पर। आधा फ़ुट जगह खाने वालों ने घेरी हुई थी, आधा फ़ुट चमचमाते बर्तनों ने और एक फ़ुट में गृहस्थी का वह राजभवन था। उसमें चीकट हुए बिस्तर थे। उन्हीं बिस्तरों से सटे एक कोने में एक छोटा-सा बच्चा फटी हुई चादर से अपना सोया हुआ जिस्म झलका रहा

था।'

इन हालातों में संघर्ष करके भी जो जीवंतता के साथ जी सकता है, वह बड़ी से बड़ी चुनौती का सामना कर सकता है। लेखक को इस चमत्कार में बेहतर भविष्य की आशा दिखायी देती है कि एक दिन यह चमत्कार अपनी वर्तमान परिस्थितियों पर विजय अवश्य पाएगा। उसकी यह आश्वस्ति उसके इन शब्दों में अभिव्यक्त हुई है, 'अचानक मुझे उस बच्चे की तस्वीर ने खींच लिया, जो वहीं कहीं मेरी स्मृति में थी। मुझे याद आया, फटी हुई चादर उसके साँस लेने से ऊपर नीचे हो रही थी। मुझे याद आया उसके चेहरे पर मुस्कान तैर रही थी, कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं, वह भविष्य में झाँक रहा था.....एक खौफ़नाक वर्तमान के विरुद्ध उसकी सजीली, कमसिन मुस्कान जैसे एक झंडे की तरह खड़ी थी। अडिग।'

धर्म और पूँजी दोनों हाशिए के लोगों का शोषण करते हैं। धर्म बौद्धिक दास बनाकर लूटता है और पूँजी शारीरिक रूप से निचोड़ती है। शोषण करने के मामले में गाँव के सामंत और शहर के पूँजीपति में कोई अंतर नहीं है। दोनों ही उसका शोषण करते और लूटते हैं। अधिक से अधिक मुनाफ़े पर अपनी गिद्ध दृष्टि जमाए पूँजी ने आज अपना रूप बदल लिया है। गंगा प्रसाद विमल पूँजी के इस बदलते रूप और चरित्र को बहुत अच्छी तरह पहचानते हैं, तभी वह कहते हैं 'इसमें कोई दो राय नहीं है। व्यवस्थाएँ विकसित होती रहती हैं। परंतु मनुष्य को लूटने की दृष्टि से जिन सुविधाओं की विज्ञापन और प्रचार द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर विज्ञप्ति की जाती है, वह शोषण का नया तरीका है। पहले आदमी के श्रम पर कुछेक पूँजीपति डाका डालते थे, अब पूँजीपति घराने, कारपोरेट जगत विश्व को...'

जातिगत ऊँच-नीच का ज़हर भारतीय समाज में इतने गहरे तक व्याप्त है कि इसने मानवीय संवेदना के स्रोतों को भी सुखा दिया है। मुँह देखकर बात करने वाले समाज में भी लोग जाति देखकर बात और व्यवहार करते हैं। निम्न जातियों के प्रति उच्च जातियों के मन में कोई अपनापन और सद्भाव नहीं है। उच्च जातियों की दृष्टि में मनुष्य के रूप में उनका कोई मूल्य नहीं है। कम-से-कम अपने जैसे, अपने समान मनुष्य के रूप में तो उनकी कोई स्वीकृति नहीं है। विमल जी की कहानी 'बच्चा' भारतीय ग्रामीण जीवन के इस कटु यथार्थ को अत्यंत ईमानदारी से अभिव्यक्त करती है। हवेली से गिरकर एक बच्चा मर गया। औरतों का हुजूम उमड़ आता है। वे सब कुलीन औरतें हैं। आती हैं, रोती हैं, मातम मनाती हैं। किंतु यह पता चलते ही कि बच्चा सबरी धोबिन का है, सबकी आँखों के आँसू ग़ायब हो जाते हैं और सब उठकर चली जाती हैं। कहानीकार ने बहुत ख़ूबसूरती से इसका चित्रण किया है। श्रीमती परेश धड़धड़ाती हुई ठीक बीच में पहुँची और लेटे बच्चे को देख बोली 'मेरा अंदाज़ा है कि यह सबरी धोबिन का लड़का है।'

'धोबिन का लड़का.....' भीड़ में सन्नाटा छा गया। औरतें हड़बड़ाहट में उठने लग गयीं।

'बेचारा मर गया' श्रीमती परेश के कहने पर भी कोई औरत रोने और मातम मनाने के लिए नहीं रुकी।

कुलीन और श्रीमंत किस्म की औरतें जैसे घूँघट के बीच ही नाक-भौं सिकोड़ रही थी। धोबिन के बच्चे के लिए, वे नहीं रुक सकती थीं। उसे छूने का तो सवाल ही नहीं उठता था।

दलितों के दर्द को वही सवर्ण ठीक से समझ सकता है और उनके प्रति सच्ची सहानुभूति रख सकता है, जो अपनी जातीय श्रेष्ठता के झूठे सत्य को स्वीकार करता हो तथा अपनी और अपनी जाति की आलोचना कर सकता हो। हाशिए के समाज के प्रति गंगाप्रसाद विमल की समझ और सहानुभूति इसलिए ईमानदार दिखायी देती है कि वे जाति की कसौटी पर अपना मूल्यांकन करते हैं और अपनी जातीय श्रेष्ठता के झूठे सत्य को स्वीकार करते हैं। अपनी कहानी 'बीच की दरार' में वे इस सत्य को इन शब्दों में स्वीकार करते दिखायी देते हैं, 'ब्राह्मण होने की हैसियत से वह लोगों की जन्म कुंडलियाँ देखकर उनके भविष्य के बारे में कुछ बातें बताया करता था, लेकिन वह अपने केस के बारे में कुछ भी नहीं जानता था, यह बातें

मुझे अचरज में डाले हुए थीं।'

जातिगत ऊँच-नीच, भेदभाव और शोषण का आधार धर्म है, क्योंकि जिस वर्ण-व्यवस्था से जातियों की उत्पत्ति हुई है, उसकी जड़ें ऋग्वेद में हैं, जिसे हिंदू धर्म का सबसे बड़ा धर्म-ग्रंथ माना जाता है। रामायण, महाभारत और वेद, पुराण की कथाओं के माध्यम से ब्राह्मणों ने निम्न जातियों को यह पाठ पढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है कि उनकी दयनीयता, दरिद्रता और निम्नता उनके पूर्व जन्मों के कर्मों का फल है और इस जन्म में वर्ण-व्यवस्था द्वारा निर्धारित कर्म कर, ईश्वर को प्रसन्न करके वे अगले जन्म में सुख पा सकते हैं। ऊपर वाला (अर्थात् ईश्वर) बहुत दयालु है, वह सब दुख दूर कर देगा। यही झूठी आशा उन्हें जीवन भर शोषण की ज़ंजीरों में जकड़े रहती है। गंगा प्रसाद विमल इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं। 'मैं भी जाऊँगा' कहानी में उनकी यह टिप्पणी उल्लेखनीय है, 'बस कुछ नहीं। एक लंबी फ़ुर्सत। लोग फ़ुर्सत में हैं। जो कुछ होगा वह पश्चिम से ही आएगा। अगर आप गौर करें, तो यह एक तरह का ब्राह्मणवाद है। ब्राह्मणों ने यह व्यवस्था पहले से की हुई है। जो कुछ होगा, ऊपरवाला करेगा परंतु यह कहते हुए भी वह अपनी दक्षिणा झपोर लेगा।'

संदर्भ-सूची :

1. गंगा प्रसाद विमल, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2006, पुरोवाक्
2. वही, पृष्ठ - 48
3. वही, पृष्ठ - 48-49
4. वही, पृष्ठ - 48
5. वही, पृष्ठ - 53
6. वही, पृष्ठ - 53
7. सुधा उपाध्याय, विस्थापन से बड़ा दुःख नहीं, जानकीपुल. कॉम, ३० दिसम्बर, २०१९
8. गंगा प्रसाद विमल, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ - 87-88
9. वही, पृष्ठ - 88
10. गंगा प्रसाद विमल, कहानी - मैं भी जाऊँगा, हिंदी समय. कॉम
11. गंगा प्रसाद विमल, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ - 28
12. वही, पृष्ठ - 113
13. गंगा प्रसाद विमल, कहानी - मैं भी जाऊँगा, हिंदी समय. कॉम

jpkardam@rediffmail.com

भवानी प्रसाद मिश्र : तुम लिखते हो, मैं बोलता हूँ

- श्री बृजराज सिंह
आगरा, भारत

भवानी प्रसाद मिश्र अपनी कुछ कविताओं के साथ पहली बार दूसरा सप्तक में सामने आते हैं। इसमें उनकी बारह कविताएँ प्रकाशित हुई थीं। इसके पहले कहीं-कहीं उनकी छिटपुट कविताएँ किसी-किसी पत्र-पत्रिका में ही प्रकाशित हुई थीं। हालाँकि उन्होंने लिखना बहुत पहले ही शुरू कर दिया था। लगभग सोलह साल की उम्र में ही अपनी प्रसिद्ध कविता 'कवि से' लिख चुके थे। फिर वे कई साल तक लिखना लगभग स्थगित कर चुके थे। लेकिन सप्तक में उनका अपना परिचय देख लेने से यह समझ आ जाता है कि छायावाद के समय में जिस भाषा और शिल्प का प्रयोग भवानी प्रसाद मिश्र ने किया है, वह अनायास नहीं है, बल्कि सायास है।

> *"छोटी-सी जगह में रहता था, छोटी-सी नर्मदा नदी के किनारे, छोटे-से पहाड़ विंध्याचल के आँचल में, छोटे-छोटे साधारण लोगों के बीच। एकदम घटना-विहीन, अविचित्र मेरे जीवन की कथा है। साधारण मध्यवित्त के परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा-लिखा और काम जो किए, वे भी असाधारण से अछूते। मेरे आस-पास के तमाम लोगों की-सी सुविधाएँ-असुविधाएँ मेरी थीं। मैं नहीं जानता किस बात को सुनाने लायक मानकर सुनाने लगूँ-खासकर जब उसे सुनाने का मतलब यह माना जाएगा कि इस सबका मेरी कविता से गहरा संबंध है।"*[1]

इस वक्तव्य के साथ मिलाकर उनकी कविता 'कवि से' पढ़ें तब उसका अर्थ अधिक स्पष्ट होगा। अपनी साधारणता को प्रदर्शित करते हुए, यह आत्म-वक्तव्य दीनता प्रदर्शित करने के लिए नहीं है, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए है। इसीलिए वे कहते हैं कि तमाम साधारण चीज़ों के बीच जो काम किए वे बिलकुल असाधारण थे, अछूते थे। उनका कवि जीवन 1930 से लेकर 1985 तक फैला हुआ है। उनकी प्रतिनिधि कविताओं का जो संकलन राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है, उसके संपादक विजय बहादुर सिंह हैं। उसमें पहली कविता 1930 में प्रकाशित 'कवि से' है और अंतिम कविता 1985 में प्रकाशित 'आजकल' है।[2] इन दोनों कविताओं के बीच कवि भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य व्यक्तित्व फैला है। इन दोनों कविताओं का जो वितान है, वह नदी के दो पाटों की तरह है, जिसके मध्य भवानी प्रसाद की काव्य-सरिता प्रवाहित हो रही है। दरअसल इसी के मध्य कवि की केन्द्रीय संवेदना भी विस्तारित हो रही है। 1930 में कवि घोषणा करता है कि वह जैसा देखता और बोलता है, वैसा ही लिखता है और उसे जीवन पर्यंत निभाता भी है। कविता इस चराचर जगत से हमारे रागात्मक सम्बन्धों की शाब्दिक अनुभूति है, लेकिन यह अमूर्त नहीं है, मूर्त है। सूक्ष्म नहीं है, बल्कि स्थूल है। कवि ने सूक्ष्मतर को भी ऐसे व्यक्त किया है, जैसे उससे स्थूल कुछ हो ही नहीं। छायावादी गोपन और रहस्यात्मक शैली और चित्रात्मक भाषा के विरुद्ध कवि घोषणा करता है कि जैसा मैं बोलता हूँ, वैसा तू लिख/फिर मुझसे बड़ा तू दिख। यह बात देखने में जितनी साधारण लग रही है, दरअसल वह उतनी ही असाधारण है। दरअसल, दोनों कविताओं से कुछ लकीरें यहाँ उद्धृत करना ज़रूरी है, तभी हम कवि की असली चिंता और लीक पर न चलने की ज़िद्द का सही-सही मूल्यांकन कर पाएँगे। एक तरफ़ वह कवियों का आह्वान करते हैं कि जो जैसा है उसे वैसा ही लिखना असली कवि कर्म है, उस पर आवरण रखना ठीक नहीं, तो अंतिम कविता 'आजकल' में छद्म किस्म के

आधुनिकतावादियों का मज़ाक भी उड़ाते हैं। वे उन सभी का उपहास करते हैं और कटाक्ष भी करते हैं, जो बात तो वैकल्पिक आधुनिकता या देशी आधुनिकता की करते हैं, लेकिन जुंग और स्पेंसर से नीचे के नाम उनकी ज़ुबान पर नहीं आते। दोनों कविताओं के अंश देखना समीचीन होगा।

कवि से	आजकल
कलम अपनी साध, और मन की बात बिलकुल ठीक कह एकाध। यह कि तेरी-भर न हो तो कह, और बहते बने सादे ढंग से तो बह। जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख, और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख। चीज़ ऐसी दे कि स्वाद सर चढ़ जाये बीज ऐसा बो कि जिसकी बेल बन बढ़ जाये।	अभी एक लेख पढ़ दिया था प्रगतिशील संघ में माओत्से तुंग पर और एक छपवा दिया था कहीं एडलर जुंग पर और खलील जिब्रान को तो मैंने घोंटकर पी लिया है और टी. एस. इलियट का टेकनीक कलम की नोंक पर सी लिया है अब एकांकी पर लिखता हूँ और कहानी पर लोग हैरान होके रह जाते हैं मेरी रवानी पर।

सवाल यह है कि ऐसा कह पाने का नैतिक साहस उन्हें कहाँ से मिला। जबकि यह क्षणिक नहीं था, न ही उन्माद में कहा गया था। कवि ने जो कहा, उसे जीवन भर निभाया। तो यह नैतिक साहस कहाँ से मिला? कवि के सार्वजनिक जीवन के दो प्रेरणास्रोत थे- राजनीति और विचार के क्षेत्र में महात्मा गांधी और साहित्यिक-सांस्कृतिक व्यक्तित्व के रूप में रवीन्द्रनाथ ठाकुर थे। 'गांधी पंचशती' और 'अनुगामिनी' की कविताएँ इसके प्रमाण हैं। इन्हीं दोनों महापुरुषों से उन्हें यह नैतिक साहस मिला था। गांधी जैसा ठेठ और शुद्ध भारतीय, अपनेपन के साथ व्यवहार उनकी कविताओं में देखने को मिलता है। रवीन्द्रनाथ जैसा बंधुत्व और प्रेम की विशिष्टता लिए हुए, अनेक कविताएँ इन्होंने लिखी हैं। रवीन्द्रनाथ से प्रभावित होकर उन्होंने जो कविताएँ लिखी हैं, उनका संग्रह वे 'अनुगामिनी' नाम से छपवाना चाहते थे। इन्हीं दो भारतीय महापुरुषों के व्यक्तित्व की छाया उनके काव्य-संसार पर दिखाई देती है। 1934-35 में उनकी मुलाकात माखनलाल चतुर्वेदी से हुई थी। उस समय उनका कहा उन्होंने गुरुमंत्र की तरह से गाँठ बाँध लिया। उनके द्वारा कही गयी बात को जीवन भर निभाते रहे -

"तुम्हारा आसान लिखना छूट न जाए, इसकी सावधानी रखना। किंतु यह भी ध्यान रखना कि आसान लिखना ध्येय नहीं है। ध्येय है लिखना, मन की बात, भीतर की बात, भीतर से भीतर की बात और वह इस तरह कि वह न तो सूत्रबद्ध हो न भाष्य, जो मन में न समा सके,

उसे वाणी तक लाओ। किंतु ज़ुबांदराज़ी मत करो।
कलम को जीभ मत बनने देना।"[3]

यही कोशिश उन्होंने की भी।

प्रयोगवाद-नई कविता का कवि अपने परिवेश के प्रति बहुत सजग और सतर्क हो गया था। लघुता के चित्रण के सायास प्रयास ने उसे चौकन्ना कर दिया था। उसने भावुकता के स्थान पर सदैव बौद्धिकता को महत्त्व दिया। नामवर सिंह लिखते हैं कि -

"गंभीर समझी जाने वाली वस्तुओं और मान्यताओं के प्रति हल्का ढंग और हल्की समझी जाने वाली चीज़ों और बातों के प्रति गंभीर रुख- ये दोनों ही यथार्थवाद के दो पहलू हैं।"[4]

यह यथार्थ भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में सहज ही दिख जाता है। हालाँकि अपने दौर को याद करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी ने एक जगह लिखा था कि वह ऐसा समय था, जब यथार्थ भी आदर्श की तरह आता था और आदर्श यथार्थोन्मुख हुआ करता था। प्रयोगवाद में ये दोनों बातें मिलेंगी। नामवर सिंह जिस बात की ओर इशारा कर रहे हैं, वह भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में भी मिलेगी और यह अपने परिवेश से गहरे जुड़ाव की वजह से आई है। हालाँकि भवानी प्रसाद मिश्र की कथन-शैली में एक तरह का मस्ताना भाव भी रहता है, तो उसके ज़रिए वे एक खास किस्म का व्यंग्य भी उत्पन्न कर लेते हैं। अपने समय से असंतोष को वे कभी-कभी व्यंग्य के सहारे अभिव्यक्त करते हैं। अपनी एक कविता 'छाया ने छाया से पूछा' में कहते हैं -

"छाया ने छाया से पूछा
क्या दूँ बोलो
जीवन, पीड़ा, प्यार-भरे क्षण के बदले में?
छाया ने आश्चर्य चकित स्वर में दुहराया
जीवन! पीड़ा!! प्यार!!!
शब्द कुछ सुने हुए तो लगते हैं
किन्तु अर्थ मैं समझ न पाई
ऐसे बोलो शब्द
कि मैं भी समझूँ भाई!"

अज्ञेय ने प्रयोगवाद के कवियों के लिए कहा कि वे उस गोताखोर की तरह हैं, जो मोती की तलाश में गहरे पानी में पैठने का साहस करते हैं और जोखिम उठाते हैं। वे यह भी कहते हैं कि सत्य के बिना प्रयोग की कोई अहमियत नहीं। सत्यान्वेषण में चाहे जितना श्रम लगा हो, सत्य को प्रत्यक्ष रखे बिना, उसका मोल नहीं। दूसरा सप्तक की भूमिका में वे लिखते हैं -

"प्रयोगों का महत्त्वकर्त्ता के लिए चाहे जितना हो, सत्य की खोज, लगन, उसमें चाहे जितनी उत्कट हो, सहृदय के निकट वह सब अप्रासंगिक है। पारखी मोती परखता है, गोताखोर के असफल उद्योग नहीं। गोताखोर का परिश्रम या प्रयोग अगर प्रासंगिक हो सकता है तो मोती को सामने रखकर ही-इस मोती को पाने में इतना परिश्रम लगा-बिना मोती पाए उसका कोई महत्त्व नहीं है।"[5]

प्रयोग अभीष्ट नहीं है। मकसद सत्य की प्राप्ति है। प्रयोग मात्र साधन भर है। बिना दुनिया के जले आग लगाने का भला क्या मतलब है? भवानी प्रसाद मिश्र अपनी एक कविता 'मज़ा तब है' में कहते हैं -

"मज़ा तब है
जब हम जलें।
और दुनिया
आग पकड़ ले।
आज तो
जो होता है,
सो ऐसा है कि हम
धुआँ देते हैं और लोग
निकल जाते हैं,
आँखें मिचमिचाते।"

अज्ञेय ने यह घोषणा की थी कि हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। प्रयोग का कोई वाद नहीं होता। यह वाद

विरोधी धारणा है, इसके बारे में नामवर सिंह अपनी पुस्तक "आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ" में लिखते हैं -

"वाद के विरुद्ध विद्रोह प्रयोगशील कवियों की पहली विशेषता है।.....। समान्यतः इसका अर्थ केवल साहित्यिक वाद का निषेध समझा जाता है। लेकिन वाद का विरोध करते हुए, प्रयोगशील कवि राजनीतिक या दार्शनिक किसी भी वाद का निषेध करते हैं। 'वाद अर्थात् मतवाद या सिस्टम'! प्रयोगशील कवि यह मानते हैं कि किसी वाद को मानने से व्यक्तिगत एवं स्वतंत्र विचार में बाधा पड़ती है, क्योंकि विचार की दृष्टि से वाद एक तरह बंद विचार-प्रणाली है। प्रयोगशील दृष्टि का सूत्रपात ही इस धारणा से हुआ कि पूर्वनिश्चित कोई भी वाद सत्य तक पहुँचने या पहुँचाने में समर्थ नहीं है।"[6]

'वे कहते हैं' कविता में भवानी प्रसाद ने वाद विरुद्ध अपनी धारणा कुछ इस तरह प्रस्तुत की है। वैसे तो यह बात व्यंग्य में कही गयी है कि जो लोग इस वाद से बाहर हैं, उन्हें प्रतिबद्ध जन नहीं माना जाएगा, लेकिन इसके ज़रिए वे वाद और विचारधारा का मज़ाक ही उड़ाते हैं। लेकिन यह भी ध्यान रखना होगा कि वे यह व्यंग्य उन लोगों पर कर रहे हैं, जो प्रतिबद्धता के नाम पर गुटबाज़ी और संकीर्णता को प्रसारित करते हैं।

"वे कहते हैं आओ
इस दल में खड़े होकर गाओ।
देखो, यह भी तो यहाँ गा रहे हैं,
गा-गाकर आसमान सिर पर उठा रहे हैं।
फिर तुम्ही क्यों नहीं आते
दलदल में खड़े होकर क्यों हमारे साथ-साथ नहीं गाते?
अच्छा हम समझ गए, तुम्हें जनता से प्रेम नहीं है,
जनता के दुख-दर्द गाना तुम्हारा नेम नहीं है।"

इस वाद विरोध से जन्मे शून्य को भरने के लिए ही इस काल के कवियों ने 'सत्य के अन्वेषण' की निरंतरता पर बल दिया। भवानी प्रसाद मिश्र विचारों से गांधीवादी थे। गांधी सत्य के प्रयोग की बात करते हैं। प्रयोग विज्ञान का अभिन्न अंग है। प्रयोगवाद और नई कविता के कवि गांधी के प्रति इसीलिए आकर्षित होते हैं कि वे भी गांधी की भाँति सत्य को व्यक्तिगत और आंतरिक एवं नैतिक ही मानते हैं। उस पर यह विश्वास कि उनका कहा सत्य ही असली सत्य है। दावा यह है कि वह कबीर जैसा आँखों देखा है। यथार्थ के प्रति अतिशय आग्रह ने नई कविता के कवियों को अपने निजी सत्य के प्रति आसक्त बनाया। इस क्रम में वे कई बार दूसरों का मज़ाक भी उड़ाते हैं। अपने सत्य के लिए भवानी प्रसाद लिखते हैं कि-

"मेरा और तुम्हारा
सारा फ़र्क
इतने में है
कि तुम लिखते हो,
मैं बोलता हूँ,
और कितना फ़र्क हो जाता है इससे
तुम ढाँकते हो मैं खोलता हूँ।"

यह एक तरह का अतिवाद है। कई जगह ये कवि इस 'सत्य के अन्वेषण' और उसे सबसे अलग एवं मौलिक सिद्ध करने में बुद्धि की जगह अनुभव को महत्त्व देते हुए से दिखाई देते हैं। अपनी एक कविता में भवानी प्रसाद मिश्र बुद्धिवादियों का मखौल उड़ाते हुए कहते हैं-

"बुद्धि से कहाँ मिलती है प्रेरणा?
वह तो प्राणों से मिलती है।
खेतों को पानी से मिलती है जितनी हरियाली
उन्हें उनसे ज़्यादा हरियाली दानों से मिलती है
यानी जड़ में हरियाली के
पानी से ज़्यादा बीज है
होने को बुद्धि भी एक चीज़ है।
मगर तब जब वह
प्राणों को प्रेरणा के खयाल से सींचे
और संकुचित न कर दे प्राणों को
बहुत गहरे में दबे दानों को।"

नामवर जी कहते हैं कि प्रयोगवाद का उदय

ही मोह-भंग से हुआ है। हालाँकि मोह-भंग का चित्रण आधुनिक हिन्दी कविता में प्रगतिवाद के बाद से ही दिखाई देना शुरू हो जाता है। इमरजेंसी के बाद तो यह मोह-भंग और भी गहरा होता चला गया। आज़ादी के बाद लोकतन्त्र की स्थापना और सबको समान अवसर एवं संसाधन की उपलब्धता सुनिश्चित कराने का जो स्वप्न था, वह चकनाचूर होता दिखाई देने लगा था। हालाँकि प्रयोगवाद में यह मोहभंग यथार्थ के आग्रह की अधिकता के साथ आता है। प्रयोगवादी कवि न सिर्फ़ देश की मौजूदा हालात से असंतुष्ट थे, बल्कि उनके यहाँ नैतिक और भावनात्मक मोहभंग भी दिखाई देता है। जो कुछ भी आदर्श की शक्ल में लपेटा हुआ, मानसिक और प्राकृतिक भाव जगत कविता में चित्रित हो रहा था, उससे मोहभंग होता दिखाई देने लगा था। नई कविता तक आते-आते यह मोहभंग और प्रखर और कुछ-कुछ स्थूल चित्रण की तरफ़ बढ़ने लगा। अब उसके निशाने पर देश के हालात थे, जो समकालीन कविता में जाकर और भी गाढ़े होते दिखाई देने लगते हैं। हिन्दी कविता में मोह-भंग किसी खास युग या समय की प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि यह परंपरा से संचारित होता रहा है। बस समय-समय पर इसका रंग बदलता रहा है। भवानी प्रसाद मिश्र अपनी एक कविता 'प्रजातंत्रीय' में इसी मोह-भंग की अभिव्यक्ति करते हैं। इमरजेंसी ने लोकतन्त्र के सपने को तोड़ने में रही सही कसर भी पूरी कर दी थी।

"पहले उन्होंने
प्रजा को रास्तों पर बिछाया।
उन पर आना-जाना किया
और अब उसे इकट्ठा करके
पीट रहे हैं कालीनों की तरह।
पांवड़े की तरह बरत कर,
प्रजा को तब भी
उन्होंने अपने को
प्रजातंत्रीय माना था
और धूल झाड़ते हुए उसकी
कालीनों की तरह,
अब भी मान रहे हैं अपने को
प्रजातंत्रीय!"

तमाम विषम परिस्थितियों और स्वप्नों के चकनाचूर होने के बावजूद अभी उम्मीद मरी नहीं थी। बड़ा कवि घुप्प अंधेरे में भी उम्मीद की किरण देखता है और दिखाता भी है। वही कवि 'इमरजेंसी के बावजूद' कविता लिखता है -

"सुबह की ठंडी हवा को
तोड़ रही हैं।
फूट रही किरनें सूरज की
और गीत नन्हें-नन्हें पंछियों के
मज़दूरों की काम पर निकली टोलियों को
किरनों से भी ज़्यादा सहारा
इन पंछियों और खुद अपने गीतों का है शायद।"

नई कविता और उनके कवियों के संदर्भ में जो मुहावरे प्रचलित रहे, उनमें 'प्रामाणिक अनुभूति', 'आत्मान्वेषण', 'कवि कर्म की ईमानदारी' आदि हैं। ये तीनों पद एक-दूसरे से सम्बद्ध भी हैं। श्रीराम वर्मा ने रघुवीर सहाय के काव्य-संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' के बारे में कहा था कि उसमें 'वर्तमान की सही पहचान' है। 'वर्तमान की सही पहचान' 'अनुभूति की प्रामाणिकता' से ही अर्जित की जा सकती है और यह 'प्रामाणिक अनुभूति' 'आत्मान्वेषण' का ही पर्याय है। तार सप्तक की घोषणा 'राहों के अन्वेषी' दूसरा सप्तक तक आते-आते 'आत्मान्वेषण' की ओर चल देती है। 'आत्मान्वेषण' के लिए 'कवि कर्म की ईमानदारी' का होना आवश्यक है। यह ईमानदारी 'आत्मचरित' या 'अपने बारे में' कहने से घटित होता है। भवानी प्रसाद मिश्र भी नई कविता के इन मुहावरों के बरतने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। 'गीत फ़रोश' कविता इसी ईमानदारी और आत्मान्वेषण की प्रतिध्वनि है तथा इसमें वर्तमान की सही पहचान भी है। अगरचे इस तरह की कविताओं की एक लंबी परंपरा छायावाद के समय से ही रही है, परन्तु अलग यथार्थ दृष्टि

की वजह से इसका स्वर अलग हो जाता है। यह यथार्थ को स्वाभाविक और प्रामाणिक बनाने का ज़रिया बन जाती है। दूसरा सप्तक के आत्म-वक्तव्य में भवानी प्रसाद लिखते हैं - "मैंने अपनी कविता में प्रायः वही लिखा है, जो मेरी ठीक पकड़ में आ गया। दूर की कौड़ी लाने की महत्वाकांक्षा भी मैंने कभी नहीं की।"[7]

"जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ,
जी माल देखिए, दाम बताऊँगा,
बे काम नहीं है काम बताऊँगा,
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने।"

प्रयोगवाद और नई कविता में 'व्यक्तिवाद' एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है। उसमें व्यक्तिवाद के कई रूप दिखाई देते हैं। यहाँ आधुनिकता के आवरण में व्यक्तिवाद की बेल खूब फली-फूली। हालाँकि बाद के दिनों में इस व्यक्तिवाद के बजाय जनांदोलन की बात करने वाले कवि मुक्तिबोध और शमशेर भी आए। मुक्तिबोध ने यहाँ तक कहा कि 'स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी/छल नहीं सकता/मुक्ति के मन को/जन को'। यानी अब मुक्ति की चाह व्यक्तिगत न होकर सामूहिक हो गयी। मुक्ति की मंज़िल अकेले नहीं मिलेगी, सामूहिक प्रयास और प्रतिरोध से मिलेगी। और इसका नेतृत्व कौन करेगा? नेतृत्व, शोषित करेगा। जो कमज़ोर है, मजलूम है, जिसे खाने को नहीं मिलता, वही एक दिन दुनिया हिला देगा। बाद के दिनों में भवानी प्रसाद मिश्र का भरोसा भी इसी सामूहिकता और प्रतिरोध की संस्कृति की तरफ़ आकर्षित होता गया-*जिन्हें न खाने को मिलता है/न मौत मिलती है/किसी दिन उनके हिलाने से/ यह धरती सरासर हिलती है।*

प्रयोगवाद और नई कविता के कवि गंभीर से गंभीर बात को भी बहुत हल्के-फुल्के तरीके से कह देते हैं। विडंबनापूर्ण समय में यह 'विसंगति' अप्रासंगिक नहीं, बल्कि यह स्वाभाविक है। डॉ. नगेंद्र इसे छायावाद की प्रतिक्रिया कहते हैं। जब वे इसे छायावाद की प्रतिक्रिया कह रहे हैं, तब इसे काव्य मूल्य के रूप में मान्यता देने से हिचकते-से दिखाई देते हैं। कविता के प्रति गंभीरता का जो पूर्वग्रह है,उसमें हल्के-फुल्के ढंग से गंभीर बात कहने वाली कविताओं के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता है। जबकि यह उस समय की 'विडम्बना' से उपजा 'विसंगति' बोध है, जो खिलंदड़ेपन और क्रीड़ा-भाव से उत्पन्न हुआ है। कई बार इन कविताओं पर हमले की शक्ल में आलोचना होती भी दिखाई देती है। तीसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि - "क्रीड़ा और लीला-भाव भी सत्य हो सकते हैं - जीवन की ऋजुता भी उन्हें जन्म देती है और संस्कारिता भी।"[8] भवानी प्रसाद मिश्र की कविता *'गीत फ़रोश'* के बारे में उन्हीं अज्ञेय ने एक जगह लिखा कि "इसका कवित्व एक गंभीर बात को निहायत अगंभीर ढंग से कहने में है और यह अगंभीरता कविता के टोन में है।" नामवर सिंह कहते हैं कि यदि इस क्रीड़ा-भाव को कविता के प्रतिमान में अभी तक स्थान नहीं मिला है, तो इसका सबसे बड़ा कारण है इन कविताओं की आक्रमण-क्षमता।"[9] इन कविताओं में ग़ज़ब का व्यंग्य होता है, जो अपने समय पर तीखा आक्रमण भी करता है। भवानी प्रसाद की कविता 'मैं गँवार हूँ' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"मैं गँवार हूँ और गधा हूँ
क्योंकि बचनों से अपने बंधा हूँ।
तुम होशियार हो और हंस हो
क्योंकि अपनी प्रतिज्ञाओं के ध्वंस हो।
हमने जो कह दिया सो करते रहे,
अपने कहे पर मरते रहे,
तुमने जो कहा सो कभी नहीं किया,
जीवन इस तरह सुख से जिया।
और फिर भी मैं खुश हूँ इस पर
कि मैं गंवार हूँ और गधा हूँ।"

छायावाद के बाद जब कविता भाव से विचार की ओर तथा कल्पना से वास्तविकता की ओर मुड़ी तब कविता में वक्तव्य देने की बाढ़-सी आ गयी। कविता सपाट

बयानी और नारे में परिवर्तित होने लगी। छायावादी चित्रात्मक शैली से छूटकर विचार के बौद्धिक आलेख बनती चली गयी। प्रयोगवाद और नई कविता के कवियों ने उसे पुनः कविता की ज़मीन दी और उसे बिंबों, प्रतीकों और भाषा से सजाया-सँवारा। भवानी प्रसाद मिश्र में जो सपाट बयानी और गद्यात्मकता कहीं-कहीं दिखाई देती है, वह उनकी शैली है और विशेषता है; कहने की ज़रूरत नहीं कि वह सायास भी है। कविता को उसके सर्वांग संदर्भ से जोड़कर देखेंगे, तो खटकने वाली पंक्तियाँ ही काव्यात्मक शक्ति से सम्पन्न पंक्तियाँ नज़र आएँगी। नई कविता में जो स्थान भवानी प्रसाद मिश्र को मिलना चाहिए था, हालाँकि वह नहीं मिला, लेकिन 'कविता के नए प्रतिमान' से जिस तरह भवानी प्रसाद बेदखल किए गए, आश्चर्य होता है कि वे सारे प्रतिमान उनमें सबल मौजूद हैं। उसकी अनदेखी की गयी। उनकी भाषा, नई कविता की भाषा है। अपनी कविता और उपेक्षा के बारे में उन्हीं के शब्द हैं - *हमने उठा ली कलम। और जो कुछ ठीक माना/सो लिखने लगे/कलम कर दिए गए। इस अपराध में हमारे हाथ।*

संदर्भ सूची :

1. आत्म वक्तव्य-भवानी प्रसाद मिश्र, दूसरा सप्तक-अज्ञेय, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-15, सं-2010
2. प्रतिनिधि कविताएँ-भवानी प्रसाद मिश्र, सम्पादक-विजय बहादुर सिंह, संस्करण 2017
3. इ.गा.रा.मु.वि., ई.एच.डी.2 , पृ. .66
4. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ 71; 2008
5. भूमिका, दूसरा सप्तक-अज्ञेय, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-7, सं-2010
6. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ 72; 2008
7. आत्म वक्तव्य-भवानी प्रसाद मिश्र, दूसरा सप्तक-अज्ञेय, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-16, सं-2010
8. भूमिका, तीसरा सप्तक-अज्ञेय, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-11
9. कविता के नए प्रतिमान-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ 71; 2008

नोट: प्रस्तुत आलेख में कविताओं के उद्धरण प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 से लिए गए हैं।

brijrajsingh@dei.ac.in

अमेरिकी हिंदी कहानियाँ

- डॉ. मुनिल कुमार वर्मा
बिहार, भारत

प्रवासी साहित्य का संबंध मुख्य तौर पर भारत से बाहर रह रहे भारतवंशियों द्वारा लिखे साहित्य से है। हिंदी साहित्य विमर्शों के दौर से गुज़र रहा है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, ट्रांसजेंडर से संबंधित विमर्श की भाँति प्रवासी साहित्य विमर्श ने भी हिंदी में अपनी जगह बनाई है। इसकी खास बात यह है कि इसका रचना-पक्ष जितना समृद्ध है, आलोचनात्मक पक्ष उतना ही दुर्बल। हालाँकि इसका सकारात्मक पक्ष यह है कि साहित्यिक जगत में प्रवासी साहित्य की चर्चा ज़ोर-शोर से होने लगी है। प्रवासी हिंदी लेखन में भारत किसी-न-किसी रूप में उपस्थित होता है, भारत की स्मृतियाँ वहाँ गए लोगों में रहती है। जब अन्य देश में गए लोग उस देश से जुड़ाव महसूस नहीं करते, तब उनकी स्मृतियों में भारत और भी गहरी तरह से पैठ जाता है। प्रवासी साहित्य की अधिकतर रचनाएँ कभी वर्तमान और कभी विगत के बीच इतना ज़्यादा शिफ़्ट करती हैं कि कई बार नई रचना से ज़्यादा रचनाकार की अन्तर्कथा लगती है। भारत की स्मृति या पुनर्रचना प्रवासी साहित्यकार के मन को एक तरह से नैरंतर्य का आश्वासन तब देती है, जब उसके भीतर कुछ टूट गया है। 'नॉस्टेल्जिया' शब्द जिन दो शब्दों से मिलकर बना है उसमें 'सपहपं' का अर्थ 'घर वापसी' और 'छवेजवे' का अर्थ 'तृष्णा' है। अतः यह शब्द समय से उतना संबद्ध नहीं है, जितना स्थान से। शायद इसीलिए प्रवासी साहित्य में भारत हमेशा एक ऐसे स्थान की तरह रहता है, जो जितना प्राप्त था, उतना प्राप्य है। प्रवासी मनुष्य अतीतजीवी नहीं है, वह भारतजीवी है।

प्रवासी साहित्य की अवधारणा बहुत व्यापक है और यह प्रवासी लेखक के लेखन से उभरकर सामने आती है। ऐसा बहुत सा साहित्य विभिन्न देशों में लिखा गया है, जिसमें प्रवास के बाद की स्थितियों का चित्रण किया गया है। प्रारंभ में प्रवासी साहित्य के लेखन से संबंधित कार्य डायरी, इतिहास और पत्र के रूप में सामने आया, जिसमें लोगों ने अपने नये जीवन, नये परिवेश आदि के बारे में लिखा है। प्रवासी लेखक जिस देश में रह रहा होता है, उस देश के सामाजिक सांस्कृतिक परिदृश्य का निरंतर, अपने देश की सामाजिक-सांस्कृतिक भूमि से तुलना करता रहता है। इन्ही दृष्टियों से अपनी गृहभूमि की संस्कृति का प्रस्तुतीकरण वे करते हैं। इसी तरह अपनी रचनाओं में प्रवासी रचनाकार अपने देश और देश की राष्ट्रीयता का चित्रण करते चलते हैं।

भारतीय संदर्भ में प्रवास को मुख्यतः चार चरणों में विभाजित करके देखा जा सकता है। पहले चरण की शुरूआत 1830 ई. के आसपास हुई, जब साम्राज्यवादी ताकतें अपने-अपने उपनिवेशी देशों में भारतीयों को गिरमिटिया मज़दूर बनाकर ले गए। बीसवीं सदी के मध्य में दूसरे चरण के प्रवास में भारतीय अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड गये। इनका मुख्य उद्देश्य वहाँ रोज़गार प्राप्त करना तथा सुंदर भविष्य तलाशना था। उनके इस प्रवास को 'प्रतिभा पलायन' कहा गया। तीसरे चरण में 1970 के आसपास अनुबंध के आधार पर भारतीयों का पश्चिमी एशियाई देशों - कुवैत, बहरीन, सऊदी अरब, कतर आदि देशों में प्रवास हुआ। चौथे चरण का प्रवास बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में दिखाई पड़ता है, जिसमें आई. आई. टी. और आई. आई. एम. जैसी शैक्षणिक संस्थाओं से पढ़े-लिखे लोग विकसित देशों की ओर प्रवास के लिए गए।

प्रवासी लेखन की संवेदना संस्कार रूप में अपने नये परिवेश को ग्रहण करती है। वह अपने जन्म

स्थान, देश और मिट्टी से अलग होकर, एक नए देशकाल और परिवेश में चला जाता है। अमेरिका में रहने वाले भारतीय लेखक प्रवासी जीवन के विविध पहलुओं को अपने साहित्य के द्वारा उजागर कर रहे हैं। अमेरिका में हिंदी लिखने वालों की संख्या बहुत है। अमेरिकी हिंदी लेखकों में प्रमुख हस्ताक्षर हैं - सुषम बेदी, डॉ. सुधा ओम ढींगरा, सोमा वीरा, इला प्रसाद, रचना श्रीवास्तव, पुष्पा सक्सेना, रेणु 'राजवंशी' गुप्ता, अनिल प्रभा कुमार, अंशु जौहरी, रमेशचंद्र धुस्सा, उमेश अग्निहोत्री, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, डॉ. उषा देवी कोल्हटकर, उषा प्रियवंदा, सुनीता जैन आदि।

'अवसान' कहानी में सुषम बेदी यह कहती हैं कि प्रवास के लिए गए भारतीय अपने विचार और व्यवहार से भले ही नास्तिक हों, लेकिन उनके अंदर भारतीय संस्कृति कहीं गहरे रूप में मौजूद होती है। अमेरिकी समाज में रिश्तों का मूल्य नगण्य है, वहाँ के समाज में संवेदनशीलता नहीं है, संबंधों में भावनात्मकता का अभाव है, तभी तो दिवाकर की अमेरिकन पत्नी भारतीय संस्कृति से संबंधित कार्य-व्यापारों को बखेड़ा समझती है। वह अपने पति की अंत्येष्टि ईसाई रीति-रिवाज़ से कराना चाहती है। इसलिए पादरी जब ओल्ड टेस्टामेंट की पंक्तियों को पढ़ रहा होता है, तब उसके मित्र शंकर को अजीब-सी घुटन महसूस होती है। उसे लगता है कि जैसे वह अपना ही अवसान देख रहा हो। वह अपने भारतीय संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाता, वह डायस की ओर बढ़ता है और बहुत ही संयत स्वर में अपने दोस्त के लिए गीता के कुछ श्लोकों को संस्कृत और अंग्रेज़ी में अनुवाद करते हुए उच्चरित करना शुरू कर देता है - "ये न कभी हत होता है न हत्यारा, न कभी जनमता है, न कभी विनशता, जन्म-मरण से परे देह नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता।... जिस तरह घिसे हुए वस्त्रों को त्याग कर नये-नये धारण करता है, उसी तरह घिसी देह का त्याग कर नई अपनाता है देही।" शंकर अचानक ही महसूस करता है कि ताबूत में खामोश लेटे दिवाकर का चेहरा उसकी ओर देखकर मुस्कुराया है। उसे लगता है कि उसका मित्र दिवाकर कहीं गया नहीं है, बल्कि आसपास ही है।

डॉ. सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'कौन सी ज़मीन अपनी?' उषा प्रियवंदा की कहानी 'वापसी' की याद ताज़ा करा देती है। इस कहानी का परिवेश अमेरिका से लौटे दंपति का है, जिसे अपने देश, अपनी मिट्टी से इस कदर प्रेम है कि वह अपना सारा कारोबार बेचकर अपना अंतिम जीवन अपनी मातृभूमि में व्यतीत करना चाहता है, लेकिन उसके सगे-संबंधी ही ज़मीन की खातिर उसकी जान के दुश्मन बन जाते हैं। अंततः मनजीत सिंह अपनी पत्नी मनविंदर के साथ आधी रात में घर से निकल जाता है। इनकी वापसी भी अंततः उषा प्रियंवदा के 'वापसी' के गजाधर बाबू की तरह ही है, जहाँ दोनों को ही परिवार के रूखे व्यवहार से गहरा आघात पहुँचता है। अंततः दोनों कहानियों के नायक वहीं पहुँचते हैं, जहाँ वे अपना कारोबार कर रहे होते हैं। 'ऐसी भी होली' कहानी उस भारतीय की कहानी है, जो भारत से अमेरिका एग्रीकल्चर में पी.एच.डी. करने आया है और अपनी सहपाठी यहूदी लड़की वेनेसा से प्रेम करता है। वेनेसा भारतीय सभ्यता और संस्कृति से खास प्रभावित है, भारतीय संगीत से उसे लगाव है, भारतीय संस्कृति में वह रची-बसी हुई है। अभिनव को पेटिंग से, रंगों से प्यार है। अभिनव जब अपने परिवार से वेनेसा के साथ शादी की इच्छा ज़ाहिर करता है, तो उसके परिवार वाले उसे वापस भारत लौट आने की सलाह देते हैं। उसे लगता है कि भारत लौट आने के बाद वह वेनेसा से कभी मिल नहीं पाएगा। इसीलिए वह आर्यसमाजी तरीके से वेनेसा के साथ विवाह बंधन में बँध जाता है। भारतीय परिवारों में विवाह दो व्यक्तियों के बीच नहीं, अपितु दो परिवारों के बीच होता है। भारतीय माता-पिता बच्चों के बचपन से ही उनकी शादी का सपना बुनने लगते हैं और शायद इसीलिए जब भारतीय युवक/युवतियाँ अपनी मर्ज़ी से विवाह करना चाहते हैं, तो माता-पिता के अहं को ठेस पहुँचती है। अभिनव का परिवार शुरू में इस विवाह प्रस्ताव को स्वीकार नहीं

करता, लेकिन अंत में दोनों परिवारों का सुखद मिलन, होली के दिन होता है। कहानी में यह बताया गया है कि माता-पिता का क्रोध हवा के हिलोर की तरह होता है, जो आता और चला जाता है।

इला प्रसाद की कहानी 'उस स्त्री का नाम' अमेरिका में रहनेवाली भारतीय बुज़ुर्ग स्त्री की कहानी है। भारतीय और अमेरिकी समाज में बड़ी भिन्नता है। जहाँ भारतीय परिवारों में माता-पिता के बुज़ुर्ग होने पर उनकी संतानें अपने पास रखकर उसकी सेवा-सुश्रुषा करती हैं, वहीं अमेरिकी परिवारों में ऐसी बातें देखने को नहीं मिलती। भारतीय परिवारों में माँ का संतान के प्रति जो सुरक्षात्मक रवैया, उनके सुख-दुख की चिंता करती माँ की जो एक संपूर्ण तस्वीर उभर कर आती है, अमेरिकी परिवारों में उसका नितांत अभाव पाया जाता है। यह कहानी उस प्रश्न को उठाती है, जहाँ भारतीय संस्कृति में स्त्री को कितने नाम दिए गए हैं - सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, काली... क्षमा, स्वाहा, स्वधा... लेकिन बुढ़ापे में बच्चों को सारी सुख-सुविधा देने के लिए, ओल्ड एज हो जाने वाली स्त्री के इस रूप का नाम क्या है? यह कहानी अमेरिका में नितांत अकेलेपन में रहने वाली बुज़ुर्ग स्त्री की स्थिति को सामने लाती है। 'सातवाँ दिन रविवार!' कहानी भी बुज़ुर्गों की स्थिति को चित्रित करने वाली कहानी है। साथ ही इसमें विभाजन की पीड़ा के साथ-साथ सिंधी परिवारों की करुण कथा भी पृष्ठभूमि के रूप में मौजूद है। हर रविवार वासवानी आंटी से गुरुद्वारे में श्रुती का मिलना होता है। उसका यह संबंध पंद्रह साल पुराना है। वासवानी आंटी हर रविवार को गुरुद्वारा आती हैं और अगले छः दिनों के लिए लंगर से लेकर छः रोटियाँ अपने बैग में रख लेती हैं। कहानी में बुज़ुर्ग स्त्री के अकेलेपन को तथा उनकी अशक्तता को प्रदर्शित किया गया है। 'एक अधूरी प्रेम कथा' में लेखिका ने ऐसी लड़की का चित्रण किया है, जो अंदर से बिल्कुल टूटी हुई है, लेकिन बाहरी रूप में वह बेहद खुशमिज़ाज और चंचल है। उसके व्यक्तित्व के अकेलेपन पर उसके माता-पिता के संबंधों के टूटन की छाप है। वह बिन ब्याही माँ की संतान है। अपनी माँ से वह जितना प्रेम करती है, अपने पिता से उतनी ही नफ़रत, क्योंकि जब उसकी माँ कैंसर से जूझ रही थी, तब अपने आखिरी समय में वह उसके पापा से मिलना चाहती थी, लेकिन यह संभव न हो सका। अपने प्रेम संबंधों को लेकर वह इस कदर संवेदनशील है कि जब उसे लगता है कि उसके माता-पिता के संबंधों की छाप उसके प्रेम संबंधों पर पड़ रही है, तब वह आत्महत्या का प्रयास तक कर डालती है। यह कहानी भी एक युवती के अकेलेपन को चित्रित करने वाली कहानी है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'धूप' भारतीय पति-पत्नी जो अमेरिका में ही बस गए हैं, उन्हीं के संबंधों पर आधारित है। पति में पत्नी के प्रति लगाव, प्रेम, भावनात्मकता, आत्मीयता का बिल्कुल अभाव है। वह भारतीय होते हुए भी अमेरिका में रहकर पूरी तरह अमेरिकन हो गया है। वह अपने बच्चों को स्कूल से पहले और स्कूल के बाद बाहर काम करने पर ज़ोर देता है। यही नहीं, जब वह अपनी पत्नी के साथ किसी रेस्टोरेंट में जाता है, तब वह अलग-अलग बिल माँगता है। उसकी पत्नी हीनता-बोध से ग्रस्त हो जाती है, लेकिन फिर उसे लगता है कि वह संस्कारों में जकड़ी हुई है और इसीलिए वह ज़माने के साथ नहीं चल पा रही है। पिता का पुत्र के प्रति जो प्रेम भाव होता है, वह भी रेखा अपने पति विशाल में महसूस नहीं कर पाती। अपने पति के बारे में वह सोचती है - "विशाल से किसी तरह की कोई अपेक्षा रखना दीवार में सिर फोड़ने वाली बात है। वह तो इतना स्वार्थी और स्वयंसेवी हो गया है कि घर में बने चिकन की बोटियाँ भी पहले अपने प्लेट में बटोर लेता है और बच्चे देखते रह जाते हैं। पर उसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। यह सड़ाप-सड़ाप बेशर्मी से खाता रहता है।" जिस प्रकार घर की चिमनी का धुआँ ऊपर उठकर, धूप को अपने में समा लेने की कोशिश करता है, लेकिन धुआँ धूप को घुटक नहीं पाता, ठीक उसी प्रकार विशाल का व्यक्तित्व भी रेखा के व्यक्तित्व को घुटक नहीं पाता। कमोबेश 'धूप' कहानी की

स्थिति भुवनेश्वर की 'स्ट्राइक' कहानी से मिलती-जुलती है। वहाँ भी पति-पत्नी के संबंधों में आत्मीयता की ऊष्मा नहीं है और यह जीवन में यांत्रिकता बढ़ने के कारण घटित होती है। अमेरिकी जीवन में भी यांत्रिकता के कारण ही ऐसी विसंगत स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। 'अखबार वाला' कहानी अमेरिका के आत्मकेंद्रित समाज को बेपर्दा करती है। अमेरिका के लोग इतने आत्मकेंद्रित हैं कि अपने पड़ोसी की मृत्यु पर भी उनका मन नहीं पिघलता। पिता की मृत्यु पर पुत्र सिगरेट के लंबे कश खींच रहा होता है। अमेरिकी समाज में बीमार होना, दुखी होना व्यक्तिगत मामला है। वहाँ के समाज में किसी का दुख बाँटना व्यक्तिगत मामले में हस्तक्षेप बन जाता है। भारतीय समाज/परिवार में किसी की मृत्यु होने पर परिवार, समाज सभी शोकाकुल हो जाते हैं। उनकी पुण्यतिथि पर उन्हें स्मरण करते हैं और उनकी आत्मा की शांति के लिए तरह-तरह के संस्कार करते हैं। अमेरिकी समाज में किसी की मृत्यु पर ऐसा महसूस होता है कि वे दुख-दर्द से ऊपर उठ चुके हैं। हमारे यहाँ भावनाओं का, स्मृतियों का, रिश्तों का, रिवाज़ों का जिस तरह अंघड़ फूट पड़ता है, वैसा अमेरिकी समाज में देखने को नहीं मिलता। अमेरिकी जीवन किस हद तक आत्मकेंद्रित है, यह कहानी यही दर्शाती है।

अनिलप्रभा कुमार 'वानप्रस्थ' कहानी में भारतीय और अमेरिकी संस्कारों को दिखाती हैं। एक ओर भारतीय संस्कृति है, जहाँ बच्चे अपने बूढ़े माता-पिता का ध्यान रखते हैं, उनकी इच्छाओं का सम्मान करते हैं, बेटियाँ शादी के बाद भी अगर किसी मुसीबत में हों, तो माता-पिता हर प्रकार से अपने बच्चों की मदद करते हैं, लेकिन अमेरिकी संस्कृति में पुत्र/पुत्री जैसे ही बालिग हो जाते हैं, माता-पिता की ज़िम्मेदारी खत्म हो जाती है। अमेरिकी युवक/युवतियाँ भी अपने माँ-बाप से वैसी आत्मीयता नहीं रखते, जो भारतीय पारिवारिक संस्कृति में पाया जाता है। पूंजीवादी और भौतिकवादी संस्कृति के कारण ही वहाँ पारिवारिक मूल्यों की कमी है और यही कारण है कि जब श्यामा अपने बेटे से अपनी नानी के लिए एयर-कंडीशनर लाने की बात करती है तब वह गुस्से से झल्ला जाता है। वह कहता है - "आप लोग सोचते हैं कि मेरे पास डॉलर छापने की मशीन पड़ी है। पहले भी तो आप लोग गरमी में रहते ही रहे हैं। अब क्या बात हो गई सिवाय इसके कि मैं कमाने लगा हूँ।" उसका यह कथन अमेरिकी परिवेश की संस्कृति के कारण है। वह अपनी माँ के संघर्ष को भूल चुका है कि उसकी माँ ने किन परिस्थितियों में उसे पाल-पोस कर बड़ा किया है। इस कहानी में लेखिका ने दो पीढ़ियों के बीच का अंतर दिखाया है। यह कहानी भारतीय पारिवारिक संबंधों में माँ-पुत्री के बीच के संबंधों की पड़ताल के साथ-साथ अमेरिकी संस्कृति में पले-बढ़े बच्चों की स्थितियों और उसकी मनोदशा से अवगत कराती है। 'बरसों बाद' कहानी में लेखिका ने दो अंतरंग सहेलियों की मित्रता, उसके लड़कपन की दोस्ती आदि के साथ-साथ उसके परिवारिक निजी संबंधों को भी दर्शाया है। एक कामकाजी स्त्री को नौकरी के साथ, घर की ज़िम्मेदारियों का भी निर्वहन करना पड़ता है। उसमें भी ससुराल के लोग यह उम्मीद करते हैं कि कामकाजी बहू उनकी फ़रमाइशों को भी पूरा करे और अपना पूरा वेतन उन्हें लाकर दे। पूरी कहानी दो सहेलियों की घनिष्ठ मित्रता को सामने लाती है और उसकी पृष्ठभूमि में कामकाजी स्त्री की समस्याएँ भी। पूरी कहानी में करुणा का भाव विद्यमान है।

सोमा वोरा की कहानी 'लांड्रोमेट' भारतीय और अमेरिकी जीवन को आमने-सामने रखकर देखने की कोशिश है। लेखिका ने निर्मल और मार्गरेट के संबंधों के माध्यम से पश्चिमी जनजीवन, मूल्यबोध को उद्घाटित करते हुए भारतीय मूल्यबोध, संस्कार और संस्कृति आदि की श्रेष्ठता को रूपायित किया है। लांड्रोमेट को देखते हुए, अपनी प्रेमिका मार्गरेट की दैनिक गतिविधियों का निरीक्षण करते हुए निर्मल अमेरिका के मशीनी जीवन को महसूस करता है। उसे लगता है कि शायद इस मशीन-सी दुनिया में रहकर, वह भी मशीन ही बनता जा रहा है। अमेरिकी समाज में विवाह, विवाह कम, 'मैरिज कॉंट्रैक्ट' ज़्यादा होता है। निर्मल की अमेरिकन भाभी पामेला

मार्टिन अमेरिकी विवाह और समाज की विसंगतियों को सामने लाते हुए 'मैरिज कॉंट्रैक्ट' के बारे में कहती है - "हम लोगों के लिए यह कांट्रैक्ट बड़ा कीमती है निर्मल! हमारे समाज में कुँवारे रहने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा माना जाता है कि किसी लड़की का विवाह होकर तलाक हो जाए। यदि विवाह सफल न हो तो हम लोगों को तलाक की पूरी सुविधाएँ हैं।" कहानी के नायक निर्मल में भारतीय संस्कार और उसका गौरव-बोध, उसकी जातीय अस्मिता प्रबल रूप में मौजूद है। उसे पता है कि अपनी प्रेमिका मार्गरेट से विवाह कर, वह अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह नहीं कर पाएगा। इसीलिए वह अपनी प्रेमिका से कहता है - "मार्जी, तुम्हें मालूम है, मेरे ऊपर बड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं (घर पर तीन अविवाहित बहनें हैं), एक छोटा भाई है, जिसकी सारी पढ़ाई बाकी है। मैं इस काबिल नहीं कि तुमसे विवाह कर सकूँ... आई एम सॉरी, मार्ज!" कहानी के अंत में निर्मल निश्चय करता है कि वह अपने भाई कमल, अपनी बहनों, अपने माता-पिता और सगे-संबंधियों को भूलेगा नहीं।

रमेशचंद्र धुस्सा की कहानी 'बहुत अच्छा आदमी' इस सामान्य मनोवृत्ति को सामने लाती है कि जो लोग अमेरिका में रहते हैं, वे बहुत अच्छे व्यक्ति होते हैं। प्रारंभ में व्यक्ति को आत्म-गौरव और संतोष का बोध होता है। अमेरिका की चकाचौंध उसे आकर्षित करती है, लेकिन बाद में वहाँ के यांत्रिक जीवन से ऊब कर, वह अपनों की तलाश करता है। तभी तो कहानी का नायक अपनी प्रेमिका शारदा को यह कहना चाहता है कि "शारदा, वर्षों से नहीं, जैसे अनंतकाल से तुम मेरी स्मृति में हो। सारा भारत घूमता रहा, तुम मुझे और याद आई। यहाँ भी नियाग्रा के प्रपात में तुम्हारा ही कंठ-स्वर सुनता हूँ। 'चेरी' के फूलों में गुलमोहर के फूलों की तरह तुम्हारा रूप देखता हूँ और 'लेवेंडर' के फूलों में शिरीष के फूलों की तरह तुम्हारी गंध पाता हूँ।" यह भारत-बोध अमेरिका में प्रवास के लिए गए व्यक्तियों में गहनता से मौजूद है, ठीक उसी तरह जैसे नायक की स्मृति में उसकी प्रेमिका की मौजूदगी। तभी तो वह अमेरिका में रहते हुए भी अपनी प्रेमिका के सौंदर्य को अमेरिकी प्राकृतिक उपमानों पर भारतीय प्राकृतिक उपमानों को आरोपित करके देखता है। इन उपमानों के अलंकरण से ही यह स्पष्ट होता है कि नायक भारत-बोध को स्वयं में आत्मसात किये हुए है।

उमेश अग्निहोत्री की कहानी 'लकीर' में यह बताया गया है कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान के संबंध को जिस तरीके से पेश किया जाता है, उसकी वास्तविक तस्वीर उससे बिल्कुल अलग है। भारत और पाकिस्तान का विभाजन सिर्फ़ भूगोल और नक्शे तक ही सीमित है। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के लोगों में रंग-रूप, बोल-चाल, रहन-सहन, खान-पान, संगीत आदि को लेकर बहुत ज़्यादा अंतर नहीं है, तो भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजन किस चीज़ को लेकर है? दिनेश अंत तक यह नहीं समझा पाता कि हर चीज़ में इतनी समानता के बाद भी भारत और पाकिस्तान में लकीर किस तरह खींचे? वह अपनी बेटी की सहज बुद्धि का उत्तर नहीं दे पाता।

पुष्पा सक्सेना की कहानी 'वर्जिन मीरा' अमेरिकन युवती वर्जीनिया की कहानी है, जो भारतीय युवक के प्रेम में पड़कर 'मीरा' बन बैठी है। लेखिका की दृष्टि में वह 'अहल्या' है क्योंकि वह भी एकनिष्ठ रहकर, अपने प्रेम-धर्म का पालन कर रही है। वर्जीनिया अमेरिकन होते हुए भी रवि के साथ रहकर पूरी तरह भारतीय हो गई है। एक दिन रवि अपना संयम खोकर वर्जीनिया को पाने के लिए व्याकुल हो उठता है। वर्जीनिया अमेरिकन होते हुए भी, पूरी तरह भारतीय हो गई है और वह कहती है - "छिः ऐसा व्यवहार तुम्हें शोभा नहीं देता रवि! तुमने ही तो बताया है कि शरीर का मिलन विवाह के बाद ही संभव है।... तुम अपने को भूल रहे हो। मैं तुम्हें पाप करने नहीं दूँगी।... मीरा ने क्या अपने कृष्ण से शारीरिक संबंध स्थापित किये थे।" अंततः रवि अपने पिता की बीमारी का झूठा बहाना बनाकर भारत आ जाता है और यहीं शादी कर लेता है।

प्रतिभा सक्सेना का 'घर' कामकाजी महिला और पुरुष की कहानी है। कहानी में यह दिखाया गया है कि पत्नी अगर नौकरी करती है, तब भी उसके पैसों पर उसके पति का ही हक होता है। कामकाजी स्त्रियों को घर और बाहर दोनों ही मोर्चों पर काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जब पति-पत्नी दोनों नौकरी कर रहे हों, तब पति के सगे-संबंधियों को उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ और फ़रमाइशें होती हैं। मन के स्तर पर पत्नी को अगर पति का साथ न मिले तो पत्नी के जीवन में अकेलापन आ जाता है। कहानी की नायिका यह महसूस करती है कि - ''वासना के क्षणों में आदमी कितना अपनापन दिखाता है, कितना प्रेम जताता है - जैसे पत्नी को छोड़कर, उसका सगा और कोई नहीं। ज्वार उतरने पर रह जाती है वही सूखी रेखा, वही रूखा व्यवहार और शासन की भावना।'' कहानी की नायिका अंततः निश्चय करती है कि वह अपने पैसे से अपने बच्चों का और स्वयं का ख्याल रखेगी, ट्यूशन पढ़ाकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी, लेकिन अपने पति पर वह निर्भर नहीं रहेगी। रचना श्रीवास्तव की कहानी 'पार्किंग' अमेरिकन महिला एमी की दुखद गाथा है। उसका प्रारंभिक जीवन कष्ट में बीता ही है, उसका वर्तमान जीवन भी उतना ही कारुणिक है। जिस एडम से वह जी भर कर प्यार करती है, उस प्यार की कीमत चंद डॉलर मुआवज़े के तौर पर देने की बात कह कर, वह उसे छोड़कर चला जाता है। नवंबर के महीने में जब उसके बेटे डेविड का एक्सीडेंट होता है, तब उसे भी कोर्ट द्वारा अंततः मुआवज़ा ही मिलता है और शायद इसीलिए एमी को मुआवज़े शब्द से नफ़रत हो गई है। लेखिका एमी का सच जानकर उसके लिए कहे गए अपशब्द और गलत भावनाओं के कारण स्वयं में शर्मिंदा महसूस करती है। लेखिका महसूस करती है कि बिना मिले, बिना जाने, किसी भी जगह और वहाँ के लोगों के बारे में धारणा बना लेना कितना गलत होता है। अंशु जौहरी की कहानी 'वह जो अटूट नहीं' मानवीय संवेदनशीलता से भरी कहानी है। यह कहानी उस स्त्री की है, जिसका पति 'क्वाड्रिप्लैजिया' बीमारी से ग्रस्त है, जिसमें गर्दन के नीचे का शरीर लकवाग्रस्त हो जाता है। कहानी की नायिका का पति, नायक के थीसिस के विश्लेषण की वस्तु है। कहानी फ़्लैशबैक में घटित होती है। नायक और नायिका के बीच एक भावनात्मक संबंध है, तभी तो नायक महसूस करता है कि ''जिस संबंध में प्रेम हो, आस्था हो, मानसिक अवलंबन हो, वह गलत कैसे हो सकता है? इसे यूँ ही समाप्त क्यों हो जाना चाहिए?'' डॉ. विशाखा ठक्कर की कहानी 'पेशेंट पार्किंग' मुख्य रूप से एक डॉक्टर और पेशेंट के आपसी भावनात्मक प्रेम को प्रदर्शित करती है, साथ ही अपनी पत्नी के प्रति एक पति के प्रेम के उदात्त रूप को उद्घाटित करती है। रेणु 'राजवंशी' गुप्ता की कहानी 'कौन कितना निकट' में यह बताया गया है कि जो आपके पास है, वही आपका सहृदय है, वही अपना है। जो चला गया, वह परदेशी है। ''अमेरिका में रहकर ये प्रवासी भारतीय भारत की गंदगी, भीड़, महंगाई से दूर भ्रष्टाचार, अनाचार से अछूते, आज भारत को ही अध्यात्म का पाठ पढ़ा रहे हैं। अमेरिका में अध्यात्म मुखरित है और भारत में अध्यात्म मौन है। धक्के खाती ज़िंदगी आज अध्यात्म के बल पर ही साँस ले रही है।... वह माँ-बाप की सेवा का भार वहन कर रहा है। अपने खर्चे ताक पर रखकर, दवाई पर पैसे खर्च कर रहा है। क्या यह अध्यात्म नहीं है।'' उनकी इस कहानी में यह दिखाया गया है कि अपने कर्त्तव्यों का सही ढंग से निर्वहन और माँ-बाप की सेवा-सुश्रुषा भी अध्यात्म ही है।

इन लेखकों ने अमेरिका में जाकर तथा वहाँ रहकर अनुभव किया कि भारत में रहकर जैसा अमेरिका दिखाई पड़ता है, वह उससे एकदम भिन्न है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संस्कृति तथा धर्म आदि में भारतीय, वहाँ स्वयं को विपरीत पाता है। उसकी जो मानसिक संरचना है, उसे आघात पहुँचाता है, उसकी संवेदनाओं पर गहरी चोट लगती है। उसे अहसास होता है कि यहाँ के जीवन में अकेलापन, भागम-भाग और आपा-धापी है। तेज़ भागती हुई दुनिया में अपने गुम होने का खतरा उसे महसूस होता

है। लेकिन फिर भी भारतीय प्रवासी लेखक अमेरिका की आकर्षक दुनिया में गुम नहीं होता, वह तो अपने भारतीय बोध को जीवित रखता है। अमेरिका में रहने वाले प्रवासी लेखकों में भारत और भारतीयता तो है ही, इसके अलावा वहाँ की रचनाओं में जीवन का सुख-दुख है, संबंधों की पीड़ा है, प्रेम, उपेक्षा एवं वियोग है तथा जीवन की आकांक्षा है, पुरानी और नयी पीढ़ी का द्वंद्व है। यहाँ की रचनाओं में अकेलेपन की अभिव्यक्ति भी प्रचुर मात्रा में देखने को मिलती है, क्योंकि अमेरिका में अकेलेपन की त्रासदी वहाँ के लोग झेलते हैं, जब कोई भारतीय इससे रू-ब-रू होता है, तब उसका मन चीत्कार उठता है। अंजना संधीर कविताओं के माध्यम से इस अकेलेपन को व्यक्त करती हैं-

"वरना दो कमरे के घर में
बच्चों और पति के अलावा
किस से बोलें?
किसके पास समय है
इनके दुख सुख के लिए।"

vermamunil@gmail.com

भारतीय साहित्य का प्रतिफलित आशय

- डॉ. मनीष कुमार मिश्रा
महाराष्ट्र, भारत

एक अखंड राष्ट्र के रूप में भारत का स्वरूप बहुवचनात्मक है। बाह्य विविधताओं से परिपूर्ण इस देश में कुछ आंतरिक मूल तत्व हैं, जो इसकी अखंडता के लिए कवच के समान हैं। भारतीयता जैसी अवधारणाएँ इन्हीं प्रांजल तत्वों की खोह में सुरक्षित रहती हैं। पूरे विश्व में इस तरह का दूसरा उदाहरण नहीं है। ये तत्व ही प्रकाश के वे अंतःकेंद्र हैं, जो पवित्र, निर्मल विचारों और मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए साहित्य और संस्कृति के माध्यम से सच्चा बयान प्रस्तुत करते हैं। एक राष्ट्र के रूप में हमें ऊर्जावान, प्रज्ञावान और अग्रगामी बनाते हैं। यह भी सिखाते हैं कि दृष्टि के विस्तार में हम एक हैं। अथर्ववेद की पृथ्वी सूक्ति में लिखा गया है : "जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्"

(अथर्ववेद 12-1-45)

अर्थात् बहुत से लोग कई भाषाएँ बोलते हैं और उनके कई धर्म हैं। अर्थात् हज़ारों सालों से यह भूमि बहुभाषी और बहुधर्मी रही है। रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में अनेक संस्कृतियों के लोगों एवं उनकी भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन है। मध्यकालीन कवियों और संतों ने लंबी यात्राएँ कीं और अपने विचारों का प्रचार-प्रसार किया। गुरुग्रंथ साहब में अनेक संतों की वाणी संग्रहित है। मीरा बाई राजस्थानी, गुजराती और हिंदी के बीच सेतु का काम कर रही थीं। यही काम विद्यापति, बिहार और बंगाल के बीच कर रहे थे। मैथिली विद्यापति की मातृभाषा थी, लेकिन बांग्ला वाले भी उन्हें ब्रजबुलि अर्थात् बंगला भाषा के रचनाकार मानते हैं। रहीम और रसखान की बृजभाषा पर कौन मोहित नहीं हुआ।

फ़ादर थॉमस स्टीफ़न्स (1549-1619) ने मराठी में क्रिस्तपुराण / क्रिस्टा पुराण मसीह की कहानी (1614 में पूर्ण और 1616 में प्रकाशित) लिखी। महर्षि दयानंद गुजरात से थे, लेकिन काम हिंदी में कर रहे थे। सखाराम गणेश देउसकर(1869-1912) मराठी भाषी थे, जो बंगाली में लिखते थे। आप प्रसिद्ध क्रांतिकारी लेखक, इतिहासकार और पत्रकार थे। आप को 'बंगाल का तिलक' भी कहा जाता है। अरविंद घोष 'स्वराज' के पहले प्रयोग का श्रेय भी श्री देउसकर को देते हैं। आप की प्रमुख रचनाओं में 'महामती रानाडे', 'झासीर राजकुमार', 'बाजीराव', 'आनन्दी बाई', 'शिवाजीर महत्त्व', 'शिवाजीर शिक्षा', 'शिवाजी', 'देशेर कथा', 'कृषकेर सर्वनाश' इत्यादि शामिल हैं। स्वाथि थिरूनल केरल से हिंदुस्तानी में भी गीत लिख रहे थे। स्वाथि थिरूनल का जन्म सन् 1883 में हुआ था। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने मलयालम, संस्कृत, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, तेलुगु, मराठी, कन्नड़ और हिंदुस्तानी भाषा में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली थी। राजा सरफ़ोजी द्वितीय हिंदुस्तानी और पश्चिमी संगीत के संलयन का प्रयोग कर रहे थे। वे ओपेरा तमिल में कम्पोज़ कर रहे थे, विंड बैंड की तर्ज पर तंजौर बैंड बना रहे थे। राजा सरफ़ोजी द्वितीय 1798 से 1832 तक तंजौर के शासक रहे। इस तरह हम पाते हैं कि देश के कई राज्यों में अनेक रचनाकार एक से अधिक भाषा में लिखते रहे थे।

भारतीय क्षेत्रीय साहित्य किसी एक मूल तत्व को लेकर सबसे अधिक आंदोलित भक्तिकाल में दिखाई पड़ता है। सभी सगुण-निर्गुण संतों ने मानवता को जीवन के सबसे बड़े सत्य के रूप में स्वीकार किया है। असम में शंकरदेव, बंगाल में चंडीदास, उत्तर में सूरदास, तुलसीदास, कबीर और मीराबाई इत्यादि, कर्नाटक में पुरंदरदास, तमिलनाडु में कंबन, चेरुशशेरी केरल में,

त्यागराज आंध्र, तुकाराम महाराष्ट्र, नरसी मेहता गुजरात और बलरामदास उड़ीसा में, इसी मानवीय भाव के गीत गा रहे थे। इनके पहले के रासो ग्रंथ, आल्हा गीत, पोवाड़ा इत्यादि के अंदर भी ऐसे ही राष्ट्रीय भाव थे। ठीक इसी तरह आगे चलकर पूरा भारत एक स्वर में आज़ादी के तराने बुन रहा था। नवीनचंद्र सेन द्वारा लिखित 'बैटल ऑफ़ प्लासी' का हिंदी अनुवाद मैथिलीशरण गुप्त ने किया। काज़ी नज़रुल इस्लाम ने हिंदी में 'अग्निवीणा' लिखी। ऐसे कई रचनाकार रहे, जिन्होंने क्षेत्रीय दायरे में अपने को समेटे नहीं रखा। कन्नड़ के पुटप्पा, गुजराती के नर्मदाशंकर दवे, असमिया के अंबिकागिरि रामचौधरी और सावरकर, इक़बाल इसके उदाहरण हैं।

ज़मीनदारों द्वारा गरीबों और वंचितों के शोषण की कहानी भी भारतीय भाषाओं में प्रमुखता से चित्रित हुई। प्रेमचंद का 'गोदान', जसवंत सिंह का पंजाबी उपन्यास 'सूरजमुखी', व्येंकटेश दिगम्बर माडगुलकर का मराठी उपन्यास 'बनगरवाडी', फ़णीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल', उर्दू में राजेंद्र सिंह बेदी की 'एक चादर मैली सी', बंगाली में शरतचंद्र चटर्जी का 'पल्ली समाज', ताराशंकर बंदोपाध्याय का 'गणदेवता', असम के चाय बगानों पर केंद्रित बिरंचि कुमार बरुआ का उपन्यास 'सेउजी पटर कहनी'(1955), उड़िया में फ़कीर मोहन सेनापति का 'छह माण आठ गुंठ', तेलुगु में उन्नवा लक्ष्मीनारायण का 'मालापल्ली', तमिल के अकिलन/ पेरुंगळूर वैद्य विंगम अखिलंदम (पी. वी. अखिलंदम) की 'पावै विलक्कु', कन्नड़ के शिवराम कारंत / कोटा शिवराम कारंत का 'मरलि मण्णिगे', मलयालम के तकजि शिवशंकर पिल्लै /टी.एस. पिल्लै की 'रंटि टंगषी' (दो सेर धान) और गुजराती के पन्नालाल पटेल लिखित 'मलाला जीव'(मैला जीवन) इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

ऋतुओं के संदर्भ में कालिदास का 'ऋतुसंहार', गुरुनानक देव की 'तुखारी राग' तथा राजस्थानी, अवधी की बारहमासा एक ही परंपरा का निर्वहन करते हैं। गुरु नानक देव ने तुखारी राग के बारहमाहा में वर्ष के बारह महीनों का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है। मलिक मोहम्मद जायसी भी इस परंपरा का निर्वहन पद्मावत में करते हैं। कार्तिक मास में नागमती की विरह–वेदना का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि -

''कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी।।
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरै सब धरति अकासा।।''

सेक्स और हिंसा को किसी भी क्षेत्रीय साहित्य में उस तरह जगह नहीं मिली, जैसे यूरोप में पिछले बड़े युद्धों के बाद मिली। ऐसा इसलिए क्योंकि भारतीय दर्शन, जीवन की संपूर्णता में विश्वास करता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (4/6) में वर्णन मिलता है कि दो सुन्दर पंखों वाले पक्षी, घनिष्ठ सखा, समान वृक्ष पर ही रहते हैं; उनमें से एक वृक्ष के स्वादिष्ट फलों को खाता है, अन्य खाता नहीं अपितु अपने सखा को देखता है। हमारा शरीर एक पीपल के वृक्ष समान है। आत्मा तथा परमात्मा सनातन सखा अर्थात् दो पक्षी हैं, जो शरीर रूपी वृक्ष पर हृदय रूपी घोंसले में एक साथ निवास करते हैं। उनमें से एक तो कर्मफल का भोग करता है और दूसरा भोग न करके केवल देखता रहता है।

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥''

मानवीय उदारता का श्रेष्ठ साहित्य महाभारत को माना जा सकता है। अलग-अलग भारतीय भाषाओं में भिन्नता के बाद भी कुछ सूक्ष्म सूत्र ज़रूर हैं, जो इसे जोड़ता है। देवताओं और मनुष्यों के बीच पुल बनानेवाले भारतीय ऋषियों, मुनियों, संतों एवं कवियों ने दिव्य और पावन के अवतरण की संभावनाओं को हमेशा ज़िंदा रखा। राम और कृष्ण के रूप में इन्होंने समाज को एक आदर्श, प्रादर्श और प्रतिदर्श दिया।

महाश्वेता भट्टाचार्य झाँसी की रानी पर बंगाली में उपन्यास लिखती हैं। निराला शिवाजी पर उपन्यास लिखते हैं। टैगोर गुरु गोबिन्द सिंह पर कविता लिखते हैं। सुब्रह्मण्यम् भारती लोकमान्य तिलक पर कविता लिखते हैं। शांतिरंजन मुखर्जी ग़ालिब को बंगाली में अनूदित करते

हैं। यह सब एक राष्ट्रीय छवि के निर्माण में महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में देखा जा सकता है। समानता, मनुष्यता, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकात्मता जैसे तत्व इन सभी भाषाओं के साहित्य में समान रूप से मिलते हैं। जब हम भारतीय साहित्य कहते हैं, तब इसका अभिप्राय भारत में बोली जानेवाली सभी भाषाओं एवं बोलियों से है। संथाल और मुंडा साहित्य के साथ-साथ फ़ारसी में लिखित खुसरो, ग़ालिब और इक़बाल के साहित्य को भारतीय साहित्य का ही हिस्सा समझा जाए। इसी तरह अंग्रेज़ी में लिखित भारतीयों का साहित्य एवं प्रवासी भारतीय साहित्य को भी उदारतापूर्वक स्वीकार करना होगा। कई विदेशियों ने भी भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास इत्यादि को लेकर महत्त्वपूर्ण लेखन-कार्य किए हैं, उनके प्रति भी हमें एक समझ विकसित करनी होगी। सिस्टर निवेदिता का "The Web of Indian Life"(1904) इसी तरह का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

दरअसल, भारतीय भाषाओं में लिखित साहित्य में जितनी भिन्नता है, वह विश्व का इकलौता उदाहरण है। शिल्प में इतनी भिन्नता के बाद भी, संवेदना के स्तर पर इनमें बड़ी समरूपता है। यह एकरूपता आंतरिक है। इस देश में बाहरी रंग रूप से कहीं अधिक महत्त्व आंतरिक गुणों को दिया गया है। अगर बाहरी रंग रूप की समरूपता को महत्त्व दिया जाता, तो राष्ट्रीय पशु के रूप में शेर को नहीं, अपितु भैंसे को चुना जाता। भारतीय होने का अर्थ है मानवीय होना, कृतज्ञ होना। इस देश के अंदर रचा बसा सब कुछ इस देश का है। माईकल मधुसुदन दत्ता, बंकिमचंद्र चटर्जी , मुल्क राज आनंद, आर. के. नारायण, मनोहर मलगाँवकर, अनीता देसाई, नयनतारा सहगल, तोरु दत्त, विक्रम सेठ, एलन सेली, अमिताभ घोष, झुम्पा लाहिड़ी, चित्रा बनर्जी, अरुंधती रॉय, विक्रम चंद्रा, जैसे साहित्यकारों को उनकी अंग्रेज़ी भाषा की वजह से कमतर भारतीय समझना अनुचित है। ऐसे विचारों का परिमार्जन आवश्यक है।

मिथक और लोकसाहित्य को भारतीय साहित्य के दो अनिवार्य तत्त्व माने जा सकते हैं। भारतीय संस्कृति की दो प्राचीनतम भाषाएँ संस्कृत और तमिल में भी आंतरिक आदान-प्रदान के सूत्र मिलते हैं। कई वैदिक देवी-देवताओं का उल्लेख तमिल साहित्य में भी मिलता है। 'संगम साहित्य' में भी ये समानताएँ परिलक्षित होती हैं। इंद्र और अग्नि जैसे देवताओं के नाम यहाँ भी मिलते हैं। कई संदर्भों में रामायण और महाभारत का उल्लेख भी मिलता है। देवी अहिल्या और ऋषि गौतम की कथा का उल्लेख भी यहाँ मिलता है। तोण्डरडिप्पोड़ियालवार ने अपने प्रबंध साहित्य में उस गिलहरी का वर्णन किया है, जो सेतु समुद्रम् में योगदान देती है। रामायण से जुड़ी ऐसी कई घटनाओं का भी उल्लेख है, जिनका वर्णन वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता। तोंडरडिप्पोड़ियालवार का जन्म विप्र कुल में हुआ। इनका दूसरा नाम विप्रनारायण है।

तमिल ग्रंथों में उडियनजेरल / उदियमजेराल नामक राजा की कहानी भी मिलती है, जिन्होंने महाभारत के युद्ध के दौरान कौरव और पांडव दोनों ही सेनाओं को भोजन कराया। अहनानरु नामक तमिल ग्रंथ में सर्वप्रथम दक्षिण भारत में मौर्य आक्रमण का उल्लेख मिलता है। 6वीं शताब्दी में पल्लव साम्राज्य के समय तमिल साहित्य संस्कृत के अधिक निकट आया। दीनानाग, कालिदास, भारती, वराहमिहिर पल्लव शासन में प्रसिद्ध साहित्यकार थे। संस्कृत, प्राकृत और तमिल भाषा का जैनों ने भरपूर उपयोग किया। मदुरई और कांची में उन्होंने बड़े-बड़े शैक्षणिक केंद्र स्थापित किये। तमिल साहित्य की एक श्रेष्ठ रचना के रूप में हम कंबन रामायण से परिचित ही हैं। चोल राजा कुलोतुंग तृतीय (1178-1202 ई.) के दरबार से जुड़े कंबन ने रामावतारम् (तमिल रामायण)/ कंबन रामायण की रचना की। इसी तरह अद्वैत सिद्धांत पर कैवल्य नवनीतम एक महत्त्वपूर्ण मौलिक कार्य है।

इसी तरह संस्कृत के 'शिवभक्ति विलास' का मूल स्रोत तमिल भाषा में लिखित 'पेरिया पूरनम' (सेक्किझर, 12वीं शताब्दी) है। सेक्किझर ने इसे संकलित करने का

महत्त्वपूर्ण कार्य किया। राजा कृष्णदेव राय के समय में उनके अष्टदिग्गजों ने जो प्रबंध लिखे, उनकी प्रेरणा संस्कृत साहित्य ही रही। इसी तरह मलयालम साहित्य में संस्कृत के कई तत्सम शब्द मिलते हैं। यहाँ के निरानम कवियों ने तमिल और संस्कृत शब्द-संपदा के साथ उत्तम साहित्य रचा। कूकासांडसम जैसी रचनाएँ कालिदास के मेघदूतम् से प्रेरित है। साहित्यिक भाषा के रूप में मलयालम तमिल भाषा से प्रभावित था। चिरमन का रामचरितम (12वीं शताब्दी) इसका उदाहरण है। निरानम कवियों में यहाँ प्रभाव कम हुआ। निरानम कहे जाने वाले कवि थे माधव पणिकर, शंकर पणिकर और रमा नायक। इनका समय 1350 से 1450 ई. के बीच रहा।

मराठी भाषा की बात करें, तो 1188 ई. के आस-पास नाथपंथीय मुकुंदराज के 'विवेकसिंधु' की चर्चा सबसे पहले होती है, जो अद्वैत भक्ति से संबन्धित है। इन्हें मराठी का आदिकवि भी माना जाता है। 1128 से 1200 ई. के बीच इनका जीवनकाल माना जाता है। "विवेकसिंधु" और "परमामृत" नामक इनके दो ग्रंथों की चर्चा मिलती है। ज्ञानेश्वर की 'ज्ञानेश्वरी' को कैसे भुलाया जा सकता है, जो कि 1290 ई. के आस-पास की रचना मानी जाती है। कृष्ण पर केंद्रित वामन पंडित की रचना यथार्थदीपिका भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। नारायनदास कृत 'नारायण कीर्ति' और रत्नाकर कृत 'रत्नाकर' भी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। मुगलकाल के संत एकनाथ के साहित्य से सभी परिचित हैं। रामायण पर केंद्रित सबसे अधिक ग्रंथ बांग्ला और मराठी में लिखे गये हैं। कवि गिरिधर के सात अलग संस्करण, माधव स्वामी का एक और मोरेश्वर रामचंद्र पराड़कर / मोरोपंत (1729-1794) के 108 संस्करण की बात अद्‌भुत है। वैसे मोरेश्वर रामचंद्र पराड़कर / मोरोपंत के लिखे 94-95 संस्करण मिलते हैं। बाकी के बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती। लेकिन एक ही व्यक्ति द्वारा रामायण को केंद्र बनाकर इतने संस्करण लिखना विलक्षण है।

19वीं शती के अंत तक मराठी भाषा में भी राष्ट्रीय गौरव का भाव अधिक प्रबल हुआ। विष्णु शास्त्री चिपलूंकर निबंधमाला में अपने लेख शुरू करने से पहले संस्कृत की कोई सूक्ति लिखते थे। प्राचीन कथाओं को समकालीन समस्याओं से जोड़ते हुए, उपन्यास लिखने की परंपरा महाराष्ट्र से ही शुरू हुई। साने गुरुजी, जी.एन. दांडेकर और वी.एस. खांडेकर कुछ ऐसे ही उपन्यासकार थे। पांडुरंग सदाशिव साने (24 दिसम्बर 1899 – 11 जून 1950) मराठी भाषा के प्रसिद्ध लेखक, शिक्षक, सामाजिक कार्यकर्ता एवं कर्मठ स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी थे। वे साने गुरुजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। आप ने 'कुरल' नामक तमिल ग्रंथ का मराठी अनुवाद किया। 'आंतरभारती' नामक संस्था की स्थापना साने गुरुजी ने प्रांत-प्रांत के मध्य चल रही घृणा को कम करने हेतु की। क्षेत्रवाद और प्रांतवाद भारत की अखंडता के लिए घातक है, इस बात को वे अच्छे से समझते थे। 'आंतरभारती' का उद्देश्य ही था कि विभिन्न राज्यों के लोग एक-दूसरे की भाषा और संस्कृति को सीखें, उनकी प्रथा, परंपरा और मान्यताओं को समझें।

गोपाल नीलकंठ दांडेकर / जी.एन. दांडेकर (1916-1998) ने सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं, जिनमें 26 उपन्यास थे। 'स्मरणगाथा' के लिए आप को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। वी.एस. खांडेकर / विष्णु सखाराम खांडेकर (1898-1976) ने 'ययाति' सहित कुल 16 उपन्यास लिखे। जिनमें 'हृदयाची हाक', 'कांचनमृग', 'उल्का', 'पहिले प्रेम', 'अमृतवेल', 'अश्रु' शामिल हैं। नाटकों के क्षेत्र में भी ऐसा ही प्रयोग हुआ। विष्णुदास भावे (1819-1901) ऐसे ही नाटककार थे। आप को मराठी रंगभूमि के जनक के रूप में भी जाना जाता है। आपने ही 1843 में "सीता स्वयंवर" नामक मराठी का पहला नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किया। रामायण को आधार बनाकर आपने विविध विषयों पर दस नाटक लिखे। "इंद्रजीत वध", "राजा गोपीचंद" और "सीता स्वयंवर" जैसे नाटकों का लेखन और दिग्दर्शन आप ने सफलतापूर्वक किया।

समग्र रूप में हम यह कह सकते हैं कि हमें स्वयं

के भीतर मानवीय उदारता और भावों को विस्तार देना होगा, ताकि विस्तृत दृष्टिकोण हमारी थाती रहे। निरर्थकता में सार्थकता का रोपण ऐसे ही हो सकता है। स्वीकृत मूल्यों का विस्थापन और विध्वंस चिंतनीय है। विश्व को बहुकेंद्रित रूप में देखना, देखने की व्यापक, पूर्ण और समग्र प्रक्रिया है। समग्रता के लिए प्रयत्नशील हर घटक, राष्ट्रीयता का कारक होता है। जीवन की प्रांजलता, प्रखरता और प्रवाह को निरंतर क्रियाशीलता की आवश्यकता होती है। वैचारिक और कार्मिक क्रियाशीलता ही जीवन की प्रांजलता के प्राणतत्त्व हैं। जीवन का उत्कर्ष इसी निरंतरता में है। भारतीय संस्कृति के मूल में समन्वयात्मकता प्रमुख है। सबको साथ देखना ही हमारा सही देखना होगा। अंधेरों की चेतावनी और उनसे सीख के बावजूद हमें सामाजिक न्याय चेतना को आंदोलित रखना होगा। खण्ड के पीछे अखण्ड के लिए सत्य में रत रहना होगा। सांस्कृतिक संरचना में प्रेम, करुणा और सहिष्णुता को निरंतर बुनते हुए, इसे अपना सनातन सत्य बनाना होगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. IDENTIFICATION OF COMMONNESS AMONG LETTER SETS OF VARIOUS LANGUAGES AND NUMERIC SYSTEMS FROM SANSKRIT. K.S.Vishwanath. Assistant Professor, Department of Aerospace Engineering, IIAEM, Jain University, Bangalore-562112. ISSN: 2320-5407 Int. J. Adv. Res. 6(11), 1060-1068.
2. Postcolonial Indian Literature Towards a critical framework – Satish C. Aikant, Indian Institute of Advanced Study, Shimla, first published 2018.
3. Social Awareness in Modern Indian Literature – R.K. Kaul and Jaidev. Indian Institute of Advanced Study, Shimla, first published 1993.
4. Literature and Infinity – Franson Manjali, Indian Institute of Advanced Study, Shimla, first published 2001.
5. भाषा का समाजशास्त्र – राजेन्द्र प्रसाद सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। तृतीय संस्करण 2019
6. King Serfoji II of Thanjavur and European Music by Professor Indira Viswanathan Peterson, Mount Holyoke College, U.S.A, Journal of the Music Academy of Madras, Dec 2013.

manishmuntazir@gmail.com

हिंदी कविता में कश्मीर

- श्री उमर बशीर
कश्मीर, भारत

कविता एक सतत् प्रवाहमान एवं गतिशील सरिता है, जिसे युगीन अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं ने गति देकर आगे की ओर बढ़ाया है। प्रत्येक काल की कविता अपने युग की पहचान होती है, दूसरे शब्दों में कहें तो एक जीवंत दस्तावेज़ है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की माने तो "साहित्य समाज का दर्पण होता है"। आचार्य शुक्लानुसार कविता हृदय की मुक्तावस्था की साधना की अभिव्यक्ति है। कविता कथा-साहित्य की अपेक्षा अधिक प्रभावी विधा है, जो अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु त्वरित गति से आगे बढ़ती है। कविता से कवि के व्यक्तित्व को, उसके दर्शन को, उसकी विचारधारा को, उसकी भाषा आदि को पहचाना जा सकता है, अर्थात् वह संसार के प्रति अपना दृष्टिकोण कविता के माध्यम से व्यक्त करता है। इसी दृष्टि की खोज-बीन करके उसमें निहित तथ्यों का संकलन शोध का प्रमुख कार्य होता है।

वस्तुतः विश्व की विभिन्न भाषाओं के साथ-साथ हिंदी में भी कश्मीर की सुंदरता को दर्शाया गया है। हिंदी साहित्य में कश्मीर केंद्रित रचनाएँ भारतेंदु युग (1850-1885 ई.) के आसपास इतिहास-ग्रंथों के रूप में मिलती हैं। पथ-प्रदर्शक भारतेंदु 'हरिश्चंद्र' (1850-1884 ई.) ने 'काश्मीर कुसुम' (1874 ई.) नामक खण्ड-काव्य की रचना की है। यद्यपि इनसे पहले इधर घाटी के हिंदी कवियों में पं. भावनाथ, पं. नीलकंठ, कवि परमानंद हिंदी कविता-कर्म में रत थे, किंतु वह कविताएँ आध्यात्मिकता के कठघरे में ही खड़ी हैं, कुछ कविताओं में प्रकृति-वर्णन के सूत्रात्मक संकेत अवश्य हैं, जो ना के बराबर हैं।

कश्मीर प्राचीन काल से ही ज्ञान, अध्यात्म, सौंदर्यादि का केंद्र बना रहा है। एक समय में कश्मीर संस्कृत भाषा व साहित्य का केंद्र माना जाता था। वस्तुतः संस्कृत सहित विश्व की विभिन्न भाषाओं में कश्मीर संदर्भित साहित्य रचा गया है, जिसमें कश्मीर की सुंदरता, यहाँ का रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, पर्व-त्यौहारादि का वर्णन मिलता है। इसी विचार को दृष्टि में रखकर, कश्मीर-सम्बंधित हिंदी काव्य को जब सर्वेक्षण की कसौटी पर कसा गया, तो परिणाम निकला कि इस प्रकार का साहित्य स्वच्छंदतावाद (1930-1940 ई.) से प्रारंभ होता है, जिसके प्रमुख कवि श्रीधर पाठक (1859-1928 ई.) हैं। 'काश्मीर सुषमा' (1904 ई.) इस साहित्य का प्रमुख उदाहरण है। हिंदी में इस प्रकार के साहित्य की नींव इसी कृति के रूप में पड़ी है। नौकरी के प्रसंग में पाठक जी को कश्मीर आना पड़ा, जहाँ इन्हें प्रकृति का निरीक्षण करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इसी के चलते इन्होंने 'काश्मीर सुषमा' की रचना कर डाली। प्रकृति-चित्रण में पाठक जी को सर्वाधिक सफलता मिली है। तत्कालीन कवियों में इन्होंने सबसे अधिक प्रकृति-वर्णन किया है। कवि ने यहाँ की प्रकृति में विभिन्न छवियाँ देखी हैं, जिनके चित्रण में अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है -

"प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति"[1]

कवि ने घाटी के अनेक तीर्थ-स्थानों, पर्यटन-स्थलों, धरोहरों, ऐतिहासिक-स्थानों, धार्मिक-स्थानों आदि का उल्लेख भी किया है, उदाहरणार्थ - मानस बल, गंधर बल, गगरी बल, डल, श्रीनगर, शेरगडी, शारिका, हरिपर्वत, दूध गंगा, शंकराचार्य, खीरभवानी, मार्तंड, वारह मूल, अमरनाथ, पुरषयार बल आदि। कवि ने 'सेतु' शब्द के स्थान पर 'कदल' शब्द का प्रयोग करके कविता में जिज्ञासा को पुष्ट किया है। किंतु 'झेलम' शब्द

के स्थान पर 'वितस्ता' शब्द का प्रयोग करना कवि को समीचीन जान पड़ा है।

वस्तुतः स्वच्छंदतावादी कवियों ने प्रकृति-वर्णन में कहीं-न-कहीं कश्मीर का प्रसंग अवश्य उठाया है। श्रीधर पाठक के अतिरिक्त श्री रामनरेश त्रिपाठी (1889-1962 ई.) का नाम भी इसी श्रेणी के कवियों में शीर्षस्थ है। उनके द्वारा रचित 'स्वप्न' (1928 ई.) खण्ड-काव्य इसका प्रमाण है। त्रिपाठी जी का काव्य भी प्रकृति से परिपूर्ण काव्य है। 'स्वप्न' की भूमिका में कवि लिखते हैं - "मैं प्रकृति का पुजारी हूँ.....कश्मीर में जिन-जिन प्राकृतिक दृश्यों ने मुझे लुभाया था, उनका वर्णन मैंने इसके (स्वप्न) अनेक पद्यों में किया है।"[2] उनकी मान्यता है कि बिना कश्मीर गए पाठक उन दृश्यों का आनंद नहीं ले सकता। बसंत नामक युवक को आधार बनाकर उसके हृदय में उठ रही तरह-तरह की तरंगों के माध्यम से कवि ने पहलगाम (कश्मीर का सर्वप्रसिद्ध पर्यटक-स्थल), हिम-पर्वत, नदी-नाले, देवदार आदि के मनोरम चित्र खींचे हैं। त्रिपाठी जी ने 'स्वप्न' को पहलगाम में लिखना आरंभ किया और गुलमर्ग (कश्मीर का प्रसिद्ध हिम-पर्वतीय पर्यटक-स्थान) में समाप्त।

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवियों हरिवंशराय बच्चन, हरिकृष्ण प्रेमी, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, अज्ञेय, दिनकर आदि की कविताओं में भी कश्मीर दिखाई पड़ता है। हरिकृष्ण प्रेमी की "यह मेरा काश्मीर", नागार्जुन की "चिनार" कविता, अज्ञेय की "देवदार" कविता आदि इसके उदाहरण हैं। 'कश्मीर-वन में बसी' प्रकृति के मनोरम चित्र कवि अज्ञेय ने चाक्षुष-बिंबों में उकेरे हैं।

हिंदी में अधिकतर कश्मीर-केंद्रित कविताएँ, जम्मू-कश्मीर के कवियों द्वारा विभिन्न भावों के अंतर्गत रची गयी हैं। इन कवियों में शशि शेखर तोषखानी, सत्यवती मल्लिक, मोहन निराश, प्रो. रतन लाल शांत, सुतीक्ष्ण कुमार 'आनंदम्', दुर्गा प्रसाद काचुर, चंद्रकांता, पृथ्वीनाथ मधुप, गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह कवि जिस समय राज्य में कविता लिख रहे थे उस समय हिंदी कविता में "प्रयोगवाद" का बिगुल बजाया जा रहा था। स्वभावतः इन कवियों का भाव-बोध और शिल्प प्रयोगवादी ही रहा। सत्यवती मल्लिक की पहली कविता "हब्बा ख़ातून की जीवन संध्या" भाव, शिल्प एवं संप्रेषण की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है। यह कविता कश्मीर की नारी जाति के सौंदर्य, हतभाग्य, निराशा और विरहजन्य पीड़ा को प्रतिबिंबित करती है। कश्मीर की आदि कवयित्री हब्बा ख़ातून (ज़ून) पर आधारित यह कविता अपने आप में अद्वितीय है।

प्रो. रतन लाल शांत (जन्म 1938 ई.) के अब तक दो काव्य-संग्रह प्रकाश में आये हैं – 'खोटी किरणें'(1965 ई.), 'कविता अभी भी' (1997 ई.)। 'खोटी किरणें' काव्य-संग्रह में कवि कश्मीर की प्राकृतिक सुंदरता को ऊब की सीमा तक, अनुभव करते-करते थकान महसूस करते हैं। अंततः कश्मीर की प्राकृतिक सुंदरता में छिपी लोगों की वृत्ति को कवि उत्सुकता के साथ जानने को विवश होता है। कवि ने कश्मीर में बसी प्रकृति के साथ अपना भावात्मक तादात्मय स्थापित किया है। उनकी कविता कश्मीरी संस्कृति इसे पुष्ट करती दिखायी देती है। इसी संग्रह में कवि की एक सुंदर कविता - 'चिनार' भी संकलित है। चिनार कश्मीर के परिप्रेक्ष्य में अपना एक सांस्कृतिक महत्त्व रखता है। चिनार के पत्तों पर पड़ी सूर्य-किरणों का बिंब देते हुए कवि कहता है –

" सतरंगी पंखों पर तिरकर। सूर्यदेव से लुक-छिप
खिसकी।
मधुमयी किरणों के ये छत्ते।
ये चिनार के पत्ते।"[3]

आलोच्य कविता में प्रयोगवादी झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। कवि ने प्रकृति में बँधे प्रगाढ़ बिंबों की सृष्टि की है।

जम्मू प्रदेश में हिंदी के प्रतिष्ठित कवि सुतीक्ष्ण कुमार 'आनंदम्' मूलतः जीवनानुभूतियों के कवि हैं। उनकी कविताओं का रूप-विधान बड़ा ही आकर्षक है। उन्होंने कश्मीर के उस लोक-जीवन का भावपूर्ण वर्णन

किया है, जो वादी की प्रकृति में पल रहा है। कवि को यहाँ की प्रकृति में वात्सल्य भाव की अनुभूति होती है। उनका वादी की प्रकृति से माता-पुत्र का सम्बंध हो जाता है। वह प्रकृति को माता-समान मानकर उसकी विस्तृत गोद में बैठकर घुटनभरी ज़िंदगी से मिली, बहुआयामी कठिनाइयों का सामना करके उनको पल भर के लिए भुलाते हैं और उनका सामना करने हेतु अपने व्यक्तित्व को प्रेरित भी करते हैं। कवि ने भावपूर्ण बिंबों के माध्यम से चिनार, सेब, अनार, अख़रोट, बादाम आदि वृक्षों के नाम गिनाकर, उनको जीवन की धड़कन एवं महकती गंध में आवेष्टित कर प्रस्तुत किया है। हरिवंशराय बच्चन का कहना है – "'आनंदम्' में प्रसाद और निराला जी की मौलिक सूझ, मौलिक कल्पना और मौलिक अभिव्यक्ति के कई सबूत मिलते हैं, उन्होंने नये रूपकों के द्वारा कविता का आयाम और अनुभूति का क्षेत्र बढ़ाया है। "[4] कश्मीर की सुंदरता को लेकर लिखा गया 'नौका का इतिहास' (1974 ई. काव्य-संग्रह) की कविताएँ कश्मीर के लोक जीवन की लय-ताल से जुड़े अनुभवों का प्रतीक है। इस संकलन पर डॉ. राजकुमार की टिप्पणी पर्याप्त सटीक बैठती है – ''वह (कवि) जेहलम के शांत प्रवाह में नौका चला रहे नाविक को सौभाग्यशाली मानता है, क्योंकि जब वह लोल लहरियों के साथ जीवन-गान गाता है तब वितस्ता के ओर-छोर रबाब के स्वरों में रंगे हुए, मधुर गीत को सुनने लगते हैं।"[5]

चंद्रकांता (जन्म 1938 ई.) मूल रूप से कथाकार हैं, किंतु उन्होंने कविता में भी अपनी कलम आज़मायी और सफ़लता प्राप्त की। उनका काव्य-संग्रह 'यहीं कहीं आसपास' (1999 ई.) भाषा एवं भाव-पक्ष की दृष्टि से एक सफल काव्य-कृति मानी जा सकती है। श्रीनगर कश्मीर में जन्मी लेखिका को निर्वासन के समय अपनी मातृभूमि की याद प्रतिपल आती रहती है। जीवन से मिले इस निर्वासन का दोष कवयित्री किसी पर नहीं लगाती, केवल प्रश्न खड़ा कर देती है कि आख़िर यह निर्वासन कब समाप्त होगा ? उनको यह निर्वासन राम-वनवास जैसा लग रहा है -

"बीतता नहीं है निर्वासन
गैरों ने दिया हो
या अपने भीतर उगा !
मैं तो घर में ही रही"[6]

कवयित्री अपनी मातृ-भूमि की कमी बार-बार महसूस करती रहती है। कदाचित् यही कारण है कि उन्होंने अपनी कविताओं में कश्मीरी भाषा के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। उनकी कविताएँ पाठक को हिंदी-लिपि में कश्मीरी भाषा की मिठास का सुखद अनुभव करा देती है। यह मिठास उनकी कविताओं में निरंतर बनी रहती है। "कैसी होगी इस बार की बर्फ़?" कविता की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

"भापीले कहवों के घूँट भरते
'नवशीन' की मुँह दिखायी में
ढेर-सी दावतें कबूलते
रोगनजोश ····वारिमुठ ····याजि !
तपी बुखारियों पर भुनी मिशिरमकाय को टूँगते
हम बर्फ़ का जश्न मनाते, संवारते उसे
मनचाही शक्लों में"[7]

वस्तुतः स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, अर्थात् सन् 1947 ई. से लेकर सन् 1990 ई. तक कश्मीर-केंद्रित कविता परंपरागत रूप से ही विषय, भाव-बोध, भाषा आदि को लेकर रची जा रही थी। किंतु सन् 1990 ई. के उपरांत इस प्रकार की कविता का मिज़ाज बदलने लगा। प्रकृति के स्थान पर अधिकतर कवियों ने समाज को, अपने अस्तित्व को, अपनी समस्या को, विस्थापन आदि को ही प्रमुखता दी। कहने का तात्पर्य यह है कि सन् 1990 ई. के उपरांत विस्थापन के दर्द को लेकर साहित्य की अधिक रचना हुई। इस प्रकार के काव्य में नॉस्ताल्जिया-बोध (Nostalgia) अधिक दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त कश्मीर व कश्मीर के लोगों की समस्याओं ने भी इसमें स्थान पाया है। इस काव्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में घाटी

से विस्थापित कवियों – डॉ. अग्निशेखर, महाराज कृष्ण संतोषी, महाराज कृष्ण भरत आदि का नाम लिया जा सकता है। यह कविता जम्मू-कश्मीर में हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। महाराज कृष्ण संतोषी जैसे कवियों ने कश्मीरी संस्कृति, कश्मीरयत, आपसी–भाईचारा, मिलनसार, विस्थापन, मानवतावाद, आतंकवाद, अलगाववाद आदि जैसे अनेक विषयों पर लेखनी चलायी है। विशेष बात यह है कि निदा नवाज़ जैसे अविस्थापित कवियों ने भी विस्थापन पर अपनी कलम चलाकर मानव-समानता (Human Equality) एवं कश्मीरीय़त का परिचय समाज को दिया है।

महाराज कृष्ण संतोषी (जन्म 1954 ई.) के अब-तक पाँच काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं – 'इस बार शायद' (1980ई.), 'बर्फ़ पर नंगे पाँव' (1992 ई.), 'यह समय कविता का नहीं' (1996 ई.), 'वितस्ता का तीसरा किनारा' (2005 ई.), 'आत्मा की निगरानी में' (2015 ई.)। 'लल्लद्येद', 'नुंद-ऋषि', 'विचारनाग' आदि कविताएँ कश्मीर के परिप्रेक्ष्य में अपना एक ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्त्व रखती हैं। 'यह समय कविता का नहीं' काव्य-संग्रह में कवि को अपनी मातृभूमि से दूर होने की पीड़ा कसमसा रही है। 'लल्लद्येद' कविता में कवि ने कश्मीर की आदि कवयित्री लल्लेश्वरी का पवित्र एवं आदर्श चित्र खींचा है। यह कविता लल्लद्येद के वाखों (कविता) की याद दिला देती है। साथ ही, उन वाखों पर सोच-विचार करने की प्रेरणा भी देती है। लल्लद्येद के बारे में अनुचित कहने वाले लोगों को कवि सचेष्ट करता है। कवि ने कश्मीर के ऐतिहासिक संत, पीर, औलिया शेख़-उल-आलम के प्रति अपनी आस्था व श्रद्धा 'नुंदऋषि' कविता में व्यक्त की है। कवि ने उनको कबीर, तुलसीदास, गुरुनानक, गौतम बुद्ध आदि के समकक्ष रखा है -

"मैं तुम्हें देखता हूँ
इतिहास के काठ दरवाज़े से बाहर।
अक्षरों के खुले घर में सांस लेते हुए,
कभी कबीर से बतियाते हुए,
कभी गले मिलते हुए नानक से,
कभी तुलसी से सुनते हुए,
उसकी चौपाइयां"।[8]

कवि को श्रीनगर में अपने पुरखों द्वारा आविष्कृत मंगलमय वस्तु, 'विचारनाग' के मिट जाने का दुख निर्वासन में भी सता रहा है। यह दुख उनकी कविता 'विचारनाग' में देखा जा सकता है। कवि आशावादी भी दिखायी देते हैं। उनको अपने घर (कश्मीर) लौटना अब भी संभव जान पड़ता है –

"लौटना अब भी सम्भव है
पर कहते हैं
विचारनाग में
अब हमारे लिए जगह नहीं रही"[9]

'यह समय कविता का नहीं' काव्य-संग्रह की कविताएँ भोगे हुए यथार्थ की पीड़ागत कथा सुनाती हैं। विभिन्न विषयों पर आधारित यह कृति कवि पर बीते हुए हालात को बयाँ करती हैं। 'व्यथा ही जीवन की कथा रही' की उक्ति के ढर्रे पर कवि की कविताएँ निर्मित हुई हैं। कवि की व्यथा का एक बिंब द्रष्टव्य है –

"आज मैं खुश हूँ अपने जन्मदिन पर
यह जानते हुए भी कि
माँ के बनाए हुए पीले चावलों से
अलग नहीं है
मेरी व्यथा का रंग"[10]

संतोषी जी का अधिकतर साहित्य विस्थापन पर ही टिका है। विस्थापन पर बहुत ज़्यादा लिखते हुए भी कवि ने कभी भी किसी प्रकार की थकान महसूस नहीं की है। कारण (?) उनकी कविताएँ स्वयं बयान करती हैं – घर से बिछुड़ने की पीड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी कलम की सियाही विस्थापन साहित्य-लेखन के लिए ही बनी हो, जो कविताओं में निरंतर प्रवाहित होती रहती है।

डॉ. अग्निशेखर (जन्म 1956 ई.) की कविताओं का मुख्य स्वर विस्थापन रहा है, जो - 'किसी भी समय'

(1992 ई.), 'मुझसे छीन ली गयी मेरी नदी' (1996 ई.), 'काल वृक्ष की छाया में' (2002 ई.), 'जवाहर टन्नल' (2009 ई.) आदि जैसे काव्य-संकलनों में देखा जा सकता है। उनकी कविताएँ आतंकवाद, राष्ट्रवाद, अंतरराष्ट्रीय मुद्दों आदि पर हैं। कश्मीरी पृष्ठभूमि पर आधारित 'कांगड़ी', 'बर्फ़', 'कोयला', 'हांगुल' आदि कविताएँ कश्मीरी संस्कृति की द्योतक हैं।

इधर घाटी में पिछले कई दशकों से कुछ कश्मीरवासी कवि, हिंदी कविता में कर्मरत हैं। इन कवियों का प्राकृतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक चितंन से ओत-प्रोत काव्य कश्मीर को प्रतिबिंबित करता है। इनमें निदा नवाज़, सतीश विमल, जमीला मीर, मुदस्सिर अहमद भट्ट आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

निदा नवाज़ (जन्म 1963 ई.) के अब तक तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं – 'अक्षर-अक्षर रक्त भरा' (1998 ई.), 'बर्फ़ और आग' (2015 ई.), 'अंधेरे की पाजेब' (2019 ई.)। वह घाटी के एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने हिंदी में विशेषतः कश्मीर के हिंदी साहित्य-जगत में अपनी एक विशिष्ट व सुदृढ़ पहचान बनायी है। उनकी कविताओं में कश्मीर अपने यथार्थ रूप में दिखायी पड़ता है। एक अहिंदी-क्षेत्र में हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना, अपने-आप में अद्वितीय है। उनके साहित्य का पठन करते समय उनका असमझौतावादी व्यक्तित्व स्पष्ट दिखाई पड़ता है। डोगरी विद्वान रामनाथ शास्त्री का कहना है – "उसने (निदा नवाज़) वादी में दहशत तथा वहशत के दौर में भी, वादी में रहकर ही अपनी काव्य-साधना परवान चढ़ाई है।"[11] उन्होंने कल्पना का कम, यथार्थ का अधिक सहारा लिया है, जिससे कवि का यथार्थवादी होना स्पष्ट जान पड़ता है। निदा नवाज़ के काव्य-संग्रहों के शीर्षक पाठक को चौंका देते हैं, जैसे - 'अक्षर-अक्षर रक्त भरा', अर्थात् कवि का मानना है कि ये कविताएँ कश्मीर में हो रहे रक्तपात की गाथा सुनाती हैं। रक्त-होली का एक बिंब देते हुए कवि कहता है -

"मैं पूछता हूँ
साँझ की लालिमा से
क्या रक्त उसी रंग का नाम है
जो हमारे हर शब्द का स्वभाव
हर कविता का अभिमान
और हर पुस्तक का शीर्षक
ठहर गया ?[12]

निदा नवाज़ कृत 'बर्फ़ और आग' काव्य-संग्रह कश्मीर घाटी के पिछले दो दशकों का पद्यात्मक इतिहास है। यह रचना कश्मीर के क्षतिग्रस्त शरीर और लुटी-पिटी आत्मा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। निदा नवाज़ ने एक आम आदमी की सच्चाई को अपनी कविता में जगह दी है। कवि ने जनता के विचारों को वाणी देने का भरसक प्रयास किया है। चिनार के सूखे पत्तों के साथ सामान्य कश्मीरी की उपमा देते हुए कवि कहते हैं -

"चिनार के बूढ़े पत्तों की तरह
झर जाते हैं हम
रुकवाते हैं वे हर मोड़ पर
गाड़ी हमारी
अभद्र भाषा में
हमें कहा जाता है
उतरने के लिए
काँपते-काँपते ढल जाते हैं
एक क़तार में
x x x x x x
वे छीन लेते हैं हमसे
हमारा आत्म सम्मान
हमारी गैरत"[13]

'अंधेरे की पाजेब' काव्य-संग्रह सन् 2015 से 2019 ई. तक का कश्मीर का काव्यात्मक इतिहास है। यथार्थ से परिपूर्ण ये कविताएँ कश्मीर का दुख-दर्द सुनाती हैं। जिसका प्रमाण संग्रह में संग्रहीत - 'कर्फ़्यू', 'मैं असमर्थ हूँ', 'मानव रक्त का चसका', 'ब्लैकमेल', 'बंकर बस्ती', 'आदमखोर कानून की आड़ में', 'एहतिजाज़ का पोस्टर',

'नन्हीं आँखें छीनने की रस्म', 'मैं तुम्हें सलाम करता हूँ', 'वे जो गुमनामी में मारे गए', आदि जैसी कविताएँ हैं। कवि द्वारा विस्थापन पर लिखी गयी कविताएँ शांत तथा करुण रस से परिपूर्ण कविताएँ हैं। 'बेघर हुए परिंदों का क़ाफ़िला' की निम्न पंक्तियाँ 'विस्थापन' कविता का उत्कृष्ट उदाहरण है -

" परिंदों का एक क़ाफ़िला
अपनी बिखरी यादों में
उजड़े नीड़ों के तिनकों
और
नोंचे गये पंखों के दृश्य लिए
x x x x x x x x x
खट्टी-मीठी यादों के बिंब लिए
चल दिया अंधेरों को फ़लाँघते "[14]

इसके अतिरिक्त कवि ने बर्बरता के उन सारे कुत्सित प्रसंगों का उल्लेख किया है, जिनसे कश्मीरी लोग पिछले 30 वर्षों से जूझ रहे हैं। आलोच्य रचना में कश्मीर की भयावह त्रासदी का सजीव वर्णन किया गया है। ये कविताएँ पाठक के मन व मस्तिष्क को व्यथा के अथाह सागर में ले जाकर, Real face of Kashmir को प्रदर्शित करती है। क्रूर और असामान्य परिस्थितियों से जूझ रहे, सामान्य कश्मीरी के प्रति कवि की संवेदना व शोक मर्मांतक है –

" मुझसे नहीं देखा जाता है
तुम्हारी माओं का रुदन
बहनों का विलाप
तुम्हारे पिताओं की
सूखी-सहमी आँखें
क्या तुम नहीं जानते थे
शिकारी ताक़ लगा कर बैठे हैं
और तुम बेपरवाह कुलाचें भर रहे थे
आज़ाद हिरणों की तरह।"[15]

निदा नवाज़ का वर्ण्य-विषय काफ़ी विस्तृत है। उन्होंने कई विषयों पर अपनी कलम आज़माकर सफलता प्राप्त की है। कश्मीर की संस्कृति, विस्थापन, राजनीति, भ्रष्टाचार, मानवतावाद आदि कवि के केंद्रीय-विषय रहे हैं।

सतीश विमल (जन्म 1966 ई.) कश्मीर के उन प्रतिष्ठित हिंदी कवियों में से हैं, जिन्होंने पलायन का मार्ग त्यागकर घाटी में रहकर ही अपनी काव्य-यात्रा गंतव्य तक पहुँचायी। उनके प्रथम काव्य-संकलन 'विनाश का विजेता' (सन् 1992 / 2002 / 2006 ई.) में मानव-मूल्यों, जीवनानुभूतियों और यथार्थ की अभिव्यक्ति का सम्मिश्रण मिलता है। मुदस्सिर अहमद भट्ट का एकमात्र काव्य-संग्रह 'स्वर्ग-विराग' (2016 ई.) भाव-पक्ष की दृष्टि से निदा नवाज़ के काव्य-संसार के समकक्ष ठहरता है।

वस्तुतः पिछले कई दशकों से भारत के विभिन्न क्षेत्रों से सैकड़ों लोग वादी का भ्रमण करने आते हैं। स्वाभाविक है कि इनमें हिंदी के कवि भी आते होंगे। इन्हीं कवियों में शुभश्री पाणिग्राही एक विशेष नाम है। उनके द्वारा रचित काव्य-संग्रह 'पन्ने कश्मीर के' (2015 ई.) कश्मीर के प्राकृतिक दृश्यों का अमूल्य दस्तावेज़ है। कवयित्री ने भावों को प्रधानता देकर इसका भाव-पक्ष बड़ा ही आकर्षक बना दिया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

"हिम धूलि तुम्हारा चेहरा
मैंने ढूँढा तुमको
हर पल, हर सांस में
क्योंकि बसे हुए थे तुम
मेरी रग-रग में।"[16]

इसी प्रकार अशोक कुमार पाण्डेय, रामदत्त शास्त्री, कमलजीत चौधरी, अनिला सिंह चाडक, श्री के. नरेश उदास, आलोक श्रीवास्तव, हंसराज भारती, सुशील कुमार शर्मा आदि जैसे सैकड़ों कवियों ने समकालीन समय में कश्मीर संबंधित कविताओं का सृजन किया है। सार रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी कविता में कश्मीर-सम्बंधित कविता का अधिक विकास, जम्मू-कश्मीर के भीतर ही हुआ है। अतः हिंदी-काव्य में कश्मीर-आधारित कविताएँ लिखने की यह प्रवृत्ति आज भी जीवित है। हिंदी

कवियों की दृष्टि आज भी कश्मीर की ओर जाती है।

संदर्भ ग्रंथानुक्रमणी :

1. सलिल, सुरेश (सं). श्रीधर पाठक रचनावली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, दरियागंज, नयी दिल्ली, 2013 ई., पृ . 183
2. त्रिपाठी, रामनरेश. स्वप्न, हिंदी मंदिर, प्रयाग, 1928 ई., पृ. 4
3. शांत, (प्रो.) रतन लाल, खोटी किरणें, नीहार पब्लिकेशन्ज़, जम्मू, 1956 ई.
4. राजकुमार, (डॉ.), जम्मू कश्मीर का स्वातंत्र्योतर हिंदी साहित्य : एक विवेचन, जे. एण्ड के. एकैडमी ऑफ़ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू, 1999 ई., पृ. 70
5. वही, पृ. 155
6. चंद्रकांता, यहीं कहीं आसपास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नयी दिल्ली, 1999 ई., पृ. 10
7. वही, पृ. 16
8. संतोषी, महाराज कृष्ण, आत्मा की निगरानी में, मानस पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2015 ई., पृ. 24
9. वही, पृ. 96
10. संतोषी, महाराज कृष्ण, यह समय कविता का नहीं, शारदापीठ प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 1996 ई., पृ. 9
11. नवाज़, निदा, अक्षर-अक्षर रक्त भरा, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, 1998 ई., पृ. 8
12. वही, पृ. 14
13. नवाज़, निदा, बर्फ़ और आग, अंतिका प्रकाशन, गाज़ीयाबाद, 2015 ई., पृ. 77
14. नवाज़, निदा, अंधेरे की पाज़ेब, सेतु प्रकाशन पटपड़गंज, दिल्ली, 2019 ई., पृ. 125-126
15. नवाज़, निदा, अंधेरे की पाजेब, सेतु प्रकाशन पटपड़गंज, दिल्ली, 2019 ई., पृ. 23
16. पाणिग्राही, (डॉ.) शुभश्री, पन्ने कश्मीर के, एराइज़पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नयी दिल्ली 2015 ई., पृ. 13

umarku121@gmail.com

umarsahil.dew@gmail.com

रामायण और रामचरितमानस : विश्व के पाँचों भूखंडों में

-प्रो. विजयकुमारन सी.पी.वी
केरल, भारत

वाल्मीकि (कहीं ब्रह्मा) से विरचित व नारद, शिव-पार्वती, ऋषि-मुनि तथा तुलसीदास परंपरा तक पक्षीगण, कवि-भक्त की मौखिक परंपरा में स्मृति रूप में ब्रह्मांड में परिव्याप्त रामायण की मूल भाषा संस्कृत और अन्यान्य देश-विदेश की भाषाएँ होती हैं। बीसवीं और इक्कीसवीं सदी में इनके लौकिक, साहित्यिक और साहित्येतर विहायस में उड़ान भरते हुए, कई स्वीकृतियाँ हुईं। मूल रामायण (400 ई.पू.–400 ई.) का पाठानुसंधान अब भी चल रहा है ताकि उसकी एकरूपता प्राप्त हो तथा दुनिया के पाँचों महाभूखंडों में परिव्याप्त इस बृहद आख्यान का स्रोत एवं विभिन्न काल-खण्डों में, उस में उत्पन्न अनंत पाठों और व्याख्याओं का समीकृत ज्ञान प्राप्त हो जाए। कामिल बुल्के ने पहले-पहल इसके तीन पाठ –दाक्षिणात्य, गौड़ीय और पश्चिमोत्तरीय - माने हैं, और एकरूपता न होने का समर्थन किया है। (बुल्के, रामकथा - उत्पत्ति और विकास, 1962, 27-34).

मूल मानी जानेवाली वाल्मीकि रामायण में 24000 श्लोक, 500 सर्ग तथा 7 कांड हैं, जो विश्व का आदिकाव्य माना जाता है। वैदिककाल से इसके नाना रूपों में अनुरूपन, अनुकूलन व अनुकरण हो रहे हैं, जो देशकाल सीमा का अतिक्रमण कर रहे हैं। वाल्मीकि रामायण तथा जैन और बौद्ध रामायणों पर टिप्पणी करती हुई, प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता रोमिला थापर ने 2017 में यह मंतव्य व्यक्त किया कि रामायण के मूल पाठ पर गौर करना अपेक्षित है। मगर यह राय बीसवीं सदी के मध्य में ही कामिल बुल्के प्रकट कर चुके हैं। उन्होंने तीन पाठों की खोज भी की है।

वैदिककाल में रामायण के कुछेक पात्रों और घटनाओं का उल्लेख मात्र प्राप्त है। तब से लेकर अब तक राम-कथा-कथन की रीतियाँ : मौखिक, लिखित, शिल्प, नाट्य, चित्र, छायाचित्र, चलचित्र, वृत्तचित्र, भित्ति चित्र, संगीत, कथा-वाचन, लोककला असंख्य मिलती हैं। पुनर्सृजन, पुनर्कथन, कथावाचन, आख्यान, व्याख्यान, आशयानुवाद, मौखिक परंपरा, रंगभाष्य परंपरा, नृत्य एवं नृत्त, लोकाचार एवं लोककला के विविध रूप, आनुष्ठानिक पाठ एवं पठन, दृश्यांकन जैसे केरल की रामलीला, कथकली, रामनाट्टम एवं चमंडी-गुड़ियानाच, तैय्यम, छायानाट्य, मंदिरों में शिल्प व मूर्तियाँ, भित्तिचित्र, बुनाई, आभूषण-गहने, पेंटिंग, पाश्चात्य औपरे, बैले, नौटंकी, आदि बृहद रूपों में राम-कथा की स्वीकृतियाँ समय-समय पर विश्व के कोने-कोने में हो रही हैं। विश्व तुलनात्मक साहित्य में यह अमूल्य निधि है। हाल ही में, रामायण विश्वकोश को 200 खंडों में प्रकाशित करने की बृहद शोध परियोजना के अंतर्गत, अयोध्या शोध संस्थान के मुख्य संपादक डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह के द्वारा, इसके पहले खंड का लोकार्पण हुआ। यह प्रयास दुनिया के रामायण विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न सांस्कृतिक पाठों की निर्देशिका एवं सूची मात्र है, इसलिए उत्सुकतापूर्वक इस शोध पत्र में दुनिया के पाँचों महाखंडों पर पनपते रामायण और रामचरितमानस के सांस्कृतिक अनुवादों पर विचार करना समीचीन होगा। कविवर तुलसीदास का मंतव्य यहाँ शिरोधार्य होगा कि नाना राम-अवतारों के रूप में करोड़ों रामायणों की सृष्टि होती है -

"नाना भांति राम अवतारा।
रामायण सत कोटि अपारा।''

-(रामचरितमानस, 32-3)

संत तुलसीदास ने रामचरितमानस में मध्यकालीन परिस्थितियों के अनुरूप अवधी भाषा में

27 श्लोकों, 4608 चौपाइयों, 1074 दोहों, 207 सोरठों, और 86 छंदों में, पुनःसृजित रामकाव्य रचा। उक्त मानस के रूपायन के लिए, रामनरेश त्रिपाठी द्वारा खोजे गए, ग्रंथों की संख्या 72 है। (सीपीवी, 2012, 96), जबकि तुलसीदास ने ही इसका संकेत दिया था (तुलसीदास, 1968, 1. श्लोक 7) मलयालम में सत्रहवीं सदी तक प्रकाशित एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किलिप्पाट्टु (शुकगीत) है, जिसका रचनाकाल 1500 ई. से 1600 ई. माना जाता है, और जिसका मूल 3643 संस्कृत श्लोकों से महर्षि रामानंद से रचा अध्यात्मरामायणम् है, जो इसका मौलिक प्रतिस्थापन माना जाता है।

विश्व के पाँच भूखंडों में रामायण

सतीशकुमरा हारित एवं चारुलता वेन्ना ने रामायण परंपरा का बृहद् तालाब एवं उसके खुले किनारे व आनुवंशिकता नामक आलेख में बताया है कि वाल्मीकि रामायण की निर्दिष्ट रचना के 800 साल में कई क्षेपक हैं। ओलिवा रॉय के अद्यतन आलेख, जो रामानुजन के तीन सौ रामायण....की सकारात्मक आलोचनात्मक स्वीकृति है, के सारांश में बताया गया है कि विश्व की 25 भाषाओं में रामायण उपलब्ध हैं।

विदेशी रामायणवेत्ताओं और आलोचकों से लेकर भारतीय विद्वानों तक रामायण और रामचरितमानस समेत कई राम कथा-कथन रीतियों का मनन करने के बाद वे मंतव्य निकाल रहे हैं, जो विश्व के पाँचों भूखंडों में भारतीय संस्कृति का प्रतीकांतर एवं संकेतशास्त्र का खज़ाना बनते जा रहे हैं (बुल्के, कामिल 1950; थापर, रोमिला 1989, रिचमैन, पौला 1991; धारवादकर, विनय 1999; वाद्ले, सूसन 1995; बोस, मंदाक्रांता 2002 एवं 2003; ग्रिफ़ित, रॉल्फ़, 2008; हकीम, रफ़ादी 2014; राय, ओलिवा 2017)। श्रीमती अनिता इसल्सका ने अपनी वेबसाइट में इसी रामायण की खूबियों को वाणीबद्ध किया है, आज वे सांस्कृतिक संश्लेषण (Cultural Synthesis) का साक्ष्य हैं। रामानंद सागर द्वारा निर्देशित रामायण दूरदर्शन धारावाहिक, अपने 78 उपाख्यान श्रृंखला में जनवरी 25, 1987 से जुलाई 31, 1988 तक भारत में दर्शाया गया था, जो मूल रामायण और रामचरिमानस का ही आभास पाठ बनकर पनपता रहा है, जिसे दुनिया की कई भाषाओं में अनुकूलित व मूल हिंदी में भी दर्शाया गया है। दुनिया के रामायणवेत्ताओं ने इसे गम्भीरता से लिया है।

यूरोप में रामायण

यूरोप में रामायण का प्रभाव, सबसे ज़्यादा बेल्जियम के फ़ादर कामिल बुल्के के भारतीय प्रवास से ही अंकित हुआ था। पोलैंड, इंग्लैंड, स्पेन, पुर्तगाल, फ़्रांस, इटली, नीदरलैंड, स्विट्ज़रलैंड, जर्मनी, रूस जैसे राष्ट्रों में रामायण प्रस्तुतियाँ होती रहती हैं, जो प्रत्येक देश की अपनी-अपनी ज़बान में होती हैं और कभी-कभी वहाँ के भारतीय दूतावास और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की विस्तार योजना के अंतर्गत भी होती हैं। यूरोप में भारत के तीन सांस्कृतिक केंद्र स्थापित हैं - लंदन का नेहरू केंद्र, जर्मनी का टैगोर केंद्र और स्पेन का भारत-भवन यानी कासा द ला इंदिया। ये तीनों समय-समय पर रामायण की कई प्रस्तुतियाँ, यहाँ तक कि दृश्यांकन, पेंटिंग, वृत्तचित्र, दूरदर्शन आधारित कार्यक्रम, सिनेमा, एवं नाट्यांकन, नृत्त-नृत्य आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुतियाँ करते हैं। स्पेन की ऐसी एक नाट्य प्रस्तुति में, शीर्षक : रामायण एक सवारी सौ रुपए (Ramayan : un viaje cien rupias) का विस्तार से उल्लेख हुआ है, जो यूरोप के कई राष्ट्रों में दर्शाई गई थी। (विजयकुमारन, 2012, 122-26)

बेल्जियम में रामायण

सन् 1935 में बेल्जियम के पादरी कामिल बुल्के ने भारत आकर डॉ. माताप्रसाद गुप्त के निर्देशन में 'रामकथा - उत्पत्ति और विकास' (1950) पर मौलिक शोध कार्य किया। उन्होंने आदिकवि वाल्मीकि को भाव

समर्पित करते हुए लिखा - "जिनकी प्रतिभा ने राम-कथा को भारत तथा निकटवर्ती देशों के साहित्य में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया और भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वल प्रतीक बना दिया, उन आदिकवि वाल्मीकि को राम-कथा की दिग्विजय का प्रस्तुत विवरण सश्रद्धा समर्पित है।" कामिल बुल्के ने उपर्युक्त ग्रंथ में देश-विदेश में उपलब्ध रामायणों का कालक्रमिक विवरण भी दिया है, जिनमें संस्कृत के (43), बौद्ध और जैन रामायणों के (18), आधुनिक भारतीय भाषाओं के (43) एवं विदेशी रामायणों जैसे तिब्बत्ती (2), जावा (1), सिंहली (1), मलयाई (1), और कंबोदियाई (1) रामायण का अंकन है। मगर उन्होंने यूरोप और अमेरिका जैसे भूखंडों में तब तक होनेवाले रामायण अध्ययन पर ध्यान नहीं दिया था, उनका गहन शोध पूर्व एशियाई देशों तक सीमित था। बेल्जियम में इस पुण्यात्मा की स्मृति में रामायण से जुड़े अनेक सांस्कृतिक-साहित्यिक कार्यक्रम संपन्न होने लगे थे। वहाँ के राष्ट्रीय संग्रहालय में रामायण का एक आभासिक दृश्य प्रदर्शन हुआ, जो 17वीं से 19वीं सदी तक के 49 विभिन्न भारतीय पेंटिंग के संक्षिप्त रूपों से बना था, और जो रामकथा के क्लासिक, लोक और अनेक शैलीकृत चित्रों में रहे, जिनमें पहाड़ी पेंटिंग के अंतर्गत बशोली, चंबा, मंडी, गुलेर, नूरपुर, कांगड़ा, राजस्थानी शैली में जयपुर और बीकानेर, मध्य भारत की मालवा, ओरछा, दतिया, राघोघट आदि तथा बंगाली की दकानी एवं कालीघाट शैली का प्रयोग था। नवंबर 2013 से मई 2014 तक की लंबी अवधि तक यह प्रदर्शनी बेल्जियम की राजधानी ब्रेसिल्स में लगी रही। वहाँ अप्रैल 23, 2020 में रामायण से दो उपाख्यानों की प्रस्तुति का विवरण मिलता है। आगे चलकर अप्रैल 10, 2022 को रामनवमी और मई 10, 2022 को सीता नवमी मनाने की घोषणा वहाँ हो चुकी है। ज़ाहिर है कि यूरोप के श्रद्धालुओं को मद्देनज़र रखकर ही भारत में भी कम मनाई जानेवाली सीतानवमी जैसे अनुष्ठान की उद्घोषणा वहाँ हो चुकी है।

जर्मनी में रामायण

जर्मनी में 2018 में अनूदित एवं स्वतंत्र रूप से प्रकाशित होने वाली रामायण रॉल्फ़ थॉमस होचकिन ग्रिफ़ित की अंग्रेज़ी (1874) में वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। बोन स्कूल में रामायण पर भाषिक और दार्शनिक दृष्टि से अध्ययन संपन्न होने का उल्लेख भी है। भारत सरकार के सांस्कृतिक संबंध परिषद् की अधिकांश रामायण प्रदर्शिनियाँ जब-जब यूरोप के अन्य भारतीय सांस्कृतिक केंद्रों में होती थीं, बर्लिन में भी अवश्य होती थीं। हाल ही में जर्मनी में 'अद्भुतरामायण - उत्तरकांड' के प्रकाशन की सूचना मिली है। जर्मनी में रामायण का संक्षिप्त रूप फ़्रेडरिक रुकेरत ने प्रकाशित किया। म्यूनिख़ से प्रकाशित रामायण बालकांड का प्रकाशन जोसफ़ मेनराड (1897) के द्वारा हुआ था।

पोलैंड में रामायण

पाश्चात्य रामायण संस्करणों से पोलैंड में उन्नीसवीं सदी में रामायण का अनुवाद हुआ। अनुवादक किज़िज़ोव्स्की का कथन है कि उन्होंने बच्चों और आम आदमी को दृष्टि में रखकर रामायण का अनुवाद किया है, जिससे भारत की महान मिथकीय परंपरा की जानकारी हासिल हो जाए। इंडियन एक्सप्रेस दैनिकी में जुलाई 17, 2013 को छपी रिपोर्ट के मुताबिक पोलैंड में मूल भाषा संस्कृत से ही एक उच्च स्तरीय रामायण अनुवाद की अपेक्षा है।

इतालवी व फ़्रांसिसी रामायण

गसपरे गोर्रेसियो (1843-67) ने सात भागों में वाल्मीकि रामायण के पुनर्पाठ के रूप में, इतालवी रामायण लिखी। हिप्पोलित फ़ोचे (1854-1858) का दो भागों में संस्कृत रामायण का भी प्रकाशन हुआ। फ़्रांसिसी भाषा में ऑलफ़्रेड रोसल (1803-1907) की रामायण भी उपलब्ध है। इन तीनों का प्रकाशन पैरिस में हुआ।

स्पेन में रामायण

स्पेनिश भाषा में वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस के कुल 17 प्रतिस्थापन व अनुकूलन उपलब्ध हैं। उनमें सेमियोटिक अनुवाद, अनुकूलन और प्रतीकांतर के काफ़ी नमूने पाए जाते हैं। कामेला यूलाते (1940; 1962), लोरा पाल्मा (1942), जॉन ग्विक्से (1945), जॉन जनेस (1952), जॉन बुर्ग (1963; 1970), जोस लूयिस गिमेनस (1984), लूयिस अलबर्ट (1998), कास्तिया एवं लयोन की कलाओं का शताब्दी प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित भारतीय सांस्कृतिक महोत्सव – चतुर्थ संगीत एवं रंगकला प्रदर्शन (2008), सर्गे डेमेत्री (2012), बार्सिलोना विश्वविद्यालय का वीडियो प्रदर्शन (2013), कतलानी भाषा (स्पेन की चार उपभाषाओं में एक) रामायण (2014), वालंसिया विश्वविद्यालय का, रोसर नगुरा का शोध - कोसल से बोलीवुड तक : दो हज़ार साल की रामायण यात्रा - एक सेमियोटिक अध्ययन (2017) आदि वाल्मीकि रामायण केंद्रित हैं, तो तुलसीदास के रामचरितमानस पर केंद्रित अनुवादों में एलेना देल रियो के दो (1998, 2006), जिनमें पहला आंशिक और दूसरा पूर्ण अनुवाद तथा 1981 का तीसरा अनुवाद भी दर्शाया जा सकता है। स्थानाभाव के कारण इनका अलग अध्ययन ही संभव है।

इंग्लैंड में रामायण

इंग्लैंड में रामायण का रंगभाष्य सोद्देश्य था, ताकि उससे दक्षिण एशियाई देशों और भारत की पीड़ित महिलाओं की आर्थिक सहायता हेतु चंदा इकट्ठा किया जा सके। सन् 1994 में निर्माता शोभा रामन ने इस प्रकार का एक रंगकर्म सजाया। ब्रिटिश लाइब्रेरी में रामायण पर प्रदर्शिनी भी हुआ करती है। भित्ति-चित्र, छाया चित्र और रंगचित्र इनमें प्रमुख हैं। 'तारा आर्ट्स थियेटर ग्रुप' ने ऐसी एक प्रदर्शिनी में रामायण के पात्रों की शिला-मूर्तियाँ भी लगायीं थीं, जिनको रामलीला की वेश-भूषा से सजाया गया और कृत्रिमता से बचा लिया गया था।

लंदन में अनगुस स्ट्रॉचन द्वारा करोडों डॉलर खर्च करके, एक फ़िल्म – Between Two Worlds - राम और सीता के आधार पर शेक्सपीयर की शैली में बनी थी। इंग्लैंड के कलामंडल की रामायण 'ब्लाक क्याँट थियेटर' की प्रस्तुति ऐसा ही एक और कदम था।

गुटनबर्ग ई-बुक परियोजना के अंतर्गत ऑनलाइन समग्र वाल्मीकि रामायण का अंग्रेज़ी अनुवाद (1870-1874) रॉल्फ़ टी ह्वेच ग्रिफ़ित के द्वारा हुआ, जिसे 2008 में ई-बुक में परिणत किया गया। इसका जर्मन में पुन: अनुवाद हुआ। विलियम कारि एवं ज्योश्ना मार्शमैन का रामायण अनुवाद (1806-1810) एवं तीन भागों में अगस्त विल्हेम वोन श्लीगल ने आंशिक रूप से लैतिन अनुवाद (1829-1838) भी किया। मन्मथनाथ गुप्त (1891-1894) के सात भागों में वाल्मीकि रामायण के गद्यानुवाद उपलब्ध हैं।

रूस में रामायण

अविभक्त सोवियत संघ में रामायण के सशक्त स्वर बारान्निकोव थे, जो अब स्वतंत्र राष्ट्र उक्रेन के निवासी रहे हैं। उन्होंने रामचरितमानस का छंदानुवाद करके तुलसीदास की शैली का भी अनुकूलन किया है। प्राप्त सूचना के अनुसार वर्तमान रूस में प्रस्तुतियों के रूप में तीन रामायण मालाएँ आयोजित हुई थीं। अक्तूबर 10-11, 2016 और सितंबर 11-13, 2017 को यथाक्रम उनकी दूसरी और तीसरी प्रस्तुतियाँ हुईं।

अमेरिका में रामायण

यूनेस्को द्वारा 2005 में घोषित और 2008 से लागू मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की प्रतिनिधि सूची में भारत की परंपरागत रामलीला को भी जोड़ लिया गया है।

अमेरिका भूखंड में यह कार्य प्रो. रोबर्ट गोल्डमैन व सेली सथरलैंड गोल्डमैन की संयुक्त रामायण अनुवाद परियोजना 1970 से चला। पौला रिचमैन (Richman,

1991, 24) ने ए. के. रामानुजन के आलेख – 'तीन सौ रामायण, पाँच उदाहरण और अनुवाद के तीन सिद्धांत', का उल्लेख करते हुए, रामकथा की अनंत कथन-शैली को निरूपित करती हुई, पाश्चात्य भाषाओं को छोड़कर, दक्षिण एशिया में ऐसी 23 भाषाएँ हैं, जिनमें रामकथा समय-समय पर अंकित हुई है, श्री ए. के. रामानुजन ने रामकथा पर रामायणविदों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर केंद्रित 12 आलेखों का संपादन कर, अपनी विस्तृत टिप्पणी, विषयसूची (अंग्रेज़ी के अक्षर-क्रम में) के साथ 275 पृष्ठों में, अपने ग्रंथ 'कई रामायण' का प्रकाशन किया है। वह अंग्रेज़ी में रामकथा विषयक उल्लेखनीय दस्तावेज़ बन गया है। बाद में चलकर, ओलिवा राय ने भी ए.के. रामानुजन के उपर्युक्त किताब के समानार्थ सामग्री पेश की है।

ब्लूमिंगटन से प्रकाशित पौला रिचमैन (2008) की संकलित व संपादित कृति 'आधुनिक दक्षिण भारत की रामायण कथाएँ : एक एंथोलॉजी' है। उन्होंने 22 आलेखों को 'यह किसका रामायण है?' में भूमिका बाँधकर तीन भागों में -पहला सीता संदर्भित, दूसरा लांछित पात्र और तीसरा राक्षस कहलाने वाले तथा उपसंहार में अतिकथा (मेटानैरेटिव) में 'जिज्ञासाएँ किसको नहीं होती हैं?' प्रकरण में वेलचेरु नागेश्वर राउ द्वारा अनूदित तेलुगु स्त्रियों के लोकगीत समेत लक्ष्मण परिहास जैसे उपशीर्षक में मिलाकर, फिर परिशिष्ट में शब्दावली, संदर्भ ग्रंथ, योगदान कर्त्ताओं की सूची व विषय सूची के साथ विस्तार से समाहित किया गया है।

ऐसी अनेक अनुबंध-रामायण 20वीं व 21वीं सदी में लिखी गईं, जिनके विदेशी या देशी रामायण-भाष्यकार उसके मूल से दूर होते दिखाई देते हैं। रामायण का अपसंस्कृतिकरण ही ऐसे आलोचकों के सिर पर सवार होता है। अमेरिकी विद्वान वेन्नी डोनिगर की भूमिका के साथ ए.के. रामानुजन के संकलित निबंधों (सं.1999, 2001, 2004, 2006) पर लगी सारी टिप्पणियाँ और दिल्ली विश्वविद्यालय का आक्रोश, उक्त लेखक की ऐसी शोध दृष्टि से उद्‌भूत हैं, जबकि उनके पहले की संकलनकर्ता पौला रिचमैन (1988, 1991, 2001, 2007, 2008, 2014, 2021) के भारतीय रामायण व धर्म से जुड़े संकलनों पर इतनी आपत्ति नहीं उठी थी।

अमेरिका में रामायण की अंतःपाठ्यता के तीन अवतरणों को दिल्ली की शोधार्थी दीपाली माथुर द्वारा आलोच्य बनाया गया है। पाश्चात्य देशों के स्त्री-विमर्श की कोटि में आनेवाले वे तीनों आगे चलकर रामानुजन के बहुचर्चित आलेख का स्रोत भी बने। अमेरिकी कोमिक स्ट्रिप नीना पाले की 'सीता सिंग्स द ब्लूस' जैसी एनिमेशन फ़िल्म, अलिसन अरकल स्टोकमैन का 2010 में निर्देशित 'रामायण रंगभाष्य' और संजय पाटिल की सचित्र विवरण पुस्तक 'रामायण : डिवाइन लूफ़ॉल्स' जैसे तीनों में, रामायण को पश्चिमी संस्कृति में व्याख्यायित करने का प्रयास रहा। पाश्चात्य संस्कृति में भारतीय संस्कृति को स्थापित करने के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उपक्रम में, इन तीनों को 'जाकि रहि भावना जैसी, प्रभु मूरति देखि तिन तैसी' कथन से तुलसीदास का समाधान ही काफ़ी होगा। जनसत्ता की ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक अमेरिका के एक प्रमुख हिंदू समूह ने वहाँ के विश्वविद्यालयों से 'हिंदुत्व का खंडन' सम्मेलन प्रायोजित नहीं करने और वैश्विक हिंदुत्व को समाप्त करना विषय पर प्रस्तावित ऑनलाइन सम्मेलन को समर्थन न देने का आग्रह किया गया है।

मैकल मधुसूदन दत्त (1861) के 'मेघनाथ-बध काब्या' (बंगाली) के दो अंग्रेज़ी अनुवाद उपलब्ध हैं। इस मूल काव्य को अंग्रेज़ी उपनिवेशीकरण की उपज के रूप में माना जाता है, जहाँ मेघनाथ, रावण जैसी आसुरी शक्तियाँ राम जैसे सम्राज्यवादी के खिलाफ़ लड़ते हुए शहीद होती हैं। अनुवादक क्लिंटन बी सीले ने अपनी रचना के शीर्षक में ही इसे सूच्य बनाया है। मगर शोधार्थी अभय कुमार रॉय ने मेघनाथ वध काव्य को राष्ट्रीय अवबोध जगाने लायक माना है।

अमेरिका भूखंड के अन्यान्य देशों में और गिरमिटिया देशों में रामायण

सत्रहवीं सदी से अंग्रेज़ों ने भारतीयों को गिरमिटिया बनाकर दक्षिण अमेरिका, कैरीबियाई द्वीप, दक्षिण अफ़्रीका, मॉरीशस आदि देशों में अनुबंध के अंतर्गत यहाँ बुलाया था। अधिकांश का अवलंबन रामायण या रामचरितमानस था। तुलसीदास पर अमेरिकी संगोष्ठी में यह आँखों देखी प्रस्तुति बहुतों के द्वारा हुई थी। (विजयकुमारन, 2012, 95-106) फ़िजी, ब्रिटिश गयाना, डच गयाना, त्रिनिदाद, टोबेगो, नेटाल (दक्षिण अफ़्रीका), मॉरीशस आदि देश इसके साक्षी रहे। रामायण स्कूल द्वारा बच्चे, माता-पिता व अध्यापकों हेतु छः दिवसीय रामायण लीडरशिप कार्यशाला ज़ूम प्लैटफ़ॉर्म में कैरीबियाई देशों, कनाडा और अमेरिका में पिछले साल सक्रिय रूप में चली थी, जो अटलांटिक समुद्र पार के रामायण संज्ञान को बढ़ाने लायक बनीं। इन शैक्षिक-सांस्कृतिक पाठों को अन्यत्र भी देखा जा सकता है। ज़ाहिर है कि रामायण के सेमियोटिक अंतरण में गिरिराज किशोर का लिखा हिंदी उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' का अभूतपूर्व योगदान है।

अफ़्रीकी महाखंड और मॉरीशस में रामायण

गिरमिटिया देश दक्षिण अफ़्रीका में अधिकांश उत्तर भारतवासियों के द्वारा तथा गांधी जी के होते, कई राज्यों में रामायण यानी रामचरिमानस का प्रचलन खूब हुआ। रामनवमी एवं दीवाली मनाते हुए वहाँ 1860 से 1910 तक के निवासी ही डरबन में मानस पाठ किया करते थे। आंध्र से उत्प्रवासित वहाँ के हिंदू त्यागराज और भद्राचल रामदास कीर्तन करते रहे। वाल्मीकि रामायण को नृत्य नाटक के रूप में प्रस्तुत करते थे। पौला रिचमैन चार प्रसंगों को उठाकर वर्ण संकरता से बचने के राममंत्र अवलंबन की दक्षिण अफ़्रीकी विधियाँ समझाती हैं। उसी प्रकार वहाँ के रामायण-दृश्यानुकूलन की बात भी करती हैं।

मॉरीशस में ही विश्व का पहला रामायण केंद्र 2001 में वहाँ के सरकारी संरक्षण में खोला गया है, जो गिरमिटिया देश के रामायणादि के अस्तित्व को आज भी बरकरार रखता है। प्रस्तुत केंद्र में तुलसी जयंती ही नहीं, रामचरितमानस संगीत, दृश्य-श्रव्य अवतरण भी हुआ करते हैं।

ऑस्ट्रेलिया महाखंड एवं दक्षिण पूर्व एशिया में रामायण

ऑस्ट्रेलिया के मेल्बर्न विश्वविद्यालय की एशिया नेटवर्क एक्सचेंज पत्रिका में रामायण का स्थानीय भाष्य छपा था। हिंदुओं का दक्षिण और पूर्व एशियाई देशों में 8वीं सदी से उपनिवेशीकरण हुआ था।

एशिया में रामकथा की स्वीकृति 2500 सालों से हिंदू से गैर-हिंदू धर्म और समाज में भी हो गयी है, यही स्थिति 21वीं सदी तक दुनिया के अन्य भूखंडों में भी है। अंततोगत्वा रामायण 'बहुविध उदाहरणों की विधा है' (Roy, 2017, 90)। ए. के रामानुजन के आलेख में पाँच राम कथा-कथन रीतियों के चुने हुए प्रकरणों से रामायण के थाइलैंड, तिब्बत्त, म्यांमार, लावोस, चीन, कंबोदिया, मलेशिया, जावा और इंडोनेशिया आदि राष्ट्रों में से थाई रामकीर्ति या रामाकियान को थाइलैंड की जनता पर पड़े प्रभाव दिखाने हेतु चुना है। रामाकियान के मुताबिक राम की राज-परंपरा में एक-एक ने रामायण की रचना में भाग लिया और मानव, राक्षस और वानर जैसे तीन प्रकार के पात्रों को उसमें प्रमुखता दी। रावण को एक वीर नायक के रूप में लिया गया, और रावण की पराजय सबके दुख का कारण बनती दिखाई गई है। इंडोनेशिया, फ़िलिपीन, मलेशिया, आदि देशों में रामायण मुस्लिम संस्कृति के अनुरूप ढाली गई है।

भारत में रामायण

संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं की रामायणों में दो प्रकार का अंत मिलता है - एक में राम द्वारा रावण के वध के उपरांत सीता समेत अयोध्या लौटना और दूसरे में सीता को प्रजावत्सल राम द्वारा चरित्रहीनता

का आरोप लगाकर वन में छोड़े जाने पर वाल्मीकि द्वारा पालित होकर उनके दो बच्चे लव और कुश के द्वारा राम से पुनर्मिलन का अवसर आते ही सीता का धरती में समा जाना। यहाँ तक कि वाल्मीकि रामायण के प्रथम बालकांड और सातवें उत्तरकांड में क्षेपक मानने वाले विद्वान भी हैं।

भारत में रामायण के सांस्कृतिक अनुवाद की परंपरा अभिनव गुप्त के नाट्यशास्त्र के भाष्य (ई. पू. दूसरी सदी), हरिवंश पुराण (पहली शताब्दी) आदि में भी प्राप्त होती है। रामानुजन के अनुसार रामायण सांस्कृतिक धरातल की दूसरी भाषा है तथा एक असाधारण वाकपटु भाषा है। अरोविला, पुतुच्चेरी के व्याख्यान में विदुषी रामिला थापर ने रामायण को इतिहास के एक प्रकरण के परे, काल, देशातीत अनेक आख्यानों का संगुंफित इतिहास कहा, यानी इसे खुद का इतिहास बताया है।

जैन परंपरा में विमल सूरी के 'पउम चरिउ' के अनुसार राम, लक्ष्मण, सीता आदि जैन रहे, जो जैनों के 63 पैगंबरों की परंपरा में जन्मे थे। सीता को वहाँ रावण पुत्री घोषित किया। बौद्ध जातक कथा में, दशरथ जातक परंपरा में सीता को दशरथ की बेटी बताया गया है। बंगाल के लोकगीत चंद्रमती रामायण में सीता मंदोदरी की बेटी है। रामगौड़ द्वारा खोज निकाली कन्नड़ लोक रामायण में सीता रावण से पैदा हुई, क्योंकि रावण ने शिवजी द्वारा दिए गए फल को खाया था। अतः इन सारी भारतीय परंपरा में सीतायन (रामायण का अपर) रचे जाने का अनुपम स्रोत निहित है।

रामनामियों के निमित्त तमिल कवि कंबन (1180–1250) 'इरमावतारम्' में कई उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुए, भगवान और भक्त के बीच के जटिल संबंध व्यक्त करते हैं। माइकल मधुसूदन दत्त रचित बंगाली रामायण में सांस्कृतिक उभयवादिता के उपनिवेशवादी असमंजस को प्रकट करने की क्षमता है, जो थाई राजाओं को राजनैतिक वैधता की शब्दावली प्रदान करता है। तेलुगु ब्राह्मण महिलाओं का पति की उपेक्षा के बारे में बहस करने का तरीका उक्त भाषा में है। ई.वी. रामस्वामी को तमिल में रावण की स्थिति से जूझकर अलगाववाद के विवाद को खड़ा करने में, वह भाषा सक्षम है। (रिचमैन, 1991, 14-15)

कामिल बुल्के (बुल्के, 1962, 153-260) ने 1950 तक संस्कृत धार्मिक साहित्य में राम-कथा के अंतर्गत हरिवंश, महापुराण, उपपुराण और सांप्रदायिक रामायण में योगवशिष्ठ, अध्यात्म रामायण, अद्‌भुत रामायण, आनंद रामायण, तत्वसंग्रह रामायण, कालनिर्णय रामायण और गौण रामायण तथा अन्य धार्मिक साहित्य की खोज में जैमिनी भारत, सत्योपाख्यान, धर्मखंड, हनुमत्संहिता, बृहत्कोशल खंड के साथ-साथ परिशिष्ट में हिंदुत्व में उल्लिखित संस्कृत रामायणों का ब्यौरा दिया है। उन्होंने ललित साहित्य में रामकथा प्रकरण में रघुवंश, रावणवध (सेतुबंध) अथवा भट्टिकाव्य, जानकीहरण, अभिनंदनकृत रामचरित, रामायण-मंजरी तथा दशावतारचरित, उदार राघव, जानकी-परिणय, रामलिंगामृत, राघवोल्लास, रामरहस्य को खोज लिया तथा नाटकों में प्रतिमानाटक तथा अभिषेक नाटक, महावीरचरित तथा उत्तर रामचरित, उदात्तराघव, कुंदमाला, अनघर्राघव, बालरामायण, महानाटक, आश्चर्यचूडामणि और अप्राप्य प्राचीन नाटक, प्रसन्नराघव, उल्लाघराघव, गौण नाटक और उत्तरकालीन नाटक पर उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने स्फुट काव्यों में श्लेष-काव्य, नीतिकाव्य, विलोमकाव्य, चित्रकाव्य, श्रृंगारिक खंडकाव्य और अन्य स्फुट काव्य को भी खोजा। कथा साहित्य भी उक्त प्रकरण में जोड़ दिया। आधुनिक भारतीय भाषाओं में राम-काव्य के अंतर्गत तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ और आदिवासी कथाएँ-द्रविड़ भाषाओं में प्राप्त राम-कथा जैसे उपाध्याय बन गए। इससे सर्वविदित है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक यह ग्रंथ राम-कथा अनुसंधान की अमूल्य निधि बने तथा बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तथा इक्कीसवीं सदी के राम विषयक लोककाव्य और अन्यान्य ही नए अनुसंधाता और आलोचकों के लिए मार्गदर्शी।

भारत में मुगल शासन में उर्दू और फ़ारसी में

रामायण के अनुवाद भी प्रभावाध्ययन के स्रोत हैं। अकबर के अनुरोध पर अलबदायूनी द्वारा वाल्मीकि रामायण के पद्यानुवाद एक उदाहरण है। भारत के प्रत्येक राज्य में नेपाल, भूटान आदि में रामायण प्रस्तुतियों पर लिखना गागर में सागर भरने के समान है। केरल के उल्लेखनीय साहित्यिक अनुकूलन के रूप में हाल ही में आनंद नीलकंठन की अंग्रेज़ी रचनाएँ – Valmiki's Women (July 2021) रामायण की स्त्रियों पर विमर्श हैं, तो Asura : Tale of the vanquished (2013) रावण को मद्देनज़र रखकर रची अद्यतन रामायण इसकी कड़ी है। ये कदम ए. के. रामानुजन की दृष्टि का ही विस्तार माने जा सकते हैं। ऐसे अनेक प्रति रामायण और प्रस्तुतियाँ भारत में ही क्यों विश्व में कहीं गरम-गरम रोटी के रूप में बिक जाते हैं, उनका पुनरीक्षण करके भारत को सांस्कृतिक संकट से बचाना भी ज़रूरी है।

केरल में सहजतः "माप्पिलरामायण" (मुसलमानी रामायण) हसनकुट्टी पिरांतन (पगला) को सुनकर टी.ह्वेच. कुंजिरामन नंबियार ने इसे संपादित किया। एक शोध परियोजना में प्रो. एम.एन. कारश्शेरी ने इसका पहला संस्करण (जुलाई 22, 1976, 95-99) में और द्वि. सं. 1989 में, केरल मलयालम प्रकाशन के द्वारा निकाला। इसी के आधार पर जॉन रिचर्डसन के अनुवाद के साथ पौला रिचमैन के संकलन में इसे शामिल किया गया। वीरगीतों की परंपरा में केरल में कई सिद्धपुरुषों पर गायन, प्रत्येक समुदाय के गायकवृंद करते थे, वैसे ही प्रस्तुत गीत के उपक्रम में, इसे मुसलमानी सिद्धपुरुष औलिया के मुँह से निकला गीत बताया गया। 'रामायण' उनकी ज़बान में 'लामायण' बना। पहला अनुच्छेद, अंग्रेज़ी किताब से उद्धृत किया जा रहा है, मगर खेद की बात है कि मलयालम लोकगीतों का शब्दार्थ-ध्वनि-सौंदर्य कहाँ अंग्रेज़ी में अनुकूलित होगा? -

"The song that the bearded saint sang long ago, / The narrative song seen as this, our *Lamayana* / The song of our squatting idle, in our long wait through [the month of] *Karkadakam,* / The song we will croon, stopping our ears with our fingertips / The song of Dasharatha having married three women" (Richman, 2008, 195)

लामलामलामलाम (जिसे रामरामराम....के अनुकूलन से गीत प्रवेशक में, जो कई बार तुक लगाया जाता है), वही इसका मंगलाचरण है।

केरल की सबसे ज़्यादा जनजातियों की आवासभूमि, वयनाडु की रामायण-जनवादी परंपरा में डॉ. असीस तरुवना के द्वारा अडियरामायण और चेट्टिरामायण (एक पिछड़ी जनजाति और दूसरा पिछड़ी जाति की भेंट) की खोज हुई, जो रामायण के लौकिक अनुकूलन और प्रतिस्थापन हैं। ये जनजातियाँ जैसे दलित और पीड़ित हैं, वैसे ही उनकी प्रतिरक्षा देवियों के सामने मुकदमा चलाकर, राम के सीता त्याग को खंडित करते हुए, उन्हें दोषी ठहराने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। आज भी वयनाडु में कई स्थलनाम और आचारानुष्ठान, जंगली मूर्तियाँ व चिह्न, इन बातों की पुष्टि करने लायक हैं। जैसे भी हो, अन्यत्र इस पर गहन शोध हो सकता है। अस्तु,

निष्कर्ष

तुलसीदास के ही वचनों से इस प्रकरण को समाप्त करना समीचीन होगा –

"श्रोता वक्ता ग्याननिधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलि मल ग्रसित विमूढ़।।"

टिप्पणी :

1. "Few works of literature produced in any place at any time have been as popular, influential, imitated and successful as the great and ancient Sanskrit epic poem, the Ramayana," says Robert P Goldman, professor of Sanskrit and Indian studies, University of California, Los Angles.

Though India is the home land of the Ramayana it now belongs to the entire world and is a unique, social, cultural, spiritual, philosophical and literary treasure of the mankind – Arhter J Pais, ***Indian Epic, Universal Resonance,*** October 23, 2008, 23:28 IST . https://www.rediff.com/news/2008/oct/23ia.htm
2. Staff reporter, The Hindu, - 'Serious attention should be paid to Valmiki's Ramayana, Buddhist and Jaina versions'- Romila Thapar. Thursday 17 February 2011
http://www.hindu.com/2011/02/17/stories/2011021759721100.htm
3. https://cgimunich.gov.in/public_files/assets/pdf/The-Global-Encyclopaedia-of-the-Ramayana_full-Interactive.pdf (August 2020, Pp.179.)
4. Tulsidas (2011), *Sri-Ram-Charita-Manas: A Romanised edition with English Translation.* Gorakhpur, Geetha Press: second reprint. P. 45.
5. http://impressions.org.in/jul13/ar_skharitcv.html
6. *EPRA International Journal of Multidisciplinary Research (IJMR)* ISSN (Online): 2455-3662, Volume: 3 | Issue: 7 | July 2017, P. 86.
7. "For millennia since its authorship the tale has been told and re-told through poetry, dance-dramas, shadow puppetry, illustrations and more recently, film. While British Library's exhibition focuses on the seventeenth-century manuscripts, it also gives a sense of the diversity of the story's telling through film posters, illustrated ganjifa cards and sculptures." www.untoldlondon.org.uk/news/ART57739.html
8. फादर कामिल बलु के, 1962, राम-कथा : उत्पत्ति आरै विकास, प्रयाग, हिंदी परिषद प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, समर्पण, द्वितीय सं.पृ.8.
ल् वही, वही, परिशिष्ट, पृ. 751- https://twitter.com/IndEmbassyBru/status/1384836784899731457
9. August Schlegel (1767 - 1845), translator of the Rāmāyaṇa, is the first of the Indologists of the Bonn School. They are followed by Christian Lassen (1800 - 1876); Hermann Brockhaus (1806 -1877); Martin Haug (1827-1876); Theodor Aufrecht (1821 - 1907) and Hermann Jacobi (1850- 1937).
10. https://de.wisdomlib.org/definition/adbhutaramayana
11. https://www.todaytranslations.com/news/indian-epic-the-ramayana-translated-into-polish/
12. Ralph T H Griffith, 2008, The Ramayan of Valmiki. Release Date: March 18, 2008 [Ebook 24869]. Pp. 1960..
13. http://www.gutenberg.org/license
14. https://www.iccr.gov.in/cultural/incoming-cultural-delegations
15. https://ich.unesco.org/en/RL/ramlila-the-traditional-performance-of-the-ramayana-00110
16. Oliva, Roy, Exploring The Journey Of The Ramayana Across Different Cultures And Languages: A Critical Study Of A. K. Ramanujan's Three Hundred Ramayanas EPRA International Journal of Multidisciplinary Research (IJMR) | ISSN (Online): 2455 -3662 www.eprajournals.com Volume: 3 | Issue: 7 | July 2017, 87-88.
17. Paula Richman, compiled and ed: 2008, *Ramayana Stories in Modern South India: An Anthology*, Indiana University Press, Bloomington. Pp.

288.

18. Paula Richman.ed.(1991) *Many Ramayanas: The Diversity of a Narrative Tradition in South Asia;* (2001) *Questioning Ramayanas: A South Asian Traditio;* (2014) *Ramayana Stories in Modern South India: An Anthology on Anthology;* (2007)*The Crisis of Secularism in India;* (1998) *Women, Branch Stories, and Religious Rhetoric in a Tamil Budhist Text (Foreign and Comparative Studies, South Asian Series;* (2008) *Extraordinary Child: Poems from a South Indian Devotional Genre;* (2021) *Performing the Ramayan Tradition, Enactment, Interpretation and Argument.*
19. Dipali Madhur, 2015, *Making The Ramayana Relevant: Some Thoughts On Modern Adaptations In 21st Century America*, **International Journal of English Language Literature and Humanities,** Vol.II, Issue X, February, Pp. 199-209.
20. - http://www.ijellh.com
21. *Janasatha,* New Delhi, August 21, 2021. (report Washington 21 August (Bhasha). P.2.
22. Michel Madhusoodana Datta, 1861, Meghanath Badh-Kabya, transl. *The Slaying of Meghanada: A Ramayana from Colonial Bengal,* Clinton B. Sheely, 2004., OUP. &Michel Madhusoodana Datta, Meghanath Vadh, transl. (2010) *The Poem of the killing of Meghanad,* William Radice, , Penguin India.
23. *IJRAR- International Journal of Research and Analytical Reviews,* Volume 5, Issue 3 , July – Sept 2018, p.111 y.
24. गिरिराज किशोर, 1999, गिरमिटिया, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 903. http://www.abhivyakti-hindi.org/aaj_sirhane/2005/pahla_girmitiya.htm
25. Richman, Paula, 2001. *Questioning Ramayanas, a South Asian Tradition. Berkeley,* CA: university of California Press and New Delhi: Oxford university Press**Ways of Celebrating Ram's Birth,** - Paula Richman (19-01-2010.)
26. https://journal.equinoxpub.com/ROSA/article/view/11257
27. Countless Ramayanas: Language and Cosmopolitan Belonging in a South Asian Epic, June 2014, ASIANetwork Exchange A Journal for Asian Studies in the Liberal Arts 21(2):4
28. https://www.coursera.org/unimelb)-Australia,university
29. Cited in the book - Richman, Paula, editor.1991 *Many Ramayanas: The Diversity of a Narrative Tradition in South Asia.* Berkeley: University of California Press, 1991, 14.
30. http://ark.cdlib.org/ark:/13030/ft3j49n8h7/
31. Romila Thapar, **"The Ramayana Syndrome,"** *Seminar* , no. 353. a lecture at the 'Ramayana' festival, organised by the Adishakti Laboratory of Theatre Arts Research at Auroville, Puducherry (January 1989).
32. Richman, P. 2008. *Ramayana Stories in Modern South India: An Anthology*. Bloomington: Indiana University Press. Pp. 195-200..
33. Tulsidas (2011), *Sri-Ram-Charita-Manas: A Romanised edition with English Translation.* Gorakhpur, Geetha Press: second reprint. P. 41.

संदर्भ :

34. Bose, Mandakranta, ed: 2004, *The Ramayana Revisited*, OUP, New York.
35. Diwali,' 2005. 'Looking In, Looking Out: A Journey to the Source.' Episode 18. Di Rosen Productions for the South African Broadcasting Corporation. Transmitted 6 November.
36. Gandhi, M[ohandas] K. 1972 (1927 rprt). *An Autobiography or the Story of my Experiments with Truth*. Ahmedabad: Navajivan Publishing House.

— 1928. *Satyagraha in South Africa*. Ahmedabad: Navajivan Press.

37. Krishnamoorthy, K. 1993. *A Critical Inventory of Ramayana Studies in the World*. Delhi: Sahitya Akademi. 2 Vol.
38. Ludvik, C.1997. *Hanumān in the Ramayana of Valmiki and the Ramacaritamanasa of Tulsi Dasa*. Delhi: Motilal Banarsidass.
39. Pandit Radhesyam Kathavacak**,** 1960, ***Sriram-katha (Radhesyam Ramayan),*** Bareli: Sri Radhesyam Pustakalay.Pp.
40. Richman, P. 2008. *Ramayana Stories in Modern South India: An Anthology*. Bloomington: Indiana University Press. Pp. 288.
41. --2001. *Questioning Ramayanas, a South Asian Tradition*. Berkeley, CA:
42. University of California Press and New Delhi: Oxford university Press.
43. Roser Noguera Mas, 2008, *De Kosala A Bollywood: Dos Mil Años Contando Historias. Un Estudio Semiótico Del Ramayana,* Universidad de Valencia. Pp.606.
44. उद्धृत सीपीवी, विजयकुमारन, 2012 रामचरितमानस और सांस्कृतिक अनुवाद, नई दिल्ली, सार्थक प्रकाशन, पृ. 96.
45. सुधाकर पांडेय संपा. 1972 रामचरितमानस : साहित्यिक मूल्यांकन, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 49.
46. वाद्ले, सूसन एवं. राममूर्ति, प्रीति, संपा, 1995, Spotlight on Ramayana: An *Enduring Tradition,* New York, American Forum for Global Educaiton.
47. Vinay Dharwadker, E. G., Gen. (Ed), 1999. *The Collected Essays Of A. K. Ramanujan*, Oxford University Press. Pp. 329.

थीसिस :

Roser Noguera Mas & Dra. Antonia Cabanilles Sanchis, *De Kosala A Bollywood: Dos Mil Años Contando Historias. Un Estudio Semiótico Del Ramayana*, VALÈNCIA, Universitat De València, 2007.(print)

फादर कामिल बुल्के 1950. राम-कथा : उत्पत्ति और विकास, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, द्वितीय संस्करण 1962. पृ. 856..

आलेख सार:

International conference on Tulsidas and his Works, Miami, Florida, USA, November 26-28, 1999.

विश्वजाल एवं ई सामग्री

Abhay Kumar Roy, July 13, 2018, **Retelling the Ramayana: Meghnadbadh Kabya and the Dawning of a National Consciousness,** *IJRAR- International Journal of Research and Analytical Reviews,* Volume 5, Issue 3 , July – Sept 2018. http://ijrar.com/

Artforum International Magazine Inc. 1995, (Artforum v.33, n.7 (March, 1995:80-84)

The Course on Many Ramayana, Australia, University of Melbourne cited: *https://www.coursera.org/unimelb*

Roy, Oliva. (2017), *Exploring The Journey Of The Ramayana Across Different Cultures And Languages: A Critical Study Of A. K. Ramanujan's Three Hundred Ramayanas, EPRA International Journal of Multidisciplinary Research (IJMR)* ISSN (Online): 2455-3662, Volume: 3 | Issue: 7 | July 2017, 87-88.

Hakim, Rafadi, *Countless Ramayanas: Language and Cosmopolitan Belonging in a South Asian Epic* ASIANetwork Exchange | *Spring* 2014 | volume 21 | 2.

Ramayana in Different Countries, cited: *lordrama.co.in/ramayana-in-different-parts-of-the-world.html*

Tehelka. 2011 *"**Ramayana Ruckus: Which Version of the 'Ramayana' would Ram Read?"*** Edited by Arpit Parashar and Viswajoy Mukherjee. October 24.. *https://communalism.blogspot.com/2011/10/which-version-of-ramayana-would-ram.html*

Samhita Arni, 2011 *The Many True Kandas***,** Oct 23 2011, 03:30 hrs New Delhi: *https://communalism.blogspot.com/2011/10/ramayaana-is-continuing-many-sided.html*

Philip Lutgendorf, 2007 *Hanuman's Tale: The Messages of a Divine Monkey*. New York: Oxford University Press, Pp 434. .

https://www.cambridge.org/core/journals/journal-of-asian-studies/article/abs/hanumans-tale-the-messages-of-a-divine-monkey-by-philip-lutgendorf-new-york-oxford-university-press-2007-xiv-434-pp-12500-cloth-3000-paper/A20739BAB61518064F80D45BCDA5586E

E. G., Vinay Dharwadker & A. K. Ramanujan, *The Collected Essays of A. K. Ramanujan*, *Journal of the American Oriental Society* 121 (3):537 (2001)

http://impressions.org.in/jul13/ar_skharitcv.html

www.untoldlondon.org.uk/news/ART57739.html

www.hindustantimes.com/StoryPage/StoryPage.aspx?sectionName=& id=e625c..

www.nagamas.co.uk/content/view/29/23/

www.blackcat-theatre.co.uk/Ramayana.html

www.goldenpages.com/hotspots/rama/rama.htm

http://www.sacred-texts.com/hin/rama/index.htm (2-03-07).

http://www.sacred-texts.com/hin/dutt/index.htm (01-23-07).

hindi.vijay@gmail.com

मॉरीशस में महिला साहित्यकार और उनका लेखन

- डॉ. नूतन पाण्डेय
नई दिल्ली, भारत

हिंदी भाषा एवं साहित्य के संरक्षण, संवर्धन और सृजन में भारतीय डायस्पोरा देशों में मॉरीशस ने सर्वाधिक समृद्ध और संपन्न देश के रूप में अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति दर्ज की है। मॉरीशस की आधी से अधिक जनसंख्या भारतवंशियों की है, जिनका इस द्वीप पर औपचारिक रूप से प्रवासन सन् 1834 से प्रारम्भ होकर 1926 तक चलता रहा। सामूहिक प्रवासन की इस प्रक्रिया में लगभग साढ़े चार लाख भारतीयों का गिरमिटिया मज़दूरों के रूप में आगमन हुआ, जिनमें से अधिकांश मज़दूर उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्त से आए थे और इनकी मातृभाषा भोजपुरी थी। कठिन संघर्ष भरे दिनों में इन मज़दूरों ने अपने साथ लाई हुई, अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर- मानस, चालीसा, आल्हा, रामायण, महाभारत आदि की कहानियों से प्रेरणा लेकर अपने आत्मबल का विस्तार किया। इन मज़दूरों के सामने एक ओर अपनी अस्मिता और संस्कृति के संरक्षण का सवाल था, वहीं अपनी भाषा के संवर्धन का प्रश्न भी अहम् था।

भाषा-संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन के प्रयास में गिरमिटिया मज़दूरों ने अपनी मातृभाषा भोजपुरी को जिसे अपमान सूचक रूप में मोटिया भाषा भी कहा जाता था, अपने सुख-दुख की अभिव्यक्ति का मौखिक उपकरण बनाया। लगभग अठारहवीं शती तक यही भोजपुरी भाषा इन मज़दूरों के लिए परस्पर सांत्वना का माध्यम बनती रही और भोजपुरी लोकगीतों, कहानियों आदि के रूप में सम्पूर्ण द्वीप पर फैलती रही। यह किसी के लिए भी गर्व का विषय हो सकता है कि हेय दृष्टि से देखी जाने वाली भोजपुरी का लोक साहित्य न केवल सांस्कृतिक विरासत के रूप में अपना महत्त्व रखता है, बल्कि यह एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी है, जो मज़दूरों पर अतीत में हुए अत्याचारों की गवाही के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी साथ चलता रहा है। यह वह समय था जब साहित्यिक कृतियों का अभाव तो रहा, लेकिन कैथी लिपि में लिखी जाने वाली भोजपुरी जनमानस में न केवल अपनी पैठ बनाए रही, बल्कि आत्मसम्मान और गर्व का प्रतीक भी रही। तात्विक दृष्टि से अठारहवीं शती तक का समय भारतीयों के लिए रोज़ी-रोटी की चिंता और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष का समय था, बावजूद इसके इन भारतीय मज़दूरों ने अपनी भाषा और संस्कृति को कमज़ोर नहीं पड़ने दिया। समय के साथ-साथ स्थितियाँ बदलीं और भारतीयों ने अपनी मेहनत और आत्म-विश्वास के बल पर मॉरीशस द्वीप को विश्व मानचित्र पर पहचान दिलाई। अब भारतीय मज़दूरों ने धीरे-धीरे अपनी दैनिक आवश्यकताओं से ऊपर उठकर सोचना शुरू किया और सामाजिक चेतना को जागृत करने के साथ ही अपनी बौद्धिक क्षमताओं को भी विकसित करना प्रारंभ किया।

मॉरीशस के भारतवंशियों में अशिक्षा और सामाजिक कुरीतियों का परिष्कार करके, नवजागरण का संचार करने और उनमें आत्मबल उत्पन्न करने में कई कारक महत्त्वपूर्ण रहे। इनमें महात्मा गांधी का मॉरीशस में अल्प प्रवास, आर्य समाज की स्थापना और सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से दयानंद सरस्वती के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार उल्लेखनीय कहा जा सकता है। इसी बीच एक और महत्त्वपूर्ण घटना रही, जिसकी चर्चा करना यहाँ आवश्यक है और वह है महात्मा गांधी द्वारा मॉरीशस भेजे गए पेशे से वकील मणिलाल डॉक्टर द्वारा सन् 1909 में हिन्दुस्तानी पत्रिका का प्रकाशन। यह पत्रिका

गुजराती और अंग्रेज़ी के साथ ही खड़ी बोली हिंदी में भी छपती थी। इस पत्रिका ने मॉरीशस में खड़ी बोली के प्रयोग को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दुस्तानी पत्रिका के माध्यम से ही शोषित, पीड़ित और उपेक्षित लोगों को स्वयं को अभिव्यक्त करने की प्रेरणा मिली, अपने भावों को शब्द देने का माध्यम मिला, शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने का संबल मिला और एक-दूसरे के साथ स्वयं को साझा करने का अवसर भी मिला। इसी पत्रिका में सन् 1913 में छपी 'होली' कविता को साहित्यिक दृष्टि से प्रथम उपलब्ध कविता का गौरव प्राप्त हुआ। तब से लेकर आज तक मॉरीशस में हिंदी की कलम सतत् गतिवान और सक्रिय बनी हुई है। हिंदी प्रेमियों के लिए यह प्रसन्नता का विषय है कि मॉरीशस में साहित्य की विभिन्न विधाओं - कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, गद्य क्षणिका, यात्रावृत्तान्त, संस्मरण आदि में उच्चकोटि का वैविध्यपरक और स्तरीय साहित्य रचा जा रहा है।

एक शतक से भी अधिक का समय पूर्ण करने वाली साहित्यिक यात्रा के इस क्रम में अनेक साहित्यकार सामने आए, जिन्होंने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर न केवल अपनी पहचान बनाई, बल्कि मॉरीशस साहित्य को भी वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित किया। प्रह्लाद रामशरण ने अपनी पुस्तक मॉरीशस में हिंदी साहित्य का परिदृश्य में सन् 1908-2018 के मध्य लगभग सवा सौ भारतवंशी साहित्यकारों की 506 पुस्तकों के प्रकाशन का उल्लेख किया है। (पृष्ठ -1) जब साहित्यकारों की इस लम्बी श्रृंखला की बात की जाती है, तब आश्चर्यजनक रूप से यह तथ्य भी सामने आता है कि इन साहित्यकारों में महिला साहित्यकार कुछ ही हैं, जिनके नाम उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। साहित्य लेखन के प्रति महिला साहित्यकारों की उदासीनता निश्चित ही चिंता और चिंतन का विषय है, जिसपर मॉरीशस के प्रबुद्ध साहित्यिक वर्ग को गंभीरता से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है। इस संबंध में मॉरीशस के वरिष्ठ साहित्यकार भी महिलाओं की अपेक्षित साहित्यिक भागीदारी न होने से निराश और चिंतित हैं। शोध आलेख तैयार करते समय महिला साहित्यकारों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए मॉरीशस के साहित्येतिहास संबंधी उपलब्ध कुछ पुस्तकों का अध्ययन किया गया और उन सन्दर्भों के आधार पर जिन उल्लेखनीय महिला साहित्यकारों की प्रकाशित रचनाएँ सामने आईं उनको विधागत यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है; ताकि मॉरीशसीय साहित्य पर शोध करने वाले अनुसंधित्सुओं और अध्येताओं को सहायता मिल सके।

सबसे पहले बात करें महिला कथा साहित्यकारों की, तो उनमें निर्विवाद और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम आता है, स्व. श्रीमती भानुमती नागदान का। गुजराती मूल की लेखिका भानुमती नागदान अपनी विशिष्ट रचनाधर्मिता के कारण मॉरीशस के कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कहानियों के अतिरिक्त भानुमती जी ने दृश्य-श्रव्य माध्यमों के लिए अनेक एकांकियों की रचना की है। उनकी कहानियाँ और एकांकी भारत और मॉरीशस की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाते रहे हैं। सन् 1981 में इनका "मिनिस्टर" नाम से सत्रह कहानियों का एक संकलन प्रकाशित हुआ, जिसने इन्हें एक कथाकार के रूप में देश भर में प्रतिष्ठित किया। भानुमती नागदान की कहानियाँ मॉरीशसीय समाज का प्रतिबिम्ब कही जा सकती हैं। भानुमती जी सामाजिक जीवन में गहरी पैठ रखती हैं और इसी सामाजिक संबद्धता के कारण उनके जीवनानुभवों में सूक्ष्मता और व्यापकता दृष्टिगोचर होती है। भानुमती जी ने अपनी कहानियों में परिवार और सामाजिक मूल्यों को आधार बनाया है और दाम्पत्य संबंधों, स्त्री-पुरुष प्रेम, विवाहेत्तर सम्बन्ध, पारस्परिक अहम्, आंतरिक द्वंद्व, मानसिक संत्रास और नारी मनोविज्ञान को प्रधानता दी है। 'अनुबंध' उनकी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानी है, जिसमें प्रेमी और पति के प्रेम के मध्य विभाजित एक ऐसी नारी के मन का चित्रण किया गया है, जो अंतर्द्वंद्व से ग्रसित है। कभी वह सोचती

है कि प्रेमी स्वप्निल के साथ नए जीवन की शुरुआत करे और कभी वह सोचती है कि अपने पति और बच्चों के रहते इस तरह का कदम उठाना धर्मसंगत नहीं। कहानीकार ने नायिका के इस पशोपेश को बहुत ही स्वाभाविक और ख़ूबसूरत ढंग से अभिव्यक्त किया है। कहानी के अंत में लेखिका द्वारा प्रेमी स्वप्निल द्वारा कहलाया गया यह कथन जहाँ पाश्चात्य नारियों की तुलना में भारतीय नारियों की महानता का परिचय देता है, वहीं उनके पातिव्रत्य धर्म की श्रेष्ठता को भी व्यक्त करता है : "आज मैं समझ चुका हूँ कि पश्चिम की लड़कियाँ सिर्फ़ लेना जानती हैं, देना नहीं, प्रेम उनके लिए वासना है, मनोभाव नहीं। हमारे देश की नारी महान है। वह अपने को मिटा देती है, पर दूसरों पर आँच नहीं आने देती।" इसी सूत्रवाक्य के साथ नायिका की मानसिक उलझन भी समाप्त हो जाती है।

भानुमती जी की अधिकांश कहानियाँ चाहे वह 'कर्तव्य' हो, 'बुझ गया दीपक' हो, 'परिवर्तन' हो, 'आत्म समर्पण' हो, 'एम.बी.ई' हो या 'ज़ख्म का चिह्न' आदि, सभी में लेखिका के सामाजिक सरोकार संपृक्त हैं। भानुमती जी दैनिक जीवन की घटनाओं से कथ्य और पात्रों को उठाकर अपनी कहानियाँ बुनती हैं, अपनी कथ्यात्मक दक्षता के बल पर उन्हें सरल भाषा में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टि से उनकी 'मिनिस्टर' कहानी खास मायने रखती है। देश की राजनीति पर मारक ढंग से प्रहार करती उनकी यह कहानी सत्ताधारियों के कुत्सित और भ्रष्टाचारी मनोवृत्तियों का पर्दाफ़ाश करती है। यह सर मोहन दास नामक एक ऐसे मिनिस्टर की कहानी है, जिसके परिवार ने उसके मिनिस्टर होने तक तो उसका खूब दोहन किया, लेकिन मंत्रीपद चले जाने के बाद उसका साथ छोड़ दिया। जब वह अपने गाँव जाता है, तब वहाँ पहुँचने पर उसे ग्राम की दुर्दशा का अहसास होता है, जहाँ न पानी है, न बिजली है, न स्कूल है, न अस्पताल है और न जीने की अन्य सुविधाएँ ही हैं। तब उसे अपनी गलती का अहसास होता है कि मंत्री रहते उसने अपने गाँव और देश के लिए कुछ नहीं किया। कहानी के माध्यम से भानुमती जी ने देश की राजनीति के यथार्थ का वस्तुपरक चित्रण किया है। उनकी 'ज़ख्म का चिह्न' कहानी नारी के अपने प्रेम के प्रति समर्पण को व्यक्त करती है। सुधा के प्रेमी अजनेश मोटर दुर्घटना में मारे जाते हैं, दुर्घटना में सुधा के माथे पर बना ज़ख्म का चिह्न उसे सदा अपने प्रेम की याद दिलाता रहता है, इसी कारण वह अन्य किसी के साथ अपने जीवन में आगे नहीं बढ़ पाती है - "यही चिह्न मेरे जीवन का सहारा बन गया है, ये मेरे अपने अजनेश के प्रेम की निशानी है जो मेरे ललाट पर बिंदिया बनकर चमक रही है। मैं इसे नहीं मिटा सकती। कभी नहीं मिटाऊँगी।" नारी के उदात्त प्रेम का ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। पारिवारिक और सामाजिक विषयों के अलावा नागदान जी ने देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, कुरीतियों और अव्यवस्थाओं पर न केवल असंतोष व्यक्त किया है, बल्कि उस पर तीक्ष्ण व्यंग्य भी किया है। 'एम. बी. ई.' कहानी का एक उद्धरण देखें, जिसमें एम. बी. ई. सम्मान प्राप्त व्यक्ति की समाज से उत्पन्न हताशा को बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त किया है - "एम.बी ई. होना या एम.बी. सी होना सभी कुछ एक बड़ा धोखा है, समाज का एक बड़ा झूठा तमाशा है, जो सही है वह है इंसानियत, कपड़ा, रोटी और एक-दूसरे के प्रति प्रेम, परन्तु यह वस्तु मैडल में नहीं मिलती और अब तो यदि यह एम.बी.ई का मैडल कोई रुपयों में खरीद लेता, तो मैं अपना इलाज इससे करा लेता ... और यह भी कि : एक बात का मुझे अनुभव था कि यदि कोई काम जल्द से जल्द किसी ऑफ़िस में करवाना हो, तो वह अंग्रेज़ी झाड़ने से हो जाता है।" 'दोस्ती' कहानी में पति द्वारा पत्नी पर किये गए अत्याचारों के माध्यम से लेखिका एक तरह से नारी विमर्श को जन्म देती है और पुरुष समाज द्वारा नारियों पर हो रहे शोषण के खिलाफ़ मुखरता से अपनी बात भी रखती हैं। भानुमती नागदान की एक ख़ास विशेषता है जो उन्हें अन्यों से अनन्य बनाती है, वह है, उनकी सरल भाषा और मारक शैली। अपने इस सशक्त उपकरण से वे कुछ इस प्रकार कहानी का वातावरण तैयार करती हैं कि पाठक अभिभूत

होकर रह जाता है।

भानुमती नागदान के अलावा एक और महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं पुष्पा बम्मा। यूँ तो स्वतंत्र रूप से इनका कोई कहानी-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है, लेकिन समय-समय पर प्रकाशित विभिन्न संकलनों में इनकी कहानियाँ छपती रही हैं। पुष्पा बम्मा की कहानियाँ विविधवर्णी हैं, जो मानव-जीवन के विविध पक्षों को उजागर करती हैं। सन् 1987 में महात्मा गांधी संस्थान द्वारा प्रकाशित कहानी-संकलन में पुष्पा बम्मा की 'फिसलन' नामक कहानी प्रकाशित हुई थी, जिससे मॉरीशस के साहित्य जगत में वे प्रतिष्ठित हुईं। 'फिसलन' कहानी एक ऐसे बेरोज़गार युवक की कहानी है, जो जीवन के विभिन्न पड़ावों पर मानसिक संत्रास से गुज़रता रहता है। इसी मानसिक दुर्बलता की वजह से वह कहीं भी स्थिर नहीं हो पाता और जीवन पर्यंत भटकता रहता है। उसे अपनी इस दुर्बलता का अहसास होता है और वह सोचता है कि – "हालाँकि वह सागर पार कर आया है फिर भी उसने अपनी ज़िंदगी में एक पग भी नहीं उठाया है, वह केवल फिसलता आ रहा है।" लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। सन् 1976 में अभिमन्यु अनत द्वारा संकलित "मॉरीशस की हिंदी कहानियाँ" में बम्मा जी की 'ए .के. सीस' कहानी प्रकाशित हुई, जो शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। इस कहानी में कारखाने में काम करने वाली महिलाओं के कठिन जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। कारखाने में काम करने से इन महिलाओं का जीवन भाव-शून्य और मशीनवत बन जाता है। कारखाने में काम करना इनकी मजबूरी है और उसमें ढल जाना इनकी विवशता। इसी प्रकार 'रीते इंसान' नामक कहानी में बम्मा जी ने अभावग्रस्त बल्लो के त्रासद जीवन को विषय बनाया है, जो आर्थिक रूप से बहुत ही कमज़ोर है, जिस कारण वह विवाह नहीं कर पाता। कहानी का अंत मार्मिक है, जहाँ बल्लो अपनी शादी के लिए इकट्ठे किये गए सामान को पैसे के लिए बेच देता है और विवाह न करने का निर्णय लेता है। (कामता कमलेश द्वारा संपादित - मॉरीशस का कथा साहित्य - 1982) इस प्रकार बम्मा जी ने समाज में व्याप्त विषमताओं को बारीकी से चित्रित किया है। कहानियों के अतिरिक्त पुष्पा बम्मा द्वारा कई एकांकी भी लिखे गए हैं। उनका 'ओ.बी.ई.' एकांकी खास चर्चित रहा था, जिसमें उन्होंने झूठी शान दिखाने वालों की मानसिकता पर कुठाराघात किया है।

सुनीति अलियार संभवत: मॉरीशस की वह महिला साहित्यकार हैं, जिन्हें प्रथम कहानी-संग्रह प्रकाशित करवाने का गौरव प्राप्त है। इनका कहानी-संग्रह "दो शरीर एक आत्मा" नाम से प्रकाशित हो चुका है, जिसमें इनकी 'दो सहेलियाँ', 'धोखा', 'मेरी प्यारी भाभी', 'प्रभु का भोग', 'पूजा के फूल', 'आत्मा की पुकार', 'अपना घर', 'भाग्यवान बालक', 'मोहब्बत की दास्तान' और 'दो शरीर एक आत्मा' नामक दस कहानियाँ संकलित हैं। लेखिका ने प्रेम, पारिवारिक संबंधों की दरकन, वैवाहिक असंतोष जैसे सामाजिक विषयों को केंद्र में रखकर कहानियाँ लिखी हैं। दुर्भाग्यवश लेखिका के उपर्युक्त कहानी-संग्रह के पश्चात् कोई अन्य प्रकाशित रचना सामने नहीं आई।

साहेबा बीबी फर्ज़ली एक अन्य ख्यातिनाम कहानीकार हैं, जो हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में साधिकार लिखती हैं। साहेबा बीबी फर्ज़ली की कहानियाँ विभिन्न संकलनों में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। इनकी अधिकांश कहानियाँ मुस्लिम परिवेश को लेकर लिखी गई हैं। इन कहानियों में मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों और नारी पर होने वाले अत्याचारों का मार्मिक वर्णन किया गया है। नारी किसी भी धर्म और समाज की हो, उसका शोषण हमारे समाज की प्रथा बन चुका है। 'मिन्नत' शीर्षक कहानी का कथ्य नारी-जीवन की विवशताओं और उससे जूझने की जद्दोजहद को दिखलाता है। 'दर्द' नामक कहानी में बीबी फ़र्ज़ली ने मुस्लिम परिवार की एक मासूम बालिका के कोमल मनोभावों का चित्रण किया है, जो अभी बहुत नादान है। मृत्यु जैसे शाश्वत सत्य को समझने की उसकी उम्र नहीं है, लेकिन परिवार में हुई मृत्यु के पश्चात्

बालिका उस सत्य को किस तरह से देखती है, इसका बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण कहानी की खासियत है। एक प्रसंग देखें - "बेगम एक चिकनी मिट्टी और पानी से बड़े के नमूने तैयार करके धूप में सुखाने के लिए उसे रसोई की एक ला-इस्तेमाल पुरानी थाली पर कतारों में सजा रही थीं। उस बड़े के नमूने सूखने पर वह अपने झगले को पीछे से उठाकर दुपट्टे की तरह अपने सर पर ओढ़ लेगी और चीनी दुकानों के बरामदे में मिठाई बेचने वाली उस मोटी बुढ़िया का अनुकरण करती हुई कहेगी - गातो पिमा शो-शो!" यथार्थ से उपजी इन कहानियों का बेहतरीन शिल्पगत ट्रीटमेंट कहानियों को और भी प्रभावी बना देता है। भाषा और शिल्प साहेबा बीबी फर्ज़ली की कहानियों का सबल पक्ष है। फ़र्ज़ली बीबी की 'जंगल की राजदुलारी' नामक बालकथा भी प्रकाशित हो चुकी है।

इन कथाकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य महिला साहित्यकारों ने भी कहानी के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाई है और इनकी कहानियाँ विविध संकलनों और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख लेखिकाओं की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं : अनीता ओजायेब की "मैं कौन हूँ" ("मॉरीशस की कहानियाँ", संकलन-राजेन्द्र अरुण 1986), रानी रामसहाय की 'जयतु जय हिंदी', जिसमें उन्होंने हिंदी के पठन-पठन और शिक्षण की उपादेयता दिखाई है (कामता कमलेश द्वारा संपादित - "मॉरीशस का कथा साहित्य",1982), मीता दिगपोल की 'लीला की शांति' और नर्मदा धनुकचंद की 'प्रतीक्षा' ("नन्हें दीप" - 1974 में प्रकाशित), शोभना देसाई की शहनाई ("सुरभित उद्यान" मॉरीशस हिंदी लेखक संघ द्वारा 1973 में प्रकाशित कहानी-संग्रह), शीला रामनाथ की 'बालकथा - एक था खरगोश', चम्पावती बम्मा की जीवन रेल और मनस्विनी, सीता रामयाद की 'घनचक्कर', केश्री कुमारी रागपत की 'शराबी की बहु' एकांकी (सात रंग एकांकी, संपादक महेश रामजियावन 1986 में) आदि-आदि।

काव्य विधा में कई कवयित्रियाँ हैं, जिनमें से कुछ ने अपने काव्य संकलनों और कुछेक ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अपनी कविताओं से पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। सुमति बुधन महिला कवयित्रियों में लोकप्रिय नाम है, जिनकी कविताओं का संकलन "दस्तक" नाम से सन् 1998 में प्रकाशित हुआ था और मॉरीशस के साहित्य जगत में खासा चर्चित भी रहा था। सुमति बुधन आधुनिक भावबोध युक्त संवेदनशील कवयित्री हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं में मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दी है। नौशेरा का यात्री गांधी जी पर लिखी इनकी प्रसिद्ध कविता है। अपनी कविता को स्त्री मन से जोड़कर सुमति जी ने अपनी कविताओं को एक सुदृढ़ धरातल देने के साथ ही भाषा की सबलता और शिल्प की गहनता से कविता की एक खास मनोभूमि तैयार की है। सुमति जी की कविताएँ अपनी अभिव्यक्ति के अनूठे अंदाज़ के कारण जानी जाती हैं और कवयित्री की यही विशिष्टता उन्हें सब से अलग बनाती है। उनकी कविता के कुछ अंश देखें :

"इस अंधेरे में पस्त होकर..
जब मैं शाम को घर की दहलीज़ पर पैर रखती हूँ तो....
मेरे कलेजे का वह हिस्सा
जो हर रोज़ मैं काटकर रख जाती हूँ
पिघल गया होता है।"

राजवंती अजोध्या मातादीन "नेहा" भी मॉरीशस की जानी-पहचानी कवयित्री हैं, जिनका कविता-संग्रह "सिंदूरी माँग" नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में इनकी 47 कविताएँ हैं, जिनका मूल स्वर प्रेम है। राजवंती जी प्रेम को जीवन की सर्वोच्च उदात्त भावना मानती हैं। ऐसा प्रेम, जो लौकिक न होकर, पारलौकिक है, भौतिक न होकर, आध्यात्मिक है, सांसारिक न होकर, ईश्वरजन्य है। इनकी कविताएँ छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के रहस्यवाद से प्रेरित प्रतीत होती हैं। इस मंदिर का दीपक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

"मेरे मन मन्दिर का यह दीपक जलने दो,

इसमें है विश्वास सहजता से पलने दो,
पीड़ा का हिमखंड इसे धीरे-धीरे गलने दो,
मेरे मन मंदिर का यह दीपक जलने दो।"

केश्नी कुमारी रागपत भी मॉरीशस की सुपरिचित हस्ताक्षर हैं, जिनका "वीणा वादिनी" काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इसमें इनकी इक्कीस कविताएँ संकलित हैं। इनकी कविताओं का मूल दर्शन सर्वात्मवाद, निराकार ब्रह्म की उपासना और जीवन सत्य की खोज है। छायावादी कवियों के समान ही इन्होंने अपनी कविताओं में सुकोमल और तत्सम शब्दावली का प्रचुरता से प्रयोग किया है। भाषा पर कुशल अधिकार होने के कारण छंद और लयबद्धता इनकी कविताओं की प्रमुख खासियत है। कविता पाओगे प्राण मुझे तुम ही कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें :

"पाओगे प्राण मुझे तुम फिर/प्रकृति चादर से ढकी पड़ी/
टूटेगा जब मधु-मय बंधन/करोगे करुण रोदन क्रंदन /
फूटेगा नयनों से मनुहार/मिटेगा जब मेरा लघु संसार"

कवयित्री के रूप में एक उल्लेखनीय नाम है - कल्पना लालजी, जो लगभग चार दशकों से भी अधिक समय से साहित्य की विभिन्न विधाओं में सतत लेखन कर रही हैं। कल्पना लालजी मॉरीशस की एक सुपरिचित हस्ताक्षर हैं और मॉरीशस के साहित्यिक परिदृश्य में कल्पना लालजी का लम्बे समय से हस्तक्षेप रहा है। कल्पना लालजी के अभी तक दो खंडकाव्य और चार कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपके साहित्य का मूल स्वर यूँ तो कविता है, लेकिन आपकी कहानियों का संकलन 'अपराजिता' शीघ्र प्रकाश्य है। कल्पना लालजी की सृजन-प्रक्रिया विशुद्ध भावात्मक रही है। आपका जन्म भारत के मेरठ प्रान्त में हुआ और विवाह के पश्चात् आप मॉरीशस की स्थाई निवासी हो गईं। शुद्ध रूप से भारतीय संस्कृति की पोषक होने के कारण, उनकी समस्त काव्यकृतियों में उसका प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। इनकी कविताएँ अपने जीवनानुभवों और अनुभूति की सहजता के कारण विशिष्ट हैं। ये संवेदनशील कवयित्री हैं जिनकी कविताएँ भारत और मॉरीशस दोनों की सुगंध से सुवासित हैं। आपके काव्य के व्यापक फलक में आधुनिक मॉरीशस के निर्माता सर शिव सागर रामगुलाम भी आते हैं। अमर प्राइम की कथा प्रस्तुत करने वाले पॉल और विर्जिनी भी हैं, बालकों की खट्टी-मीठी मुस्कानें भी हैं, माँ की अविस्मरणीय यादें भी हैं, जीवन के विविध पहलुओं को समेटे आईना ज़िंदगी का भी है। कल्पना लालजी की कविता अनुभूति से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने हृदय की जिन अनुभूतियों को अपने शब्दों के माध्यम से प्रस्फुटित किया, वह उनके साहित्य का वैचारिक आधार-स्तंभ है। कविता के कथ्य से लेकर भाषिक परिपक्वता और शिल्पगत कौशल द्वारा आपकी कविता एक नई ऊँचाई को प्राप्त करती है। सरलता और भाव-प्रवणता कल्पना जी की कविताओं का गुण है, जिसके कारण ये कविताएँ वर्ग विशेष की कविताएँ न रहकर, सर्वजन प्रिय हो जाती हैं। सामान्य पाठक भी उनकी कविताओं के साथ भावजगत पर तादात्म्य स्थापित करके, खुद को एकाकार कर लेता है। भावनाओं के एक समान तंतु को रचकर, वे बड़ी सहजता से पाठक के साथ अपना सीधा संवाद स्थापित कर लेती हैं। माँ के लिए लिखी गई उनकी कविताएँ माँ के प्रति भावनाओं के सागर में उमड़तीं-घुमड़तीं वे लहरें हैं, जिनमें पाठक खुद को डूबता-उतराता महसूस करता है। उनकी 'आईना ज़िंदगी का' कविता-संग्रह से एक उदाहरण देखें –

"क्या सोचा था तुमने हर बार की तरह
तोड़ दोगे, मरोड़ दोगे
जैसे चाहो फिर जोड़ दो
इसलिए कि मैं एक औरत हूँ"

ज़मीनी यथार्थ से जुड़ी उनकी कविताएँ तेरी-मेरी, हर घर की कहानी कहती हैं। जीवन के विभिन्न पड़ावों पर आने वाले सुख-दुख, सुख के साथ खुशी और दुख से पार पाने की संभावना कल्पना लालजी बहुत ही रोचकता से बुनती हैं।

मॉरीशस के प्रारंभिक काल की एक और कवयित्री

हैं - गायत्री देवी। इनकी कविताएँ तत्कालीन समय की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं, जो इनके कवि हृदय का परिचायक हैं। इनकी खासी चर्चित एक कविता है - 'वेश्या नाच का नतीजा'। इस कविता के माध्यम से इन्होंने उस पुरुषवर्ग की निंदा की है, जो विवाहित होने के बावजूद वेश्या गमन करते हैं :

"परिपूरण पाप के कारन से, भगवंत कथा न रुचे जिनको,
सो एक नारी बुलाय कई, नचावत है दिन रैननि को,
मिरदंग कहै धिक् है धिक् है, मंजीरा पूछे किनको किनको ,
तब पातुरी हाय बताय कहे, इनको इन पापिन को"

इसके अतिरिक्त धनवंती ईसरसिंह का "काव्य-आभा" (2005, स्टार से प्रकाशित) और श्रीमती भाग्यवती गयासिंह का "विवाह मंगल गायन" भी उल्लेखनीय काव्य-संग्रह हैं।

"आदि काव्य कानन" ग्रन्थ में तीस फुटकर कविताएँ हैं, जिनमें एक महिला कवयित्री पार्वती देवी को भी स्थान मिला है। पार्वती देवी इस देश की प्रथम महिला रचनाकार हैं, जिन्होंने सामाजिक बुराइयों को लेकर, विशेषकर नारी उत्थान के प्रश्न के माध्यम से साहित्य में प्रवेश किया था (प्रह्लाद रामशरण - मॉरीशस में हिंदी साहित्य का परिदृश्य पृष्ठ-30)

इधर एक सुखद अहसास की तरह कई नवोदित महिला कवयित्रियाँ सामने आ रही हैं जो धीरे-धीरे काव्य जगत में अपना स्थान सुनिश्चित करते हुए भविष्य की अनेक संभावनाओं को जन्म दे रही हैं। इनमें सविता तिवारी, देबिना आचार, अंजलि हजगैबी-बिहारी, लक्ष्मी जयपोल, अंजू घरभरन आदि कुछ उल्लेखनीय नाम हैं। ये कवयित्रियाँ भाव-बोध में भले ही अपनी पुरानी पीढ़ी से साम्य रखती हों, लेकिन शिल्प और भाषा की दृष्टि से ये अपनी पूर्ववर्ती कवयित्रियों से कहीं अधिक सक्षम और प्रभावी ढंग से स्वयं को अभिव्यक्त कर रही हैं। साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाली सविता तिवारी की आज की नारी को समर्पित कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए, जो अपने सशक्त भाव और शिल्प के कारण आश्वस्ति का भाव पैदा करती हैं :

अग्नि मैं पावक भी मैं ही, मैं अनिल भी आग भी मैं
जब जली हूँ लोकहित तो लोहड़ी मैं फाग भी मैं
मैं जली हूँ युद्ध भू में, सतियों का श्रृंगार भी मैं
तेज हूँ तेजस धरा का और जठर की आग भी मैं

मॉरीशस में भोजपुरी पूर्वजों की भाषा के रूप में सम्मानित और श्रद्धेय है। यह वह भाषा है, जिसे लगभग 200 वर्ष पूर्व भारतवंशी अपने मातृदेश से धरोहर के रूप में लेकर आए थे, जिसे उन्होंने अपने संघर्ष के दिनों में शस्त्र के रूप में प्रयोग किया। अपनी इस धरोहर को न केवल उन्होंने संरक्षित किया, बल्कि आज विभिन्न साहित्यिक विधाओं में सृजन करके वे उसे अपनी नई पीढ़ी को हस्तांतरित भी कर रहे हैं। भोजपुरी साहित्य के क्षेत्र में तीन "स" अर्थात् - डॉ. सरिता बुद्धू, सुचिता रामदीन और सीता रामयाद के नाम विशेष मायने रखते हैं। डॉ. सरिता बुद्धू भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन की अध्यक्षा हैं और मॉरीशस में भोजपुरी, भाषा, संस्कृति और गीतों को जीवित रखने में सक्रिय और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इनके अथक प्रयत्नों से भोजपुरी "गीत गवाई" अर्थात् भोजपुरी समाज में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों को यूनेस्को हेरिटेज में सम्मिलित किया गया है। 'कन्यादान' (1993 Kanya Dan- the Whys of the Hindu Marriage Rites), इनका वृहद और बहुचर्चित ग्रंथ है, जिसमें इन्होंने विवाह संस्कार की सदियों से चली आ रही, हिन्दू परंपराओं को बहुत ही खूबसूरती से वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त भोजपुरी भाषा-शिक्षण संबंधी इनकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित "भोजपुरी ट्रेडीशन इन मॉरीशस" मॉरीशस में भोजपुरी परम्पराएँ (2005), भोजपुरी बोल (2010) और भोजपुरी का सहज व्याकरण प्रमुख हैं।

सुचिता रामदीन द्वारा संकलित "संस्कार गीत"

का भोजपुरी गीतों को लोकप्रिय बनाने में विशेष स्थान है। इसमें इन्होंने भोजपुरी भाषियों में प्रचलित, लेकिन लुप्त होते संस्कार गीतों का संकलन किया है, जो क्षीण होती भोजपुरी परम्पराओं को जीवित रखने में सहायक हैं। सुचिता जी की यह पुस्तक मॉरीशस के लोक साहित्य परम्परा की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इनके संकलन से उद्धृत एक उदाहरण देखें :

"हमरो बिआह करीहा मोरे बाबा जिनही से होइहें निबाह हमरो बिआह करीहा मोरे बाबा जिनही से होइहें निबाह पूरब खोजलीं बेटी पछिम खोजली कतहूँ न मिले सीरीराम पूरब खोजलीं बेटी पछिम खोजली कतहूँ न मिले सीरीराम जाहू जाहू बाबा हो अवध नगरिया जाहू राजा दसरत दुआर दसरत के चार पुतरवा चारों में एक बलिवान।"

विगत वर्ष ही दिवंगत हुईं, नब्बे वर्ष से अधिक की उम्र में भी सक्रिय रहने वाली सीता रामयाद मूलतः शिक्षिका रही हैं। रंगमंच और एकांकी लेखन इनका प्रिय विषय है। "पत्थर के लोर" इनकी महत्त्वपूर्ण भोजपुरी एकांकी पुस्तक है। पत्थर के लोर के अतिरिक्त इनकी अनेक कविताएँ और एकांकी भी प्रकाशित हुए हैं।

आलोचनात्मक साहित्य लेखन की बात करें, तो आर्य सभा मॉरीशस ने विभिन्न महिला कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन देने स्वरूप उनकी पुस्तकों को प्रकाशित करने में सहयोग दिया है। आर्य महिला मंडल की अध्यक्षा लखावती हरगोविंद की "महिला स्मृति" तथा "मॉरीशस महिला आर्य मंडल" पंडिता प्रमिला सिरतन की "वैदिक प्रवचन और सूक्त माला" (संस्करण : 2011, प्रकाशक : स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, भारत), श्रीमती सत्यवती जगमोहन की "द्वादश सरोज" (स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, संस्करण : 2005) आदि पुस्तकों के अतिरिक्त कतिपय शैक्षिक लेख, कहानियाँ, कविताएँ और आर्य सभा के प्रवचन आदि समय-समय पर आर्य सभा द्वारा निकाली जा रही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

मॉरीशस में महिला साहित्यकारों ने गंभीर शोध-कार्यों के माध्यम से आलोचनात्मक साहित्य को विकसित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन साहित्यकारों ने विभिन्न विधाओं में शोधकार्य के अतिरिक्त शिक्षण सम्बन्धी पुस्तकें लिखकर भी हिंदी के प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। विश्व हिंदी सचिवालय की उपमहासचिव डॉ. माधुरी रामधारी का शोधकार्य (मॉरीशसीय हिंदी नाट्य साहित्य), प्रो. रेशमी रामधनी (शिक्षा और स्त्री-विमर्श संबंधी अनेक आलेख), डॉ. संयुक्ता भुवन-रामसारा (निराला : रचना और अंत:संघर्ष, Thoughts on peace और Indian Diaspora : Voices of grandparents and grandparenting), डॉ. विनोदबाला अरुण ('संस्कार रामायण', 2014, प्रकाशक : विद्या विहार, नई दिल्ली, भारत तथा मॉरीशस की 'हिंदी कथा-यात्रा', संस्करण : 1997, प्रकाशक : विद्या विहार, नई दिल्ली, भारत), डॉ. राजरानी गोबिन (स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में नौस्टेल्जिया भावना - 1999, भारतीय हिंदी सांस्कृतिक कोश, 'Apprenons Hindi, Introductory Course in Hindi'), डॉ. अलका धनपत (संशय की एक रात - परंपरा तथा आधुनिकता तथा छायावादोत्तर हिंदी काव्य में पौराणिक मिथक तथा आधुनिकता) आदि। इसके अतिरिक्त डॉ. अंजलि चिंतामणि, डॉ. संध्या अंचराज, डॉ. रत्ना सुखलाल आदि के शोधकार्य भी इस दिशा में सार्थक हैं।

इन और इनके अतिरिक्त बहुत-सी लेखिकाओं के भी मॉरीशस की विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं, जैसे 'सुमन', 'वसंत', 'रिमझिम', 'आर्यवीर' तथा भारत की विभिन्न पत्रिकाओं में कहानी, कविता तथा आलोचनात्मक लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

मॉरीशस में महिलाओं द्वारा लिखे जा रहे स्त्री-साहित्य को समग्रतया विश्लेषित करने पर कहा जा सकता है कि इस साहित्य का मूल स्वर स्व-अस्मिता, स्वाभिमान, अंतर्द्वन्द्वों और तद्जन्य छटपटाहट से गुज़रता हुआ, कहीं मुखरित असंतोष से अपनी विद्रोही छवि को दर्ज कराता है, तो कहीं दमित इच्छाओं के भँवरजाल में जकड़ा अपनी श्वास तोड़ देता है। इस स्वर में कहीं समझौते हैं,

कहीं विद्रोह है, कहीं आक्रोश का लावा है, कहीं घुटन है, कहीं मुक्ति की कामना है, कहीं अपनी पहचान के लिए तड़प है, तो कहीं पारिवारिक संबंधों के प्रति नि:स्वार्थ समर्पण की मिली-जुली भावनाएँ हैं। बदलते समय के साथ इसकी अन्तश्चेतना में विरोध और एक रेखा के पश्चात् अपनी मुक्ति की कामना बलवती होती दिखाई पड़ती है। अधिकांश कवयित्रियाँ और उनका साहित्य उस परंपरागत भारतीय परिवेश से प्रभावित है, जहाँ स्त्री का अर्थ उसकी सामाजिक-पारिवारिक भूमिकाओं द्वारा परिभाषित करने की परंपरा, चलन और अभ्यास है। इस रिवाज़ के प्रभाव से ही अधिकांश महिला साहित्य में स्व के स्थान पर सर्व और आत्म के स्थान पर परिवार, समाज और देश की उपस्थिति स्पष्टतया महसूस की जा सकती है, जो एक आदर्श मानक को स्थापित करने की दिशा में कारगर है। इसी प्रकार की मानसिक मनोवृत्ति से बुने साहित्यिक ताने-बाने के उतार-चढ़ाव को प्रारंभ से आधुनिक काल तक की रचनाओं के प्रतिस्थापक रूप में देखा जा सकता है।

बदलते साहित्यिक परिदृश्य के साथ ही मॉरीशस में महिला साहित्यकार आगे आ रही हैं और अपने दृष्टिकोण को सबलता से अभिव्यक्ति देने के लिए कलम को ज़रिया बना रही हैं। मॉरीशस के सन्दर्भ में यह एक संतोषजनक अनुभूति मानी जाएगी कि उनके लिखे को साहित्यिक वर्ग द्वारा हमेशा से ही समर्थन और मान्यता मिलती आई है। वर्जीनिया वुल्फ़ ने स्त्री-लेखन के सन्दर्भ में कहा था कि स्त्री का लेखन स्त्री का लेखन होता है, स्त्रीवादी होने से बच नहीं सकता, अपने सर्वोत्तम में वह स्त्रीवादी ही होगा। सत्य ही है कि महिलाओं द्वारा रचा जा रहा यह समस्त रचनाकर्म साहित्य को अभिनव सौन्दर्य प्रदान करने के साथ ही उसे गरिमामय भी बनाएगा।

pandeynutan91@gmail.com

कवि गिरिधर की प्रासंगिकता

- डॉ. लक्ष्मी झमन
मॉरीशस

'नीति' का तात्पर्य उस मार्ग से है, जिसपर चलकर हम किसी अन्य प्राणी का अहित किए बिना अपना हित कर सकते हैं। वर्तमान समय में नीति वह शास्त्र है, जो शुद्ध तथा अशुद्ध, सत्य तथा असत्य, उचित तथा अनुचित, शुभ तथा अशुभ के आधार पर मानव-चरित्र का विवेचन करता है। नीति में शुद्ध तथा अशुद्ध का संबंध पदार्थ अथवा क्रिया के गुण से है, सत्य और असत्य का संबंध तर्क अथवा कारण से है, उचित और अनुचित का संबंध जीवन के मूल्यों से है। वास्तव में, अपने पूर्णरूप में नीति वह शास्त्र है, जो जीवन के मूल्यों का विवेचन करता है।

भारतीय संस्कृति में सद्गुण एवं नैतिक शक्ति बहुत ही प्रभावोत्पादक होती है। अतः भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव में वह शक्ति है, जिससे वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकता है। इसमें नैतिकतापूर्ण मानवतावाद पर बल दिया गया, जिससे लोगों में अधिक उदारता एवं विनम्रता जागृत हो। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के जीवन को सुखमय, तपोमय तथा शांतिमय बनाने के लिए उसे संस्कारित किया जाता है। 'नीति' व्यक्ति को विकृत होने से बचाती है।

नैतिक आधार और कर्त्तव्य के लिए संस्कृत में 'धर्म' शब्द का ही व्यवहार हुआ है। इसीलिए नीतिकारों ने धर्म की रक्षा के लिए मानव-मन के शुद्धीकरण पर बल दिया है। मन ही वह धुरी है जिसके सहारे जीवन की गाड़ी चलती है। हमारी सफलता एवं असफलता का सारा उत्तरदायित्व मन पर केन्द्रित होता है। प्रसिद्ध कहावत है 'मन के हारे हार, मन के जीते जीत'। नीतिकारों ने धार्मिक साधना में या व्यावहारिक जीवन में मन को अपनी मुट्ठी में रखने पर बल दिया है, पर इसे मुट्ठी में रखना सरल नहीं है। इसकी चंचलता प्रसिद्ध है। रीतिकाल के नीतिकार गिरिधर कविराय कहते हैं कि हे मूर्ख मन, तू क्यों सीधी चाल नहीं चलता, हमेशा असंगत चाल ही चलता है। वेदों में और स्मृतियों में तेरा बखान किया गया है, किन्तु तेरा वही हाल है, तू हमेशा प्रपंचों में फँसा रहता है। तू क्यों नहीं स्थिर भाव से रहता है –

"रे मन भोंदू बावरे, छोड़ नहीं कुचाल
श्रुति असमृति सब कह थके, तेरा वही हवाल
तेरा वही हवाल बेसुरा बेताला गावे
नाल-रूप-परपंच और निसि-बासर धावे
कह गिरिधर कविराय, और तू मत कुछ बन रे
निज स्वाप के महिं, सदा असथित रह मन रे।"

कवि गिरिधर कविराय कहते हैं कि मन को ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे उसे आत्मिक शांति प्राप्त हो तथा समस्त राग-द्वेष तथा आशा-तृष्णाओं का नाश हो, क्योंकि जिसके मन में आशा-तृष्णाओं का लेश होता है, उसका मन सांपिनी के समान होता है –

"रे मन, ऐसो काम कर, जाते पावे शान्ति
राग-द्वेष मिट जाय, सब आशा-तृष्णा भ्रांति
आशा-तृष्णा भ्रांति, नीचनी है यह पापिन
जाके अंतर बसे तिसी को इस है सांपिन
कह गिरिधर कविराय, ज्ञान कर तू उत्पन्न रे
निबड़ अंधेरों नासै, मूल अविद्या मन रे।"

धर्म और व्यवहार दोनों ही दृष्टियों से 'सत्य' जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 'सत्य' अपने आप में ही प्रमुख धर्म है। इसके अतिरिक्त उससे हृदय के अन्य विकार भी दूर हो जाते हैं। व्यक्ति अपनी बुराइयों की आड़ में असत्य को छिपा भी सकता है, पर सत्यवादी के लिए यह संभव नहीं। गिरिधर कहते हैं; असत्य-भाषण

करने वाले व्यक्ति को समाज में कहीं आदर नहीं मिलता, झूठ बोलने वाले पर लोग हँसते हैं और उसकी सत्य बात को भी असत्य मान लेते हैं। अत: व्यक्ति को न तो असत्य बोलना चाहिए और नाहीं उसे झूठ बोलने वाले व्यक्ति के संपर्क में आना चाहिए –

"झूठी बातन जगु हंसै, झूठे को पतिआइ
झूठा के घर जाओ, तब आओगे खाइ
तब आऔगे खाइ, जानि परिहैगी तबही
जेइँ झूठ जब उठे, जानि परिहैगी सबही
कह गिरिधर कविराइ, बात इतनियौ अनूठी
कहत न लागै मार सरम, झूठा सौं झूठी।"

धर्म को अपनाने के लिए व्यक्ति को अभिमान से दूर रहना चाहिए। मस्तिष्क का एक विकार जो प्राय: विद्या, बुद्धि, बल, धन या रूप आदि में अपने को दूसरों से बढ़कर, समझने के कारण उत्पन्न होता है, अभिमान, मद या गर्व कहलाता है। प्राय: सभी नीतिकारों ने अभिमान का प्रबल विरोध किया है। अभिमान एक नशा है, जिस प्रकार मादक द्रव्यों से अभिभूत होकर व्यक्ति अपनी यथार्थ स्थिति का ज्ञान नहीं रखता है और सुध-बुध खो बैठता है, ठीक वही दशा अभिमान की अवस्था में भी देखी जा सकती है। गिरिधर कविराय अभिमानी व्यक्ति को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि संसार नश्वर है, अत: इस संसार में कोई भी वस्तु स्थाई नहीं है। उनके अनुसार इस संसार में व्यक्ति थोड़े दिनों के लिए आता है, इसलिए उसे कपट का भाव त्यागकर सच्चे मार्ग पर चलना चाहिए। कपट के द्वारा अर्जित धन-सम्पदा व्यर्थ है, इससे एक तो व्यक्ति का सम्मान जाता है, दूसरा परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अतः व्यक्ति को इस संसार में लालायित होने के स्थान पर, धन से विमुख होना चाहिए और धर्म का पालन करना चाहिए -

"थोरें दिन के कारणों, कौन उपाधि करै
किस जीवन के वास्ते, जग में पचि-पचि मरै
जग में पचि-पचि मरै, आपने इज्ज़त खौवै
एक गमावै हुरमत, द्वितीय फजीहत होवै
कह गिरिधर विराय, जु जीवन मुक्ति लौरे
तजै सर्व का संग, जान रहना दिन थोरै।"

संसार में विरक्त होकर साधना और भजन करने वाले व्यक्ति साधु कहलाते हैं। संतों का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि वे केवल अपना भला नहीं करते, अपितु उनके समीप जो भी व्यक्ति जाता है वह उनसे लाभान्वित ही होता है। गिरिधर कविराय के अनुसार 'साधु' को कभी भी स्थायी रूप से एक स्थान पर कुटी बनाकर नहीं रहना चाहिए, उसे बहता पानी, रमता फ़कीर होना चाहिए। कहीं पर स्थाई निवास करने से वह राग-द्वेष का शिकार हो जाता है और उस पर दाग भी लग सकता है –

"बहता पानी निर्मला, पड़ा गंध सो होय।
त्यों साधू रमता भला, दाग न लगे कोय
दाग न लागे कोय, जगत में रहै अलेदा
राग-द्वेष युग प्रेत, न चिंत को करै विछेदा
कह गिरिधर कविराय, शीत उष्णादि सहता
होइ न कहुँ आसक्त, यथा गंगा जल बहता।"

गिरिधर के अनुसार साधु को रुपए-पैसे से कोई वास्ता न रखना चाहिए। न किसी का लेना, न किसी को देना। उसे असंग्रही होना चाहिए।

"देनी दमड़ी एक ना, लेने को न छिदाम
गाँठ बाँध नहि चालने, फूटी एक बदाम
फूटी एक बदाम, न राखै दूसर दिन को
बिना आपने आप, भरोसा और न जिनको
कह गिरिधर कविराय, रही ना बाकी लेनी
कीनों जबी हिसाब, न निकसी कौड़ी देनी।"

कविराय गिरिधर का कहना है कि साधु को भोजन-छाजन की चिंता में लीन न होना चाहिए। उसे निश्चिंत होकर भगवद् भजन करना चाहिए, क्योंकि प्रभु स्वयं साधु के भोजन की व्यवस्था कर देता है। यथा -

"भोजन, छाजन नीर की, करै सु चिंता मूढ़
ज्ञानी चिंता ना करै, निज पद मारि अरुढ़
कह गिरिधर कविराय, और ना राखै प्रयोजन
आतम चिंतन करै, अदृष्ट पहुँचावत भोजन।"

भक्तिकाल और रीतिकाल के नीतिकारों ने गुरु सेवा को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, क्योंकि धर्म और शिक्षा दोनों ही क्षेत्रों में गुरु का बड़ा महत्त्व है। जीवन के हर क्षेत्र की सफलता या असफलता बहुत कुछ गुरु पर निर्भर करती है। गिरिधर कविराय ने अपने नीति-वर्णन में तत्त्वज्ञ गुरु पर बल दिया है। यथा -

"कारीगर के कसे बिन, सूधो होय न काठ
वैयाकरणी तै बिना, शुद्ध न होवे पाठ
शुद्ध न होवे पाठ, बात जो अतिशय पीनी
कहु तत्वज्ञ गुरु बिना, वस्तु क्यों पावै झीनी
कह गिरिधर कविराय, अविद्या जावे मारि
महावाक्य गुरु द्वार, वाण जब लागै कारी"

वस्तुत: गुरु शिष्य का संबंध भारतीय परंपरा के अनुसार पिता-पुत्र के संबंध की भाँति माना गया है। इसी कारण गुरु को माता-पिता की कोटि में रखा गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आध्यात्मिक विकास का दायित्व केवल गुरु पर ही रहता है। गिरिधर के अनुसार बिना गुरु के ज्ञान नहीं आ सकता। ईश्वर की कृपा तथा अपने पुरुषार्थ के अतिरिक्त अविद्या रूपी पाप को काटने के लिए गुरु की सहायता आवश्यक है। गुरु के प्रभाव के कारण शिष्य में किसी भी प्रकार का रोग नहीं रहता। चाहे वह दैहिक हो या मानसिक हो, और वह जन्म और मरण के बंधनों से भी मुक्त हो जाता है –

"करुणा हो श्रीराम की, औ गुरु को परताप
पुन: पुरुषार्थ अपनो, कहै अविद्या-पाप
करै अविद्या-पाप, जुड़े जो यह संयोग
देह इंद्रिय मन प्राण महिं, कोई रहे न रोग
कह गिरिधर कविराय, छुटै जब जन्म अरु मरना
कृतकृत्य भयो प्रमान, बहुरि कछु रहे न करना।"

गिरिधर युगीन समाज में अधिकतर गुरु पदच्युत और कर्तव्य-विमुख हो गए थे। गुरु पहले स्वयं ज्ञानार्जन करता है, तभी वह दूसरों को शिक्षा देने के योग्य बनता है। रीतिकाल में सच्चे और निष्ठावान गुरुओं का अभाव था, थोड़ा-सा ज्ञानार्जन करके, लोग शिक्षा देना आरंभ कर देते थे, क्योंकि एक ओर जहाँ गुरुओं में साधना कम हो गई थी, वहीं दूसरी ओर शिष्य भी ज्ञान-पिपासा लेकर नहीं आते थे। इसीलिए गिरिधर-कविराय ने सद्गुरु की शरण में जाने को कहा है, क्योंकि वही शिष्य को अंधकार रूपी कूप से निकालकर सच्चे ज्ञान का प्रकाश दे सकता है –

"शिक्षा व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, कल्प निरुक्त
षट अंग है यह वेद के, यामें नाना मुक्ति
यामें नाना मुक्ति, बिना सद्गुरु नहिं पावै
ब्रह्मा श्रोत्रिय नेष्ठी, जो गुरु मिले तो आवै
कह गिरिधर कविराय, तेज जब मन सो वीक्षा
तब होय यथारथ ज्ञान, यहीं संतन की शिक्षा"

नीतिकारों ने गुरु-सेवा को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, क्योंकि धर्म और शिक्षा दोनों ही क्षेत्रों में गुरु का बहुत बड़ा महत्त्व है। जीवन के हर क्षेत्र की सफलता-असफलता बहुत कुछ गुरु पर निर्भर करता है। गुरु की कृपा से ही ज्ञान के चक्षु खुलते हैं।

नीति के अभाव में हम एक आनंदमय समाज के वातावरण से वंचित रह जाते हैं। गुरु समाज में असीम कल्पना और सृजन-शक्ति के विकास एवं निर्माण का माध्यम है, परंतु दुर्भाग्यवश आधुनिक युग में गुरु तो हैं, परंतु वे आजीविका के लिए ही कार्य करते हैं।

गुरु हमें अद्यतन ज्ञान उपलब्ध कराने के साथ-साथ सदाचार, संस्कृति, धर्म एवं नीति की अनमोल सीखों से अवगत कराते हैं। इस सत्य को स्वीकार कर हर गुरु अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत हो जाए, तो स्वस्थ समाज के निर्माण में न तो बाधाएँ होंगी न देर होगी। ज्ञान बाँटने वाला गुरु व्यावहारिकता के धरातल पर उतरते हुए, नीति का उद्घोषक बनकर, सबको सन्मार्ग पर चलना अवश्य सिखाएँ।

संदर्भ ग्रंथ :

1. किशोरीलाल गुप्त, 1977, गिरिधर कविराय ग्रंथावली, इलाहाबाद, मधु प्रकाशन।
2. किशोरीलाल, 1997, मध्यकालीन काव्य-पाठ एवं अर्थ-विवेचन, नई दिल्ली : स्टार प्रकाशन।
3. आशा देवी, 2003, हिन्दी प्रेमाख्यानों में लोक-संस्कृति, दिल्ली : अविराम प्रकाशन

ljhummun06@gmail.com

फ़िजी में हिंदी साहित्य

- श्रीमती श्रद्धा दास
फ़िजी

"अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है"

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जो देश या समाज अपनी भाषा और निजी साहित्य नहीं रखता है, वह रूपवती भिखारिन की तरह कहीं आदर नहीं पा सकता है। समाज अपने हित तथा सम्मान के लिए साहित्य की रचना करता है। साहित्य उसी भाषा में लिखा होगा, जो उस समय की प्रचलित भाषा होगी। संस्कृति एवं भाषा की सम्पन्नता का अनुमान साहित्य से ही लगाया जाता है। इसलिए साहित्य का अपना एक महत्त्व होता है। "ज्ञान राशी के संचित कोष का ही नाम साहित्य है।"

साहित्य का इतिहास जानना भी एक महत्त्वपूर्ण विषय है। 'इतिहास' शब्द 'इति'+'हास' से बना है। अर्थात् ऐसा ही हुआ। इतिहास अतीत में घटित घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन होता है। साहित्य के इतिहास में पिछले दिनों में लिखी गईं संचित रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

फ़िजी एक मात्र ऐसा देश है, जिसे 'दूसरा भारत' कहा जाता है। फ़िजी देश हिन्द महासागर के पूर्व में स्थित प्रशांत महासागर में बसा हुआ एक छोटा-सा द्वीप है। यह भारत से 12 हज़ार किलोमीटर दूर, भूमध्य रेखा से करीब 1,100 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। कहा जाता है कि सन् 1643 ई. में तसमान नामक डच ने फ़िजी की खोज की थी। फिर सन् 1876 ई. में ब्रिटिश सरकार ने फ़िजी देश पर अपना कब्ज़ा किया था। फ़िजी में गन्ने की खेती करवाने हेतु, भारत से श्रमिकों को यहाँ लाया गया था। उस समय भारत पर भी अंग्रेज़ों का ही राज्य था। जिस दिन भारतीय श्रमिकों ने फ़िजी की धरती पर अपने कदम रखे, उसी दिन हिंदी का प्रवेश इस देश में हो गया था। वैसे तो ये भी कहा जाता है कि सन् 1879 से पूर्व फ़िजी द्वीप के बंदरगाहों पर बड़े-बड़े जहाज़ आते थे, उनमें काम करने वाले 'खलासी' भारतीय भी होते थे, जो आपस में हिंदी में बोलते थे।

सन् 1879 ई. में पहला जहाज़ 'लिओनीदास' में लगभग 481 भारतीय श्रमिक फ़िजी लाए गए थे। ये श्रमिक भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, पंजाब, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश तथा केरल से आए थे। उनकी भाषा भिन्न थी। उनमें हिंदी भाषा बोलने वाले अधिक थे। जब वे आपस में बातें करते, तब उनकी भाषा के शब्द भी हिंदी भाषा में जुड़ते गए तथा एक नई भाषा अपने आप बनती गई। उसी का नाम पड़ा 'फ़िजी हिंदी'। यह अब फ़िजी की बोलचाल की भाषा है तथा दूसरी मानक भाषा जो पठन-पाठन के लिए उपयोग में लाई जाती है। इस प्रकार वर्तमान में फ़िजी में दो प्रकार की हिंदी प्रचलन में है।

फ़िजी में हिंदी के प्रवेश को 142 वर्ष हो गए हैं। इन्हीं वर्षों को फ़िजी के हिंदी साहित्य के इतिहास का समय मानकर उसको तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है और वह इस प्रकार है :

1 संघर्ष काल – 1879 ई. से 1920 ई. (41 वर्ष)
2 जागृति काल – 1920 ई. से 1970 ई. (50 वर्ष)
3 प्रगति काल – 1970 ई. से आज तक (51 वर्ष)

संघर्ष काल (1879 से 1920) - गिरमिट प्रथा के अंतर्गत शर्तबंद भारतीय मज़दूर जिस दिन फ़िजी आए उसी दिन से उनके जीवन को नाना तरह के संघर्षों ने घेर लिया था। ब्रिटिश मालिक बड़े ही अत्याचारी तथा

बेरहम थे। वे मज़दूरों से अमानुषिक तथा अन्यायपूर्ण व्यवहार करते थे। बहुत ही काम करवाते तथा बेवजह उन्हें सज़ा भी देते थे। ऐसी स्थिति में भी श्रमिकों ने अपनी भाषा, संस्कृति तथा सभ्यता को बनाए रखा। शनिवार तथा इतवार को साथ में बैठकर रामायण, महाभारत, सत्यनारायण की कथा, हनुमान चालीसा तथा आल्हाखण्ड जैसे महाकाव्यों के पठन और पाठन में आनंद उठाते। उनमें से थोड़े ही श्रमिक पढ़े-लिखे थे तथा अधिकांश निरक्षर थे। वे एक साथ बैठकर सूर, कबीर, तुलसी, रैदास, दादु तथा मीरा आदि के भजन गाते थे। जैसे "भज मन रामचरण सुखदायी।" आदि।

'जिस तरह भारत में भारत की भाषा, संस्कृति तथा सभ्यता का रक्षक हिमालय पर्वत है, उसी तरह फ़िजी में गोस्वामी तुलसीदास की 'रामायण' प्रवासी भारतीयों की रक्षक है।'

"अपने पूर्वजों की निष्ठा, धार्मिक विश्वास, अटूट धैर्य और कठिन परिश्रम को हम भूल नहीं सकते।" यह कथन 'श्री सनातन धर्म पुरोहित ब्राह्मण सभा' के श्री शालिग्राम शर्मा का है।

उन दिनों हिंदी में कोई लिखित साहित्य नहीं था, लेकिन मौखिक रूप से रचनाएँ गूँजती रहीं। संघर्ष का सामना करते हुए भी, इन शर्तबंद मज़दूरों ने मौखिक साहित्य को ज़िंदा रखा। अनपढ़ लेकिन निष्ठावान नारियों के मुख से अनेक गीत अपने-आप उनके हृदय की गहराई से निकल पड़े, जो लोक साहित्य के अंग बन गए। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं –

1. "सतियों का धर्म डिगाने को जब,
   अन्यायियों ने कमर कसी
   जल अगम में कुन्ती कूद पड़ी
   पार बही मझधार नहीं।"

2. "इस पवन का कुछ तो यत्न करो
   हर कुन्ती का जीवन सफल रहे
   बिन धर्म धारण किए
   सुख-शान्ति का संचार नहीं।"

यहीं से भविष्य के लिखित साहित्य की नींव डालने लगी थी। तत्कालीन परिस्थिति से त्रस्त होकर गीत बनते जाते और मुख से गायन के रूप में निकल पड़ते थे। वे आगे जाकर 'लोक गीत' कहलाए, जैसे ये कहरउआ -

"पुरबी चलीरे बयरिया, गेंदवा गम गम गमके ना, (2)
हमरे माथे की टिकुलिया रतिया चमचम चमके ना।
पुरबी चलीरे बयरिया--
हमरे हाथ के कंगनवा, रतिया खन-खन खनके ना।
परबी चलीरे बयरिया--
हमरे गोड़े की पयरिया, रतिया छम-छम छमके ना।"

सुमिरण-

"आओ न भवानी मइया बइठो मोरे अंगना
देबै सातो रंगिया बिछाय।
तुम्हरे भरोसे मैया हम जग रोपेव
मोरे जग पूरन होय।
आओ डिउहार बाबा बइठो मोरे अंगना
देबै सातो रंगिया बिछाय
तुम्हरे भरोसे बाबा हम जग रोपेंव
मोरे जग पूरन होय।"

लोक गीतों के साथ-साथ गाथाएँ, लोरियाँ, नौटंकी आदि भी कथाओं के रूप में जीवित थे। सब साथ में बैठकर जैसे हातिमताई, बैताल पचीसी, हितोपदेश, पंचतंत्र की कहानियाँ भी सुनते और सुनाया करते थे। आगे चलकर इसी ने साहित्य का रूप धारण किया।

इसके अतिरिक्त सन् 1884 में वुनिमोनो में एक कुटिया बनाई गई, जिसमें साधु गिरवर दास महन्त ने हिंदी पढ़ाना शुरू किया। आरम्भ में 16 बच्चे थे, आगे संख्या बढ़ने लगी। सन् 1902 में नाबुआ गाँव में पहली रामलीला प्रदर्शित हुई, जिससे हिन्दुओं का हिन्दू भाव मज़बूत हुआ। सन् 1920 में वुनिमोनो की ज़मीन पर एक धर्मशाला बनी, जिसमें श्री रामदीन दयाल बच्चों को संस्कृत का ज्ञान 'चाणक्य नीति दर्पण' किताब से देने लगे।

वहीं पर रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, दीवाली तथा होली जैसे त्योहार सामूहिक रूप से मनाए जाने लगे। इस प्रकार संघर्ष काल के अंत में आने वाले लिखित हिंदी साहित्य की जड़ें मज़बूत होने लगी थी।

जागृति काल (1920 से 1970) - सन् 1916 ई. में फ़िजी में गिरमिट प्रथा को बंद किया गया तथा पूरी तरह से समाप्ति सन् 1920 ई. में हुई। मुक्त गिरमिटिया स्वतंत्रता की सांस लेने लगे। लगभग उसी समय से जागृति काल का आरम्भ होने लगा। बच्चों को शिक्षित करने हेतु जहाँ-तहाँ पाठशालाओं को खोलने का प्रयास शुरू हुआ। हिंदी भाषा प्रगति की ओर चल पड़ी। देश में औपचारिक ढंग से हिंदी पढ़ाने के लिए भारत से कुछ किताबें मँगवाई गईं। जैसे गुलसरोवर, हातिमताई, सिंहासन बत्तीसी इत्यादि। समाज में पढ़ने-लिखने पर ज़ोर दिया जाने लगा। अपने व्यक्तित्व और पहचान बनाए रखने के लिए, लिखित साहित्य की ओर ध्यान दिया जाने लगा। इससे भाषा की उन्नति होने लगी। कई मंदिरों का निर्माण हुआ। इसमें सामूहिक रूप से रामलीला, नाटक तथा नौटंकी का प्रदर्शन आरम्भ हुआ। सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, आर्यसमाज, संगम तथा रामकृष्ण मिशन जैसी प्रमुख संस्थाओं की स्थापना हुई। उन्होंने पाठशालाओं में अनेक विषयों के साथ-साथ हिंदी पढ़ाने पर पूरा सहयोग दिया। भारत से कई शिक्षकों को बुलाया गया। उन शिक्षकों ने कई वर्षों तक ज्ञान देने के साथ समाज-सुधार के कई काम किए। उनमें हैं - श्री जोगिन्द्र सिंह कंवल, जिन्होंने खालसा कॉलेज में पढ़ाया तथा हिंदी के क्षेत्र में अनेक कार्य किए। रामकृष्ण मिशन द्वारा लाए गए, कई शिक्षकों में से श्री बालगणपति पिल्ले तथा श्री पी. डी. मूसद ने स्वामी विवेकानन्द हाईस्कूल, नान्दी में कई वर्षों तक अध्यापन का कार्य किया।

सन् 1931 ई. में कोरोवुतो पाठशाला में पंडित अयोध्या प्रसाद शर्मा बच्चों को श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित हिंदी काव्य की पुस्तक 'भारत-भारती' से हिंदी पढ़ाते थे। बच्चे अच्छी तरह से सीख भी रहे थे। उस समय के स्कूल इन्सपेक्टर मि. मैकमिलन साहब ने स्कूल का मुआयना करते समय 'भारत-भारती' से हिंदी पढ़ाने को मना कर दिया तथा उसके बदले में उन्होंने 'अदलू-बदलू' की कहानी की किताब उन्हें पढ़ाने के लिए दी। पंडितजी जानते थे कि उससे सही ज्ञान प्राप्त करना असम्भव था। उन्होंने 'भारत-भारती' से ही पढ़ाना जारी रखा। इसकी जानकारी स्कूल इन्स्पेक्टर को हो गई। कुछ दिनों में पंडितजी को शिक्षा मन्त्रालय से पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें उनके पढ़ाने का रजिस्ट्रेशन रद्द कर देने की खबर थी। अंग्रेज़ सरकार हिंदी पढ़ाने के विरोध में कार्य कर रही थी, मगर प्रवासी भारतीय श्रमिक हिम्मत नहीं हारे और आज तक हिंदी-शिक्षण को बनाए रखने में सफल रहे।

हिंदी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् कई लेखक उभरने लगे। लेखन-कार्य का शुभारम्भ हो गया। उनमें प्रमुख रचनाकार हुए पंडित कमला प्रसाद मिश्र, जो अत्यंत विद्वान व्यक्ति थे। सन् 1932 के काल में उन्होंने लिखना आरम्भ किया तथा कई वर्षों तक लिखते रहे। उनके द्वारा रचित काव्य-संग्रह 'फ़िजी के कवि : कमला प्रसाद मिश्र का काव्य' अत्यंत लोकप्रिय है। गिरमिट पर उन्होंने एक दर्द भरी कविता लिखी थी, कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

1. "गिरमिट शर्त के नीचे उन्हें करना जो पड़ा, वह काम कड़ा था,
   मंगल था लहराने लगा, जहाँ जंगल ही सब ओर खड़ा था।"

2. "कोई रामायण बाँच रहा, कोई लेकर सत्यनारायण आया ,
   खूब किया सम्मान कोई, अनजान जो आँगन आया।"

उनके द्वारा लिखित 'ताज', 'मेरा अतीत' तथा 'कितना अन्तर' इत्यादि कविताएँ हैं। इनमें मानवीय संवेदना, राष्ट्रीयता और सामाजिक व्यंग्य के अच्छे दर्शन

होते हैं। उन्हें 'विश्व हिंदी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया तथा फ़िजी हिंदी परिषद् द्वारा 'राष्ट्रीय कवि' होने का सम्मान प्राप्त हुआ है। सन् 1956 में पंडितजी ने 'जागृति' तथा 'जय फ़िजी' जैसे समाचार-पत्रों का संपादन कार्य किया।

पंडित जी से प्रेरणा पाकर महावीर मित्र ने भक्ति परक कविता-संग्रह 'मानव मित्र बसंत' की रचना की। श्री बाबू सिंह ने 'फ़िजी समाचार' पत्र का संपादन किया। सन् 1935 ई. में 'शान्ति दूत' नामक साप्ताहिक हिंदी समाचार-पत्र का संपादन शुरू हुआ। इसके सर्वप्रथम सम्पादक थे - पंडित गुरुदयाल शर्मा। फ़िजी में गद्य साहित्य के लेखन का आरम्भ हुआ पंडित तोताराम सनाढ्य द्वारा। उन्होंने 'फ़िजी में मेरे 21 वर्ष' नामक पुस्तक तैयार की, जिसमें गिरमिटियों के साथ हुए दुर्व्यवहारों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। भारत में इसका कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। आगे 'किसान संघ का इतिहास' नामक पुस्तक पंडित अयोध्या प्रसाद शर्मा द्वारा लिखी गई। आर्य समाज के पंडित अमिचन्द ने भारत से आकर हिंदी के प्रचार में योगदान दिया। उन्होंने प्राथमिक कक्षाओं के लिए 'हिंदी पोथी' नामक पुस्तकें जो 1 से 6 भागों तक हैं, लिखीं। इन लेखकों के अलावा अन्य कई लेखकों ने अपनी कई रचनाएँ लिखकर हिंदी की उन्नति में योगदान दिया है।

सन् 1940 ई. के पश्चात् फ़िजी में भारत से हिंदी चलचित्र लाए गए तथा सिनेमा घरों में प्रदर्शन होने लगा। भारतीय तथा गैर भारतीयों को मनोरंजन के साथ-साथ हिंदी का ज्ञान भी प्राप्त होने लगा।

सन् 1954 ई. में आकाश वाणी 'रेडियो फ़िजी2' की स्थापना हुई। उस पर सर्वप्रथम पंडित विष्णु देव की आवाज़ सुनाई पड़ी। उस समय रेडियो फ़िजी2 के डिप्टी जनरल मैनेजर श्री दिवाकर प्रसाद थे तथा हिंदी का कार्यक्रम दिन में 10 से 12 बजे तक चलता था। उन्होंने सन् 1975 में नागपुर, भारत में हुए 'विश्व हिंदी सम्मेलन' के कार्यक्रमों की इस रेडियो स्टेशन से घोषणा की थी।

फ़िजी में कई धर्म प्रचारकों को लाया गया, जिनके द्वारा धर्म के साथ हिंदी का भी प्रचार हुआ। सनातन धर्म प्रतिनिधि महासभा द्वारा श्री सुधांशु महाराज जी, फ़िजी गुजरात समाज द्वारा श्री मोरारजी बापू, रामकृष्ण मिशन द्वारा स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी वल्लभदास तथा स्वामी रंगनाथानंद इत्यादि फ़िजी आए। आर्य समाज द्वारा पंडित गोपेन्द्र नारायण पथिक को आमंत्रित किया गया।

भारत से कई हिंदी गायकों की टोलियाँ भी फ़िजी में आई, जिनके द्वारा प्रस्तुत संगीत के कार्यक्रमों द्वारा मनोरंजन के साथ हिंदी का भी सम्मान बढ़ा। जैसे लता मंगेशकर एंड पार्टी, मन्नाडे एंड पार्टी, हेमंत कुमार एंड पार्टी तथा सोनु निगम एंड पार्टी इत्यादि।

प्रगति काल (1970 से आज तक) - प्रगति काल में हिंदी को लेकर कई क्षेत्रों में उन्नति के मार्ग खुल गए थे। हिंदी भाषा तथा हिंदी साहित्य में जो भी प्रगति हुई, इससे जनता भी अपनी भाषा, संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति जागृत होने लगी। भविष्य में और भी लेखन-कार्य होने की सम्भावना बढ़ी। शिक्षा मंत्रालय द्वारा पाठशालाओं में बच्चों को मानक हिंदी पढ़ाई जाती है। कक्षा 1 से 8 तक के बच्चों के लिए हिंदी अनिवार्य विषय है। आगे माध्यमिक विद्यालय तथा महाविद्यालयों में विद्यार्थी चाहे तो हिंदी विषय लेकर, फ़ॉर्म 3 से 12 तक पढ़ सकते हैं। अब तो हिंदी में जो बी.ए. तथा एम.ए. की डिग्री पाना चाहते हैं, तो वे यूनिवर्सिटी ऑफ़ साऊथ पेसिफ़िक, सूवा तथा यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी, सवेनी लोटोका से पढ़ सकते हैं। ये सब पढ़ाई साहित्य-निर्माण में पूर्णतया सहायक सिद्ध होती है।

फ़िजी में हिंदी की उन्नति में भारतीय उच्चायोग का सम्पूर्ण सहयोग हमेशा रहता है। वे पाठशालाओं में हिंदी की पुस्तकें, पत्रिकाएँ आदि देने की व्यवस्था करते हैं। हिंदी में रचना लेखन की प्रतियोगिता में जो भी विद्यार्थी जीत हासिल करते हैं, उन्हें उच्चायोग पुरस्कार के रूप में भारत भ्रमण करने का अवसर प्रदान करता है। कई हिंदी प्रेमियों को रामचरितमानस, हिंदी शब्दकोश तथा उपयुक्त किताबें नि:शुल्क प्रदान की जाती है। प्रति

वर्ष फ़िजी के नागरिकों को भारत में हिंदी तथा अन्य विषयों में बी.ए. तथा एम.ए. तक पढ़ने हेतु छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त भारतीय उच्चायोग द्वारा 'रामलीला मंडली' भारत से लाई जाती है, जिनके उच्चकोटि के रामलीला प्रदर्शन द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ जनता को हिंदी का ज्ञान भी प्राप्त होता है।

इस प्रगति काल में फ़िजी में कई लेखक तथा साहित्यकारों का उदय हुआ, जिनकी रचनाएँ हिंदी जगत् में प्रसिद्ध हुई हैं। हमारे पूर्वजों की मेहनत अब रंग लाई है। कुछ प्रमुख साहित्यकार हैं –

सुप्रसिद्ध लेखक श्री जोगिंद्र सिंह कंवल, जो एक उत्तम लेखक हैं। उनकी रचनाओं में 'फ़िजी में हिंदी के 100 वर्ष' (अंग्रेज़ी में) अत्यंत प्रशंसनीय है। उनके 'फ़िजी का हिंदी काव्य साहित्य', 'मेरा देश मेरे लोग', 'धरती मेरी माता', 'हम लोग', 'यादों की खुशबू', 'दर्द अपने-अपने', 'कुछ पत्ते, कुछ पंखुड़ियाँ', 'सवेरा' (उपन्यास), 'करवट' तथा 'सात समुन्दर पार' आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। वे हिंदी भाषा के उत्थान के कार्य में सतत कार्यरत रहे। उनके कार्य के लिए उन्हें कई सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

दूसरे प्रसिद्ध लेखक हैं, डॉ. विवेकानन्द शर्मा। उनकी कई रचनाओं में है – 'प्रशांत की लहरें' (फ़िजी की लोक कथाएँ), 'मेरे अपने' (संस्मरण), 'गुलाब के फूल' (एकांकी), 'अतीत की आवाज़' (रेडियो नाटक), सरल हिंदी व्याकरण, 'फ़िजी को तुलसीदास की सांस्कृतिक देन' (शोध ग्रंथ) इत्यादि।

एक महिला कवयित्री लेखिका है, जिनका नाम बड़े ही सम्मान से लिया जाता है। वे हैं श्रीमती अमरजीत कौर कंवल। उनकी काव्य रचनाओं की पुस्तकें हैं - 'स्वर्णिम सांझ', 'उपहार', तथा 'चलो चलें उस पार' इत्यादि। 'चलो चलें उस पार' से एक रचना निम्न प्रकार है -

"मंद मंद मुस्कान बिखेरे, खुले अमन के द्वार
चंदा-सी शीतल छोह इनकी, मन में उठे जुआर।"
उपहार संग्रह से - मातृ प्रेम

"जन्म भूमि और जननी माता, हर प्राणी इनके गुण गाता।
मातृभूमि और माँ ममता से, मन में मातृ प्रेम जग जाता।"

आपको अपने कार्य के लिए कई पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं।

लेखक प्रोफ़ेसर सुब्रमणि ने हिंदी में अनुवादित एक लघुकथा लिखी - 'मुझे बताओ, ट्रेन कहाँ जाती है?'। दूसरा - फ़िजी हिंदी भाषा में 'डउका पुराण' नामक पुस्तक लिखी है। प्रोफ़ेसर को 2003 में 'विश्व हिंदी सम्मान' प्राप्त हुआ है।

श्री भारत बी मोरिस ने एक लघु उपन्यास 'हाय रे ज़िंदगी' तथा 'गली गली में सीता रोए' पुस्तक की रचना की। महाराज कुमारी भिण्डी द्वारा लिखित 'मार्ग' एक काव्य-संग्रह है।

यूनिवर्सिटी ऑफ़ साऊथ पेसिफ़िक फ़िजी की प्रोफ़ेसर डॉ. इन्दु चन्द्रा द्वारा तीन पुस्तकें लिखी गई हैं, जो बड़ी उपयुक्त हैं –

'वृत्ति समुच्चय' तथा 'अभिधा वृत्त मात्रिका'। दोनों व्याकरण की किताबें हैं।

'कोविधानन्द' – आशाधर भट्ट की काव्य रचनाओं पर आधारित है।

यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी, सवेनी की प्राध्यापिका श्रीमती मनीषा रामरक्खा ने प्राथमिक पाठशाला के बच्चों को सच्चा ज्ञान देने के लिए दो पुस्तकें लिखीं, जिनमें रचनाएँ और कविताएँ सम्मिलित हैं। 'संस्कृति और नैतिक शिक्षा' तथा 'संस्कृति और मानव धर्म'। इसके अलावा वे कविताएँ और लेख लिखती रहती हैं, जो 'शान्ति दूत' तथा विदेशी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। हिंदी लेखन-कार्य में रुचि दर्शाने वालों को वे उचित मार्गदर्शन भी कराती हैं।

शिक्षा मंत्रालय की श्यामला लता ने प्राथमिक पाठशाला की कक्षा 7 और 8 के बच्चों के लिए "शाश्वत ज्ञान" पुस्तकों को तैयार किया है। उनकी कविताएँ 'शान्ति दूत' पत्रिका में छपती हैं।

फ़िजी नेशनल यूनिवर्सिटी, लोटोका की प्राध्यापिका सुभाषिनी कुमार ने 'फ़िजी हिंदी काव्य' तथा 'फ़िजी हिंदी भाषा और संस्कृति' नामक पुस्तकें तैयार की हैं।

उत्तरा गुरुदयाल की दो पुस्तकें 'महक' (उपन्यास) और 'फलसफ़ा प्यार का' (कहानियाँ) प्रकाशित हुई हैं। उनकी रचनाएँ रेडियो द्वारा प्रसारित होती रहती हैं।

जैनेन प्रसाद ने 'गुरुदक्षिणा', 'जनम एक एहसास', 'गुदगुदी' नामक पुस्तकें और एक 'हास्य व्यंग्य कविता' पुस्तक लिखी हैं। इसके अलावा वे विदेशी पत्रिकाओं के लिए भी लिखते हैं।

अन्य लेखक हैं - विद्या सिंह, रमेश चन्द, डॉ. नेतराम शर्मा तथा श्वेता दत्त चौधरी आदि। एक गैर भारतीय पत्रकार हैं - नेमानी बैनीवालु, जो हिंदी बोलते हैं और लिख भी लेते हैं। उन्होंने अपना नाम वैश्विक इतिहास में सुनहरे अक्षरों में लिखवाया है।

हिंदी अखबारों द्वारा हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार बड़े ज़ोर-शोर से होता है। 11 मई, 2015 में 'शान्तिदूत' साप्ताहिक पत्र के 80 वर्ष पूर्ण हुए। इस पत्र को यहाँ गाँवों में सर्वाधिक पढ़ा जाता है। इसमें कहानियाँ और अन्य मनोरंजक बातें पढ़ने को मिलती हैं। विद्यार्थियों के लिए पाठशाला से जुड़े अभ्यास-कार्य भी दिए जाते हैं। इस पत्र द्वारा कई लेखक उभरकर ऊपर आए जैसे काशीराम कुमुद, धर्मेन्द्र शर्मा, मास्टर सुधाकर, बलराम वसिष्ठ, मास्टर रामनारायण, गोविन्द इत्यादि। फ़िलहाल कुछ हालातों के कारण यह पत्र बंद हो गया है।

एक नवयुवक सम्पादक रोहित चंद ने 'जन जागृति' नामक पत्रिका आरंभ की है। यह एक अच्छी खबर है। उनको अनेक शुभकामनाएँ।

भारत देश की राजभाषा हिंदी को, एकमात्र देश फ़िजी में 'राष्ट्रभाषा' का गौरव प्राप्त है। देश की सांसद बैठक में, कोई भी सांसद हिंदी में अपने विचार प्रगट कर सकता है। रेडियो स्टेशन जैसे 'रेडियो फ़िजी2', 'नवतरंग' तथा 'सरगम' चौबीस घंटे हिंदी में अपनी सेवा प्रदान करते हैं। लोक गीत, फ़िल्मी गीत तथा अन्य मनोरंजक कार्यक्रम रेडियो में प्रसारित होते रहते हैं। अब तो घर-घर में टेलीविजन चलता रहता है। जिसमें हिंदी चलचित्र तथा हिंदी धारावाहिक सभी देखते हैं तथा हिंदी सीखते रहते हैं। फ़िजी में रामचरितमानस का पठन-पाठन 2,000 से भी अधिक रामायण मंडलियों द्वारा होता रहता है।

इस प्रगति काल में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर, आज के बच्चे और कई माँ-बाप अंग्रेज़ी में बात करना अधिक पसंद करते हैं। अब हिंदी के प्रति कुछ अरुचि उत्पन्न होने लगी है। पाठशालाओं में विद्यार्थी हिंदी के स्थान पर अन्य विषय पढ़ना चाहते हैं। अब हिंदी के प्रगतिशील भविष्य को मज़बूत बनाने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। श्रीमती मनीषा रामरक्खा के अनुसार समाज में सभी को जागृत होकर यह समझना है कि -

"माँ व्यक्ति की जननी है, तो मातृभाषा व्यक्तित्व की जननी है"।

"मातृभाषा से संस्कृति, सभ्यता, संस्कार, सामाजिक मूल्य और आध्यात्मिकता जुड़ी हुई है"।

संदर्भ :

1. 'फ़िजी में प्रवासी भारतीय' (जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी)
2. सामान्य हिंदी पुस्तक (भाषा एवं रचना विवेचन) जी. एल. बोहरा
3. Introduction to Hindi Literature (Course Book) Prepared by Dr. Vivekanand Sharma
4. https://www.abhivyakti.hindi.org.fiji
5. https://www.bharatdarshan.co.n2

shraddhadass@yahoo.ca

हिंदी का ई-संसार और जन-माध्यम

15. भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप और विकास - डॉ. परमानन्द पांचाल

16. हिंदी सिनेमा में गांधी - श्री राजेश अहिरवार

17. मीडिया की दुनिया और नागरिक पत्रकारिता - डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा

18. कनाडा में हिंदी पत्रकारिता - डॉ. जवाहर कर्नावट

19. ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी का भविष्य - डॉ. साईनाथ विट्ठल चपले

भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप और विकास

- डॉ. परमानन्द पांचाल
दिल्ली, भारत

भारत और अरब देशों के व्यापारिक संबंध इस्लाम के अभ्युदय से भी बहुत प्राचीन है। प्राचीन काल में अरबों के व्यापारिक जहाज़ सीधे भारत के पश्चिमी तट के बंदरगाहों पर आते थे और यहाँ से माल लेकर अरब और यूरोप के देशों तक जाते थे। उनके लिए व्यापार का लेन-देन भारतीय अंकों में रखना ही सुविधाजनक रहता था। अरब और यूरोप के देशों में गणित का इतना विकास नहीं हुआ था। अरब वाले स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उन्होंने 1 से 9 तक के अंक लिखने का ढंग हिंदुओं से सीखा और इसलिए अरब वाले अंकों को “हिंदसा" और इस प्रणाली को “हिसाब-हिंदी” या “हिंदी हिसाब" कहते हैं। आज उर्दू में भी इसीलिए अंकों के लिए 'हिंदसा' शब्द प्रचलित है। अमीर खुसरो (1253-1325) अपनी रचना ‘नूह–सिपहर’ में भारत की महानता के पक्ष में जो दस तर्क प्रस्तुत करते हैं, उनमें चौथा तर्क यह है -

"हुज्जते चारूम रक्मे” हिंदसः बीन,
कहले जहान वजअ, न दीदंद युनीनं।
हम व यही "सिपर" केह च हज्जीश देही।
बीन चेह रमूजस्त च हज्जीश देही।"

अर्थात् चौथा तर्क “इल्मे–हिंदसा" (अंक विद्या) या अंकों को लिखने का ढंग है, जिसका उदाहरण संसार में कहीं नहीं मिलता। केवल सिफ़र (शून्य) को ही लीजिए, यह मात्र एक चिह्न है, किंतु इसमें कितने रहस्य छिपे हैं। गणित, ज्योतिष और ज्योमिति तथा विज्ञान इसके ऋणी हैं। “शून्य" के अभाव में तो इनका अस्तित्व ही न हो पाता। इस प्रकार वे कहते हैं कि "हिंदसा" भारत की देन है और “शून्य” का आविष्कार भारत में हुआ था, जिसके लिए विश्व भारत का ऋणी है। वेब्सटर की नवीन इंसाइक्लोपीडिया में भी कहा गया है कि यद्यपि प्राचीन मिस्र यूनान, रोम और बेबीलोनिया सभी ने अंक प्रणाली का विकास किया था, तथापि शून्य का किसी ने भी नहीं। छठी शती के आसपास अरब के गणितज्ञों द्वारा इसे भारत से लाकर प्रचलित किया गया था।

"हिंदसा” शब्द “हिंद” और “असा” से मिलकर बना है। “असा” नाम का एक ब्राह्मण था, जिसने अंक प्रणाली का परिचय अरबों को कराया था। उसी के नाम से "हिंदसा” शब्द का प्रचलन हुआ। इससे पता चलता है कि अंकों का प्रयोग भारत से ही अरब आदि देशों में गया था। यूरोपीय देशों में तो यह प्रणाली अरब देशों से गई थी। इसलिए यूरोप के देशों में इन्हें “अरबी अंक" अर्थात् Arabic numerals कहा जाता है, जबकि अरब वाले इन्हें हिंद से गए मानते हैं। विश्व के सभी गणित शास्त्र इन अंकों को “हिंदू-अरेबिक" अंकों के नाम से अभिहित करते हैं। जी.ए.फ़. हिल नामक गणितज्ञ ने भी अपने ग्रंथ "The Development of Numerals in Europe" में इसकी पुष्टि की है। मेसोपोटेमिया के सिवेरस सिबारेंट नामक एक पादरी द्वारा ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य में लिखी गई गणित की पुस्तक में सबसे पहले इनका प्रयोग मिलता है। लगभग इसी काल में भारतीय ज्योतिष और गणित का प्रवेश भारत से अरब के देशों में हुआ था। वहीं से स्पेन के रास्ते यूरोप के देशों में पहुँचा था।

मध्य पूर्व के देशों में इस्लाम के प्रचार के साथ बगदाद शिक्षा और ज्ञान का एक महान केंद्र बन गया था अरब यूनानी, ईरानी, यहूदी तथा अन्य देशों के विद्वान परस्पर विचार-विनिमय के लिए एकत्रित होते रहते थे। सन् 771 ई. में भारत से भी विद्वानों का एक शिष्टमंडल

मंसूर के दरबार में बगदाद गया था। उसके साथ एक पंडित गणित-ज्योतिष की एक पुस्तक जिसका नाम "बृहस्पति सिद्धांत" था, अपने साथ ले गया था। उसका वहाँ "अस्सिंद हिंद" के नाम से अरबी में अनुवाद किया गया। उसी से भारतीय अंक प्रणाली वहाँ प्रचलित हुई। मौ. सैयद सुलैमान नदवी भी इसकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि "मेरी समझ से ठीक बात यह है कि जिस "सिद्धांत" का अनुवाद हुआ था, उसी के तेरहवें और चौबीसवें प्रकरण में गणित और अंकों का उल्लेख है और उसी से यह ढंग अरबों में चला था।'

अरबी में पहले अक्षरों में संख्याएँ लिखते थे। फिर यहूदियों और यूनानियों की भांति "अ, ब, ज, द" के ढंग से (अर्थात् अ = 1, ब = 2, ज = 3 और द = 4) संख्याएँ लिखने लगे। अब भी अरबी ज्योतिष में संक्षेप और शुद्ध लिखने के लिए यह पद्धति प्रचलित है। इसी आधार पर "बिस्मिल्ला उर्रहमान रहीम" लिखने के लिए केवल 786 ही लिखना पर्याप्त माना जाता है। रोमन सभ्यता में रोमन लिपि के अक्षरों द्वारा संख्याएँ बताई जाती थीं। आज भी रोमन अंक उसी प्रकार प्रचलित हैं, जैसे I, II, III, IV, V आदि। इसमें यदि 313 लिखना हो, तो तीन बार सौ का चिह्न और फिर दस का तथा तीन बार एक-एक का चिह्न बनाना पड़ेगा, जैसे cccx III यह पद्धति जटिल थी। भारतीयों ने 1 से 9 तक प्रत्येक अंक के लिए चिह्न निश्चित कर लिये। "शून्य" का आविष्कार भी सर्वप्रथम भारत में हुआ, जो गणित शास्त्र में एक महान उपलब्धि मानी जाती है। संख्याओं को अंकों द्वारा अभिव्यक्त करने, शून्य को लगाकर इनका दस गुणा मान बढ़ाने तथा इकाई, दहाई आदि स्थानों के मान निर्धारित करने की गणित-शास्त्रीय पद्धति सबसे पहले भारत में निकली थी, जो अन्य देशों में जाकर अंतरराष्ट्रीय रूप में प्रचलित हुई थी। यह एक माना हुआ ऐतिहासिक तथ्य है। इसे ही 'दशमलव' प्रणाली कहा जाता है।

अरब में भारतीय अंकों के सबसे पहले प्रयोग का श्रेय मुहम्मद बिन मूसा ख्वारिज़्मी (780-840 ई.) को जाता है। उसी ने भारतीय हिसाब को अरबी साँचे में ढाला।' यही रूप अंदलुस के मार्ग से यूरोप पहुँचा। यूरोप में गणित की एक शाखा को Algorithm, Algoritom, Algorism कहते हैं। यह सब इसी अलख्वारिज़्मी के बिगड़े हुए रूप हैं। अलख्वारिज़्मी के अरबी ग्रंथ का लगभग 1120 ई. में एडेलॉर्ड ऑफ़ बाथ ने लैटिन में अनुवाद किया, जिसका नाम है "Liber Algorismi De Numero Indorum"। इस पुस्तक ने यूरोप और इंग्लैंड में इन अंकों को फैलाया। इन्हीं भारतीय अंकों को "हिसाब गुब्बार" अर्थात् धूल के अंक भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि हिंदू लोग बच्चों को ज़मीन या धूल पर अंक लिखना 'धूलि कर्म' सिखाते थे। इसलिए इन्हें "हिसाबुल गुब्बार" कहा जाने लगा। गुब्बार का अर्थ है, धूल। यूरोप के अंक इन्हीं गुब्बारी अंकों से निकले हैं। अलबरूनी भी इसी मत का समर्थन करता है।' अरब में अंकों का दो प्रकार से विकास हुआ। पश्चिमी अरब में गुब्बारी प्रणाली का विकास हुआ, जिसका विकसित रूप यूरोप के देशों में फैला और पूर्वी अरब के देशों में अरबों ने जो अंक प्रणाली अपनाई, वही आज भी प्रचलित है।

इससे स्पष्ट है कि ये अंक अरब के नहीं, अरब से बाहर के हैं। इसका एक कारण यह भी है कि अरबी लिपि की लेखन-प्रणाली के ठीक विपरीत ये अंक बाएँ से दाएँ लिखे जाते हैं।

अलख्वारिज़्मी के बाद मुसलमानों में भारतीय गणित का प्रचार करने वाला दूसरा व्यक्ति, अली बिन अहमद नसवी (980-1040 ई.) है, जिसने "अलमुकन्नअ फिल हिसाबिल हिंदी" नामक पुस्तक लिखी। कहा जाता है कि प्रसिद्ध हकीम और दार्शनिक बू-अली सैना (1015 ई.) ने बचपन में यह भारतीय हिसाब एक कुजड़े से सीखा था। इससे पता चलता है कि भारतीय गणित सर्व साधारण में चल पड़ी थी। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के खंड 19 में दिए गए वर्णन से पता चलता है कि हिसाब रखने का यह ढंग भारत से चलकर अरब के रास्ते किस प्रकार यूरोप पहुँचा।

यूरोप में इस प्रणाली के विलंब से पहुँचने पर पश्चाताप करते हुए "प्रिंस ऑफ़ मैथेमेटिक्स" कहे जाने वाले कार्ल फ़्रेड्रिक गौस ने कहा था कि ईसा पूर्व की तीसरी सदी में आर्शामिदस भारतीय अंक प्रणाली का पूर्वानुमान नहीं कर सका, नहीं तो विज्ञान कितना विकसित हो गया होता। भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी में, जिससे भारत की प्रायः सभी भाषाओं (उर्दू को छोड़कर) की लिपियाँ निकली हैं, अंतरराष्ट्रीय अंकों का प्रयोग मिलता है। श्री कलानाथ शास्त्री के अनुसार ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के नानाघाट के शिला लेखों में 2, 4, 6, 7 और 9 अंतरराष्ट्रीय अंक ही प्रयुक्त पाए गए हैं। नासिक की गुफ़ाओं में ईसा की पहली और दूसरी सदी के शिलालेखों में 2, 3, 4, 5, 6, 7 और 9 अंतरराष्ट्रीय अंक मिले हैं। इसी प्रकार 250 ई. पू. के अशोक के शिलालेखों में भी 1, 4 और 6 अंक अंतरराष्ट्रीय रूप में प्रयुक्त हैं। कालांतर में भारतीय भाषाओं के अंकों में परिवर्तन होता गया। देवनागरी के अंक भी प्राचीन ब्राह्मी लिपि के अंकों का ही विकसित रूप है। यहाँ पर यह बताना भी अप्रासंगिक न होगा कि हिंद महासागर में स्थित मालदीव गणराज्य की भाषा "दिवेही" में तो संख्याओं को बोलने का ढंग भी हिंदी से मिलता जुलता है। दोनों देशों की संख्याओं के उच्चारण में अद्‌भुत साम्य है।

इन तथ्यों के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अंतरराष्ट्रीय रूप में प्रचलित वर्तमान अंक, जिन्हें अंग्रेज़ी या अरेबिक कहा जाता है, भारतीय अंकों का ही रूप है, जो भारत से ही विदेशों में गए थे और अब जिन्हें भारतीय संविधान में राजभाषा हिंदी के लिए स्वीकार किया गया है।

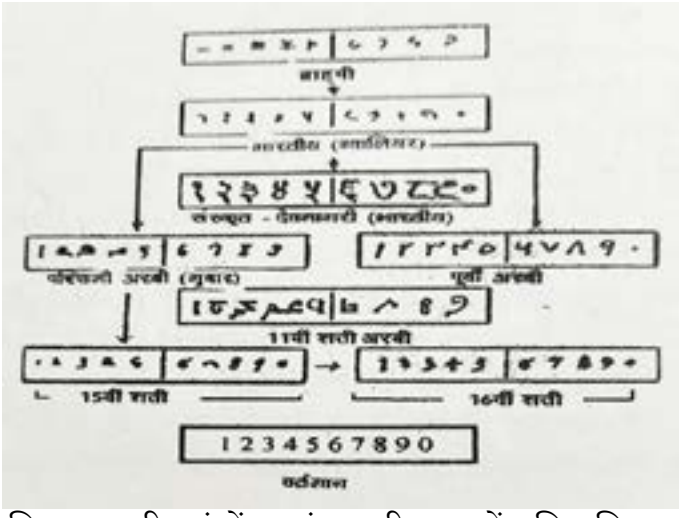

चित्र : भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप में क्रमिक विकास

संदर्भ :

1. तारीखुल् अतविया, खंड-2, पृ. 35 (मिस्र)
2. The ancient Egyptians, Greek, Roman and Babylonian all evolved number system, although none had a zero which was introduced from India by way of Arab mathematicians in about the 6th century A.D. - Page 818 Western's New World Encyclopedia, 1992.
3. अरब और भारत के संबंध : मौ. सय्यद सुलेमान नदवी, पृ. 109
4. तबकातुल उम्मा साइद अंदलसी, पृ. 14 (बरूत)
5. Al Beruni reported that in Hindus frequently performed computations in the sand and his statement suggests a possible origin - Collier's Encyclopedia Vol.8, Page 13.
6. Thus use of zero and the use of Western Arabic (Gobar), numerals are spread throughout Europe in the 10th Century principally by the effect of Gerbert, who later became pope Sylwester II. - the new Encyclopedia Britannica, Vol. 16, Page.

pnpanchal30@gmail.com

हिंदी सिनेमा में गांधी

- श्री राजेश अहिरवार
वर्धा महाराष्ट्र, भारत

आधुनिक भारत का चिंतन महात्मा गांधी के बिना अधूरा ही रहेगा। महात्मा गांधी ने आधुनिक भारत के सामाजिक ताने-बाने को आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर व्यापक रूप से प्रभावित किया है। गांधी जी आज भी भारत की शिक्षा, संस्कृति एवं राजनीति में ज़िंदा हैं। शिक्षित और अशिक्षित लोगों को समान रूप से प्रभावित करने वाले जनसंचार के सबसे प्रभावी माध्यम सिनेमा का गांधी जी ने कभी प्रयोग नहीं किया। जबकि सिनेमा का जन्म उसका पल्लवन और लोकप्रियता का दौर उनके जीवन काल के दौरान ही हुआ है, फिर भी उनका सिनेमा से कोई लगाव नहीं रहा। विशेष तथ्य है कि गांधी जी जीवन भर सिनेमा से विमुख रहे लेकिन उनके जीवन, आचरण और विचारधारा ने सिनेमा को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। न केवल गांधी जी पर फ़िल्में बनी हैं, बल्कि उनके आचरण और विचारधारा का भी हिंदी सिनेमा में चित्रण हुआ है। उन्होंने अपने जीवन में मात्र दो फ़िल्में देखीं। लेकिन गांधी जी के जीवन तथा विचारों ने सिर्फ़ भारतीय सिनेमा को ही नहीं, बल्कि विश्व सिनेमा को भी आकर्षित किया है। युवा पीढ़ी को सिनेमा ने गांधी जी की संवेदनाओं का अहसास कराया है। फ़िल्मकार और फ़िल्म प्रशिक्षक कुलदीप सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'फ़िल्म निर्देशन' में लिखा है कि "फ़िल्म का एक दृश्य हज़ार शब्दों की तुलना में ज़्यादा प्रभावी होता है।"

आज गांधी जी के नाम पर विभिन्न शिक्षण संस्थान हैं, विश्वविद्यालयों में गांधी एवं शांति अध्ययन विषय पढ़ाया जा रहा है। भारतीय मुद्रा के माध्यम से हम प्रतिदिन उनका स्मरण करते हैं। विचारणीय बिन्दु यह है कि भारत ने गांधी जी की विचारधारा से ज़्यादा गांधी जी को अपनाया है। हिंदी सिनेमा में न केवल गांधी जी पर, बल्कि उनकी विचारधारा पर भी फ़िल्में बनी हैं। जिसमें गांधी जी के जीवन और विचारधारा को समझा जा सकता है।

जितने लोगों ने महात्मा गांधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' एवं उनकी अन्य किताबें नहीं पढ़ी होगी, उससे कई गुना ज़्यादा लोगों ने उनके जीवन चरित्र और विचारों से प्रेरित फ़िल्में देखी होंगी। निश्चित रूप से इन फ़िल्मों ने आज की युवा पीढ़ी और समकालीन दर्शकों को गांधी जी के विचारों से परिचित कराया हैं। हिंदी सिनेमा में, 'लगे रहो मुन्ना भाई', 'गांधी माई फ़ादर', 'हे राम', 'रोड टू संगम' जैसी फ़िल्मों ने गांधी जी के विचारों को बड़े रोचक एवं मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया है। गांधी जी का 1915 में दक्षिण अफ़्रीका से भारत आगमन हुआ। दादा साहब फाल्के ने 1913 में 'राजा हरिश्चंद्र' फ़िल्म से भारतीय सिनेमा का शुभारंभ किया। इस दौर में फ़िल्में मुख्यत: पौराणिक एवं धार्मिक कथानकों पर ही बन रही थीं। 'मोहिनी भस्मासुर' 1913, 'सत्यवान सावित्री' 1917 इत्यादि। इसका उद्देश्य भारतीय जनता को इन कथाओं से परिचित कराना था। महात्मा गांधी का देशव्यापी जनजागृति का अभियान और भारतीय सिनेमा का विकास तत्कालीन समय में, साथ-साथ ही प्रगति के पथ पर अग्रसर था। भारतीय जनता में गांधी के प्रति आस्था और सिनेमा का जादू निरंतर बढ़ रहा था। 1920 तक आते-आते सिनेमा अपनी संचार की शक्ति व महत्त्व को समझने लगा था। 1920 में महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ 'असहयोग आंदोलन' छेड़कर स्वराज्य के प्रति अपने इरादे स्पष्ट कर दिये थे। 1921

में महात्मा गांधी और राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित 'भक्त विदुर' फ़िल्म रिलीज़ हुई। इस फ़िल्म के नायक का स्वरूप महात्मा गांधी जैसा था। इस फ़िल्म में नायक को वस्त्र सज्जा व मेकअप से महात्मा गांधी की तरह स्वरूप प्रदान किया गया था। फ़िल्म का उद्देश्य व्यवसाय के साथ भारतीय जनता में स्वराज्य की भावना का संचार करना था। ब्रिटिश सरकार ने इस फ़िल्म का संज्ञान लेते हुए, इसे प्रतिबंधित कर दिया। भारतीय सिनेमा के इतिहास में प्रतिबंधित होने वाली यह पहली फ़िल्म थी। सेंसर बोर्ड ने तर्क दिया था कि इस फ़िल्म का नायक विदुर नहीं गांधी लग रहा है, यह फ़िल्म जनता में सरकार के प्रति असंतोष पैदा कर सकती है। इस फ़िल्म ने स्वराज्य के प्रति जन चेतना जागृत करने का प्रयास किया था। इस फ़िल्म का निर्माण कोहिनूर फ़िल्म कंपनी एवं निर्देशन कंजीभाई राठौड़ ने किया था। फ़िल्म में विदुर का किरदार द्वारका दास संपत ने निभाया था। यहाँ एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सिनेमा की संचार-शक्ति को भारत में अंग्रेज़ों ने सबसे पहले पहचाना।

1922 में 'चौरी चौरा' की घटना से महात्मा गांधी काफ़ी आहत हुए और उन्होंने 'असहयोग आंदोलन' वापस ले लिया। लेकिन गांधी जी ने भारतीय स्वराज्य के लिए तीव्रता से प्रयास जारी रखे। भारतीय सिनेमा भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित फ़िल्में बनाकर, भारतीय जनता में स्वराज्य के प्रति जागृति का संचार कर, स्वाधीनता आंदोलन में यथा संभव योगदान दे रहा था। इस दौर की फ़िल्मों में 'वंदेमातरम्', 'आश्रम' 1927, 'स्वराज' 1931, 'धरती माँ' 1936, आदि प्रमुख फ़िल्में हैं। गांधी जी ने 1930 में 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' शुरू कर स्वराज्य की माँग तेज़ कर दी। भारतीय सिनेमा भी 1931 में 'स्वराज्य' जैसी फ़िल्मों से दर्शकों में स्वाधीनता का अलख जगा रहा था।

संसार को अपनी फ़िल्मों एवं अभिनय से प्रभावित करने वाले चार्ली चैपलिन की गांधी जी से 1931 में भेंट वार्ता हुई। इस मुलाकात के दौरान गांधी जी और चैपलिन के बीच दुनिया में हो रहे मशीनीकरण को लेकर बात हुई। मशीनीकरण से मज़दूरों के लिए रोज़गार के कम होते अवसरों पर गांधी जी चिंतित थे। यहीं से चैपलिन को मशीनीकरण पर फ़िल्म बनाने का विचार आया और आगे चलकर 'द मॉडर्न टाइम' नामक फ़िल्म से, यह विषय फ़िल्मी पर्दे पर साकार हुआ। गांधी जी को बड़ा प्रभावशाली जनसंचार संवादक माना जाता है। उनकी पत्रकारिता एवं संवाद-कौशल की शैली जनसंचार के छात्रों को पढ़ाई जाती है। गांधीजी से प्रभावित होकर चैपलिन ने एक महान् फ़िल्म रच दी। किंतु चैपलिन की भेंटवार्ता भी गांधीजी में सिनेमा के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं जगा सकी।

महात्मा गांधी ने 1942 में 'भारत छोड़ो आंदोलन' शुरू कर, "करो या मरो" का नारा दिया और ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ निर्णायक रूप से मोर्चा खोल दिया। अब ब्रिटिश सरकार को अहसास हो चुका था कि भारत में अधिक समय तक शासन करना संभव नहीं है। इस दौरान भारतीय हिंदी सिनेमा भी अपनी फ़िल्मों से जनता में देश-प्रेम की भावना का निरंतर संचार कर रहा था। बॉम्बे टॉकीज़ की फ़िल्म 'किस्मत' 1943 का गीत 'हिमालय की चोटी से हमने ललकारा है, दूर हटो ऐ दुनिया वालो यह देश हमारा है' लोगों में स्वाधीनता के प्रति जोश भर रहा था। यह गीत संज्ञान में आते ही ब्रिटिश सरकार ने कवि प्रदीप का गिरफ़्तारी वारंट जारी किया था। गांधी जी ने अपने जीवन में सिर्फ़ दो फ़िल्में देखी 'मिशन टू मॉस्को' एवं विजय भट्ट निर्देशित फ़िल्म 'राम राज्य', यह दोनों ही फ़िल्में सन् 1943 की हैं। निश्चित तौर पर गांधी जी सिनेमा प्रेमी नहीं थे। इसके कई कारण हो सकते हैं, उन्हें सिनेमा पसंद न हो, उनके पास सिनेमा देखने के लिए समय न हो आदि। जिस सिनेमा से गांधी जी विमुख रहे, उस सिनेमा ने गांधी जी के विचारों को उनके समकालीन समय में ही महत्त्व देना शुरू कर दिया था।

विभाजन की विभीषिका के साथ 15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद हुआ। स्वाधीनता के कुछ समय

बाद ही 1948 में गांधी जी की हत्या कर दी गई। उसके बाद महात्मा गांधी और उनके विचारों को हम किताबों के माध्यम से ही जानते-समझते रहे। शिक्षित व्यक्ति ही एक बार में एक किताब पढ़ सकता है। लेकिन सिनेमा अपनी अभिव्यक्ति के विशेष गुण से विशाल जनसमूह को अपने उद्देश्य से जीवंत रूप से परिचित कराता है। गांधी जी की मृत्यु के बाद तीन दशक तक सिनेमा जगत उदासीन रहा। 1982 में रिचर्ड एडनबरो ने 'गांधी' फ़िल्म का निर्माण कर, गांधी को फ़िल्मी पर्दे पर संवेदनाओं के साथ जीवंत कर दिया।

रिचर्ड एडनबरो की फ़िल्म 'गांधी' का प्रस्तुतीकरण इतना जीवंत है कि दर्शक उस दौर के हालात और संवेदनाओं को महसूस कर सकते हैं। फ़िल्म एक सामान्य सुबह से शुरू होती है। इस सुबह का फ़िल्म निर्देशक ने बड़ा ही प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। दिल्ली में प्रार्थना के लिए जाते समय गांधी जी की हत्या हो जाती है। इसके आगे फ़िल्म गांधी जी के अन्य जीवन चरित्र से रूबरू कराती है। इस फ़िल्म का वह दृश्य जिसमें गांधी जी यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ़ लंदन से कानून की डिग्री प्राप्त कर सूट-बूट पहने, सभ्य सुसंस्कृत व्यवहार के साथ वैध टिकिट से ट्रेन के प्रथम श्रेणी कोच में यात्रा कर रहे हैं। 7 जून, 1893 को अश्वेत होने के कारण ट्रेन से दक्षिण अफ़्रीका के पीटरमेरित्ज़बर्ग रेलवे स्टेशन पर उन्हें धक्के मारकर उतार दिया गया था। इस अपमानजनक घटना से गांधी जी को गहरा आघात लगा। उन्होंने ठंड भरी रात उस स्टेशन के प्रतीक्षा-गृह में गुज़ारी। वे रात भर इस घटना के विषय में सोच कर आहत होते रहे। उनके पास तीन विकल्प थे भारत लौट जाना, जैसा चल रहा है, उसे नियति के सहारे छोड़ देना या प्रतिरोध करना। उन्होंने प्रतिरोध को चुना और रंगभेद की नीति के खिलाफ़ जंग शुरू कर दी, अभी तक वे सिर्फ़ मोहनदास करमचंद गांधी थे, यहीं से महात्मा गांधी बनने के मार्ग पर वे अग्रसर होते हैं और अपनी जंग के लिए 'सत्य और अहिंसा' रूपी शक्ति का प्रयोग करते हैं। इस फ़िल्म में बेन किंसले ने इतना जीवंत अभिनय किया कि दर्शकों को ऐसा लगता है, जैसे वे वास्तव में गांधी को देख रहे हों। इस फ़िल्म के जीवंत प्रस्तुतीकरण ने इसे अत्यधिक प्रभावशाली बना दिया। इस फ़िल्म को अभिनय, निर्देशन, विदेशी भाषा की श्रेणी सहित कुल 8 ऑस्कर पुरस्कार प्राप्त हुए। भारतीय मेकअप आर्टिस्ट भानु अथैया को भी इस फ़िल्म के लिए ऑस्कर पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस फ़िल्म से भारत को पहला ऑस्कर पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस फ़िल्म के बाद फिर से गांधी जी हिंदी सिनेमा के पर्दे पर जीवंत हुए। दर्शकों ने गांधी जी को उनकी विचारधारा के साथ विभिन्न हिंदी फ़िल्मों में देखा और जाना, खासकर युवा पीढ़ी ने। केतन मेहता निर्देशित फ़िल्म 'सरदार' (1993) जिसमें गांधी जी का किरदार अन्नू कपूर और सरदार पटेल का किरदार परेश रावल ने निभाया है। यह फ़िल्म मुख्यत: सरदार वल्लभभाई पटेल के जीवन पर आधारित है। इस फ़िल्म में गांधी जी और पटेल के वैचारिक मतभेद एवं संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। यह फ़िल्म दो महान नेताओं की विचारधाराओं पर प्रकाश डालती है, लेकिन उनके लिए राष्ट्र सर्वोपरि होता है। यह फ़िल्म सिर्फ़ पटेल के जीवन को प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि राष्ट्र के प्रति गांधी के विचारों का भी चित्रण करती है। हिंदी सिनेमा में अगला प्रयास श्याम बेनेगल ने 'द मेकिंग ऑफ़ गांधी' (1996) बनाकर मोहनदास करमचंद गांधी से महात्मा गांधी बनने की प्रक्रिया का सार्थक प्रस्तुतीकरण किया है। यह फ़िल्म लेखिका फ़ातिमा मीर की किताब 'द अप्रेंटिसशिप ऑफ़ ए महात्मा' पर आधारित है। फ़िल्म में मुख्य भूमिका रंजित कपूर ने निभाई है।

जब्बार पटेल निर्देशित फ़िल्म 'डॉ. बाबा साहब अंबेडकर' सन् 2000 में प्रदर्शित हुई थी। यह फ़िल्म मुख्य रूप से डॉ. अंबेडकर के जीवन-संघर्ष का मार्मिक चित्रण सिनेमाई पर्दे पर प्रस्तुत करती है। इस फ़िल्म में गांधी जी और बाबा साहब अंबेडकर के सिद्धांत और वैचारिक मतभेद को भी समझा जा सकता है। यह फ़िल्म निर्णायक मोड़ पर महात्मा गांधी के साथ ही पहुँचती है। गांधी जी

बहुजन समाज को प्राप्त मैकडोनाल्ड/कम्युनल अवार्ड के विरोध में पुणे की यरवडा जेल में आमरण अनशन पर बैठ जाते हैं। बाबा साहब किसी भी कीमत पर कम्युनल अवार्ड को निरस्त करने के प्रपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए राज़ी नहीं थे। गांधी जी का निरंतर गिरता स्वास्थ्य अत्यधिक बिगड़ती हालत के चलते बाबा साहब ने भारी दबाव के कारण, बहुत पीड़ा के साथ प्रपत्र पर हस्ताक्षर किए और महात्मा गांधी ने अपना आमरण अनशन तोड़ा। इसे पूना पैक्ट के नाम से भी जाना जाता है। यहीं से पर्याप्त मोल-तोल के साथ वर्तमान आरक्षण व्यवस्था का उदय हुआ, जिसमें महात्मा गांधी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, पर इसके लिए हमेशा बाबा साहब को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। इस पूरे घटनाक्रम को यह फ़िल्म जीवंत रूप से प्रस्तुत करती है। बाबा साहब की भूमिका ममूटी ने एवं गांधी जी का किरदार मोहन गोखले ने निभाया है।

अभिनेता, निर्माता, निर्देशक कमल हासन ने 'हे राम' सन् 2000 में बनाई। यह फ़िल्म भारत विभाजन पर आधारित है। इस फ़िल्म में भारत विभाजन से उपजी अराजकता और हालात का चित्रण किया गया है। यह फ़िल्म विभाजन से लेकर महात्मा गांधी की हत्या तक का घटनाक्रम दर्शाती है। इस फ़िल्म में महात्मा गांधी का चरित्र नसीरुद्दीन शाह ने अदा किया है। राजकुमार संतोषी द्वारा निर्देशित 'द लीजेंड ऑफ़ भगत सिंह' (2002) फ़िल्म में भगत सिंह को गांधी जी से प्रेरित होने और विचारों में भेद के कारण उत्पन्न होने वाले द्वंद को प्रभावी रूप से दिखाया गया है। भगत सिंह, गांधी जी का सम्मान करते थे, लेकिन देश की आज़ादी को लेकर दोनों के दृष्टिकोण भिन्न थे। निर्देशक ने भगत सिंह और महात्मा गांधी के बीच के मतभेदों को सार्थक रूप में दर्शाया है। फ़िल्म में गांधी जी की भूमिका सुरेंद्र रंजन ने पर्दे पर साकार की है। जहानु बरुआ निर्देशित 'मैंने गांधी को नहीं मारा' सन् 2005 में प्रदर्शित, एक अलग प्रकार की फ़िल्म है, जिसमें गांधी जी की प्रत्यक्ष भूमिका नहीं है। यह फ़िल्म हिंदी के सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर उत्तम चौधरी की कहानी है। उत्तम का किरदार अनुपम खेर ने निभाया है। वह डिमेंशिया (एक प्रकार के मनोरोग) से पीड़ित है। यह फ़िल्म एक ऐसे व्यक्ति की मनःस्थिति प्रदर्शित करती है, जिसे अहसास होता है कि गलती से उसने गांधी जी की हत्या कर दी। प्रोफ़ेसर के बच्चे डॉक्टर्स की सहायता लेकर, यह विश्वास दिलाते हैं कि आपने गांधीजी को नहीं मारा। दरअसल फ़िल्म इस बात की ओर इशारा करती है कि आज हमने गांधी जी के विचारों और आदर्शों को मार दिया है, जबकि उनकी मूर्तियों को पूजा जा रहा है।

राजकुमार हिरानी की 2007 में प्रदर्शित फ़िल्म 'लगे रहो मुन्ना भाई' हास्य व्यंग्यात्मक शैली की फ़िल्म है। इस फ़िल्म में डॉन मुन्ना भाई और गांधी जी के आदर्शों का चित्रण किया गया है। एक घटनाक्रम के चलते मुन्ना भाई को पुस्तकालय में जाकर गांधी जी से संबंधित साहित्य का अध्ययन करना पड़ता है। जहाँ उसे गांधी जी दिखाई देते हैं, वह गांधी जी की शिक्षा के अनुसार लोगों की समस्याएँ हल करने लगता है। जिसे 'गांधीगिरी' नाम दिया जाता है। यह फ़िल्म स्पष्ट करती है कि गांधी जी के आदर्श आज भी प्रासंगिक हैं। इस फ़िल्म में गांधी जी दिलीप प्रभालकर और मुन्ना भाई संजय दत्त बने हैं।

फ़िरोज़ अब्बास मस्तान निर्देशित 'गांधी माय फ़ादर' (2007) गांधी जी के पारिवारिक रिश्तों पर आधारित फ़िल्म है। यह फ़िल्म गांधी जी के पारिवारिक व्यक्तित्व को दर्शाती है। इस फ़िल्म में गांधी जी और उनके बड़े बेटे हरीलाल के संबंधों को सुंदर तरीके से प्रस्तुत किया गया है। इस फ़िल्म में गांधी की भूमिका दर्शन ज़रीबाला और उनके पुत्र की भूमिका अक्षय खन्ना ने निभाई है।

2010 में प्रदर्शित अमित राय की फ़िल्म 'रोड टू संगम' एक विशेष प्रकार की फ़िल्म है। इस फ़िल्म में गांधी जी की प्रत्यक्ष भूमिका नहीं है। इलाहाबाद के नामी मोटर मिस्त्री हशमत उल्लाह के पास एक पुरानी फ़ोर्ड वी8 गाड़ी का इंजन ठीक होने के लिए आता है। जिस गाड़ी में महात्मा गांधी की अस्थियों को रखकर, इलाहाबाद के त्रिवेणी संगम में विसर्जित करने के लिए ले जाना है। इस दौरान शहर के हालात बिगड़ जाते हैं। कुछ दिन पूर्व हुए बम धमाकों की जाँच के चलते मुस्लिम लड़कों को पुलिस

उठाना शुरू कर देती है। कुछ मुस्लिम नेता रैली, हड़ताल कर अपना विरोध दर्ज कराते हैं। मुस्लिम लोगों को काम नहीं करने दिया जाता, हशमत उल्लाह को भी वी8 गाड़ी का इंजन ठीक करने से रोका जाता है। हिंदू मुस्लिम की दुहाई दी जाती है। फ़रमान जारी किया जाता है तथा उनके साथ हिंसात्मक व्यवहार किया जाता है। अंततः इंजन बन जाता है और गांधी जी की अस्थियाँ विसर्जन के लिए संगम जाती है। फ़िल्म बहुत उम्दा तरीके से बताती है कि हिंदू, मुस्लिम, जाति, धर्म इन सबसे ऊपर राष्ट्र होता है। यह फ़िल्म स्व. ओम पुरी और परेश रावल के दमदार अभिनय से सजी है।

राकेश रंजन कुमार निर्देशित 'गांधी टू हिटलर' 2011 में प्रदर्शित हुई थी। फ़िल्म में रघुवीर यादव हिटलर और अवजीत दत्त ने गांधी जी की भूमिका निभाई है। यह फ़िल्म 'द डाउन फ़ॉल लेटर्स' पर आधारित है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान गांधी जी ने हिटलर को 23 जुलाई 1939 तथा 24 दिसंबर, 1940 को पत्र लिखकर मानवता की रक्षा हेतु अपील की थी। हिटलर ने गांधी जी की अपील को नज़रअंदाज़ कर दिया। इस फ़िल्म ने गांधी जी की 'सत्य अहिंसा' की शक्ति को, भारत की आज़ादी में उसके महत्त्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष -

महात्मा गांधी का ब्रिटिश उपनिवेशवाद से भारत को स्वतंत्र कराने में महान योगदान है। उनके पास सत्य और अहिंसा रूपी दो प्रमुख शक्तियाँ थीं। तत्कालीन समय से लेकर वर्तमान समय तक न केवल भारत, बल्कि विश्व में उनका विशेष सम्मान है। स्वाधीनता के आंदोलन में गांधी जी के अलावा और भी लोगों का उल्लेखनीय योगदान है, जिसे नकारा नहीं जा सकता, जैसे भगत सिंह, पटेल, नेहरू आदि। ऐसा नहीं है कि स्वाधीनता के प्रत्येक मोर्चे पर सभी लोग गांधी जी से सहमत थे। उनमें वैचारिक और स्वरूपात्मक मतभेद थे। हिंदी सिनेमा में न केवल गांधी जी के जीवन का चित्रण हुआ है, बल्कि उनके समकालीन नेताओं, क्रांतिकारियों, समाज सुधारकों के विभिन्न दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किये गए हैं। गांधी जी ने कहा था कि "मेरा जीवन ही मेरा संदेश है" भारत में गांधी जी को भारतीय मुद्रा पर उतार दिया गया है, उनकी मूर्तियाँ बनाई गई है। उनके नाम पर अनेक आयोजन होते हैं। उनको पूजा जा रहा है, लेकिन उनकी सोच को जीया नहीं जाता है। उनके विचारों और आदर्शों को अपनाया नहीं जाता है। यह बहुत हद तक सत्य भी है और हिंदी सिनेमा में इसका सार्थक प्रस्तुतीकरण हुआ है। उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि गांधी जी आज भी प्रासंगिक हैं तथा उनके दर्शन चिंतनीय हैं।

संदर्भ सूची :

1. मो.क. गांधी, अनुवाद काशीनाथ त्रिवेदी, सत्य के प्रयोग, विवेक जितेंद्र देसाई-नव जीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, 2015
2. मिश्रा एम. के., कमल दाधीच, गांधी दर्शन, प्रथम संस्करण, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2011
3. प्रहलाद अग्रवाल, हिंदी सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, प्रथम संस्करण, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009
4. चड्डा मनमोहन, हिंदी सिनेमा का इतिहास, प्रथम संस्करण, सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
5. सिन्हा प्रसून, 'भारतीय सिनेमा ...एक अनंत यात्रा', नटराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 2006
6. रयाज हसन, सिनेमा का उद्भव विकास, खंडेलवाल पब्लिसर्श एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण, जयपुर, 2013
7. माथुर श्याम, सिने पत्रकारिता, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, प्रथम संस्करण, जयपुर, 2008
8. फिशर लुई, गांधी की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
9. https://www.jagran.com/entertainment/bolly-wood-cinema-and-gandhi-ji

rrk.sir@gmail.com

मीडिया की दुनिया और नागरिक पत्रकारिता

- डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा
नई दिल्ली, भारत

वर्तमान नागरिक समाज अपने आस-पास होने वाली घटनाओं और बदलावों को स्वयं देखने का अभ्यस्त होता जा रहा है। अनेक स्थानों पर वह स्वयं अपनी उपस्थिति दर्शाता है। वस्तुतः सत्य और यकीन को प्रस्थापित करने में मीडिया को खासी ज़ोर-आज़माइश करनी पड़ रही है। पूर्व में उसके द्वारा की गई कुछ त्रुटियों एवं विसंगतियों की वजह से आम नागरिक का मन, उसके द्वारा दिखाए गए सत्य से डगमगाया है। मीडिया की टी.आर.पी. संस्कृति और ब्रेकिंग न्यूज़ शैली ने आम आदमी को किंचित उदासीन कर दिया है। एक स्वस्थ लोकतंत्र हेतु नागरिक पत्रकारिता का विकास परमावश्यक है।

बीज शब्द :

1. नागरिक पत्रकारिता 2. ऑनलाइन 3. मोबाइल 4. पावर 5. वर्चुअल संसार 6.गेटकीपर 7. व्हिसल ब्लोअर 8. वर्चुअल उपस्थिति

प्रत्यक्ष हस्तक्षेप की सीमितता के कारण आम व्यक्ति मीडिया से मोहभंग की स्थिति में आ गया है। वैसे भी मीडिया के केन्द्र में या उसके प्रयोजन में आम नागरिक अभी भी अनुकूल वातावरण की तलाश में ही है। मीडिया की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में है। सामाजिक सच की उसकी प्रस्तुति पूर्वाग्रह से ग्रसित लगती है। घटनाओं की उचित और समुचित जानकारी विज्ञापनों की आंधी में खो सी गयी है। आम नागरिक का सम्मान और संरक्षण विशिष्ट लोगों एवं उनके क्रियाकलापों की खबरों में तिरोहित हो गए हैं। इसका यह अर्थ कदापि न लिया जाना चाहिए कि लोकतंत्र में आम नागरिक की हैसियत घट गई है। भारत के केन्द्रीय एवं राज्यों में हुए आम चुनाव अधिकारों, अपनी ज़िम्मेदारियों और अपने विवेक के प्रति सजग है, सतर्क है। कई मामलों में तो वह मीडिया से भी आगे है। जेसिका लाल हत्याकांड, निर्भया बलात्कार कांड, अन्ना आंदोलन आदि इस बात के प्रमाण हैं। इनमें आम नागरिक ने अपनी भूमिका का सम्यक निर्वाह किया और मीडिया और सत्ता तंत्र का अपनी सामूहिक ताकत से ध्यानाकर्षण कराया, जिससे दोनों को इन पर ध्यान देना पड़ा और मीडिया की व्यापक कवरेज के बाद कठोर कानून बनाने का मार्ग सुलभ हो सका।

कहा जा सकता है कि लोकतंत्र में आम नागरिक का अपना महत्त्व है। एक सामान्य मतदाता होने के साथ-साथ वह तकनीकी युग में उपभोक्ता की भूमिका में भी रहता है। मीडिया का आकर्षण सदैव उसे अपनी तरफ़ खींचता रहता है। सम-सामयिक मुद्दों पर आम नागरिक 'वर्चुअल संसार' में अपनी राय प्रदर्शित करता रहता है। एक ज़िम्मेदार नागरिक होने के नाते वह अपनी उपस्थिति को देश-हित में लगाना चाहता है। आम नागरिक अपने परिवार, देश, समाज, और पर्यावरण के प्रति ज़िम्मेदारी के निर्वहन में पीछे नहीं हटता है। अपने दैनिक जीवन की गतिविधियों में महज़ एक दर्शक की भूमिका से इतर वह कुछ अच्छा करने की जुगत में लगा रहता है। सोशल मीडिया में उसकी उपस्थिति अपने विचारों से सबको परिचित कराने की है। इसी प्रवृत्ति के कारण वह दैननदिन जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी बनकर इंटरनेट पर प्रसारित भी कर देता है। इस पर बहस की जा सकती है कि सब कुछ 'ऑनलाइन' कर देने पर आमादा आम नागरिक वर्ग इसका किस प्रकार सकारात्मक उपयोग करे। सामाजिक दायित्व-बोध का अभाव इसकी जड़ में है। उधर मीडिया

की दुनिया से आम नागरिक के सुख-दुख की खबरें लगभग गायब है। किसान, दलित, मज़दूर, अल्पसंख्यक एवं अन्य हाशियाकृत समाज उसके एजेंडे से गायब ही है। यह एक चिंताजनक पहलू है। बावजूद इसके मीडिया की बढ़ती लोकप्रियता और पहुँच, तकनीकी दक्षता, आम नागरिक का इंटरनेट पर उदय, सोशल मीडिया में उसकी मौजूदगी और सामाजिक-राजनीतिक-धार्मिक-जातीय चेतना की वजह से एक आम नागरिक मीडिया संसार से अनिवार्य अन्तर्सम्बन्ध बनाए हुए है।

एक पत्रकार के लिए ज़रूरी यंत्र अब आपको 'मोबाइल' में एक जगह मिल जाएँगे। आम नागरिक को मोबाइल ने 'पावर' दी है। ज्ञान, सूचना, मनोरंजन की त्रयी अब मोबाइल की छोटी-सी दुनिया में समाहित हो गई है। इंटरनेट एवं मोबाइल के अधिकाधिक प्रयोग से आम नागरिक के जीवन में क्रांतिकारी बदलाव आया है। 12 मार्च, 1997 के जनसत्ता के अंक में सम्पदाकीय के अन्तर्गत इंटरनेट की प्रवृत्तियों पर लिखा गया था कि - "इंटरनेट की परिकल्पना के पीछे दुनिया के सारे ज्ञान को समाहित कर लेने की इच्छा है। यह हमारे देखते-देखते हो रहा है कि सारे पुस्तकालय, सारे संगीत के रिकॉर्ड, सारे महत्त्वपूर्ण चित्र और दुनिया भर के तमाम विषयों के न जाने कितने सारे महत्त्वपूर्ण चित्र और दुनिया भर के तमाम विषयों की न जाने कितनी स्थिर-गतिशील सूचनाएँ कुछ लोगों के कम्प्यूटर पर इंटरनेट के मार्फत आपस में सूचनाओं का आदान-प्रदान भी कर सकते हैं।"

आज कम्प्यूटर का स्थान परिवर्तित होकर मोबाइल में स्थित हो गया है। अतः प्रत्येक मोबाइल वर्तमान में मीडिया का प्रभावी सूत्र नज़र आता है। आम नागरिक इसके प्रयोग से मीडिया में अपनी सहभागिता निश्चित कर रहा है। साथ ही साथ, वह मीडिया को अन्य माध्यमों के प्रयोग द्वारा नयी राह भी दिखा रहा है। लोक के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी का अहसास और उसके हितार्थ उठाए गए आम आदमी के पत्रकारीय कदम नागरिक पत्रकारिता को जन्म देते हैं।

विश्व भर की मीडिया में इन दिनों नागरिक पत्रकारिता अर्थात् सिटीज़न जर्नलिज़्म को लेकर बहस छिड़ी हुई है। नागरिक पत्रकारिता पर व्यापक चर्चा हो रही है। इसके स्वरूप एवं क्षेत्र को लेकर बैठक की जा रही है। हालाँकि भारत में भी अब यह प्रारंभ हो चुका है। इसके भारतीय संस्करण को लेकर कुछ आशंकाएँ ज़रूर हैं, लेकिन अपेक्षाकृत नया होने के बावजूद भारत में इसे लेकर काफ़ी उत्साह है। वरिष्ठ टी.वी. पत्रकार राजदीप सरदेसाई ने अपने नए चैनल सी. एन. एन. आई. बी. एन. को लॉन्च करते वक्त नागरिक पत्रकारिता का आह्वान किया था। चैनल की प्रमुख थीम नागरिक पत्रकारिता को केन्द्र में रखकर बनाई गई थी। दर्शकों के पास महत्त्वपूर्ण खबर की क्लिप को उन्होंने अपने चैनल पर जगह दी और कई बार तो कुछ नागरिक श्रेष्ठ सिटीज़न जर्नलिस्ट के पुरस्कार से भी नवाज़े गए। इससे दर्शकों में चैनल के प्रति आकर्षण बढ़ा और इसकी देखा-देखी कई मीडिया चैनलों ने अपने यहाँ भी नागरिक पत्रकारिता को प्रारंभ कर दिया है। फ़ुटेज की डिमांड, सूचना का अधिकार और कैमरा या हैण्डीकैम से युक्त स्मार्टफ़ोन की सर्वसुलभता ने नागरिक पत्रकारिता को नए आयाम दिए हैं। नागरिक पत्रकारिता को समझाते हुए गोपाल प्रधान लिखते हैं - "इन नागरिक पत्रकारों की खूबी यह है कि वे न सिर्फ़ मुख्यधारा के समाचार मीडिया के पाठक, दर्शक और श्रोता हैं, बल्कि वे पुराने दौर के निष्क्रिय ऑडियंस की तुलना में अपने अधिकारों को लेकर सक्रिय ऑडियंस है।" वैकल्पिक मीडिया के आंदोलन में सहभागी के रूप में नागरिक पत्रकारिता का दायरा निरंतर विस्तृत होता जा रहा है। मोहन जयपाल नागरिक पत्रकारिता की अवधारणा को बताते हुए लिखते हैं - "नागरिक पत्रकारिता से अभिप्राय साझेदारी पर आधारित एक ऐसी पत्रकारिता से है, जिसमें आम नागरिक स्वयं सूचनाओं के संकलन, विश्लेषण, रिर्पोटिंग और उनके प्रकाशन-प्रसारण की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।" एक तरह से नागरिक पत्रकारिता आम व्यक्ति का मीडिया में हस्तक्षेप और वैकल्पिक मीडिया को गति

देने की भी पहचान रखती है।

नागरिक पत्रकारिता प्रत्येक नागरिक को पत्रकार बनाने की बात पर प्रारंभ होती है। मुख्यधारा के मीडिया द्वारा उपेक्षित होने पर आम नागरिक नए मंचों का निर्माण करता है। इन नए मंचों पर 'गेटकीपर' संपादक की भूमिका खत्म सी हो जाती है। एक स्वस्थ लोकतंत्र के निर्माण में स्वच्छ नागरिक पत्रकारिता ज़्यादा सहायक होती है। शेन बाउमैन और क्रिस विलिस इसे लोकतंत्र की माँग मानते हैं - "नागरिकों की इस भागीदारी का उद्देश्य स्वतंत्र, विश्वसनीय, तथ्यपूर्ण, व्यापक और प्रासंगिक सूचनाएँ मुहैया कराना है, जो कि लोकतंत्र की माँग होती है।" पत्रकारिता की सीमा में निरंतर होता विस्तार आम नागरिक को सुविधा देता है कि वह आसपास की क्लिप बनाएँ, घटनाओं और तथ्यों का ब्यौरा एकत्र करें और उन्हें लिखकर या बोलकर अन्य लोगों तक पहुँचाए। ऐसे अनेक उदाहरण अब हमारे पास मौजूद हैं, जिनसे पता चलता है कि नागरिक पत्रकारिता अपना कार्य बखूबी निभा रही है। सामाजिक जवाबदेही उसे नए मुकाम तक ले जा रही है। उसकी क्लिपिंग के आधार पर न्यूज़-निर्माण हो रहा है।

संचार के क्षेत्र में तेज़ी से हो रहे विकास के कारण परिवर्तन का स्वर सुदूर क्षेत्रों तक पहुँचा है। विशेषज्ञों का मानना है कि पत्रकारिता का झुकाव शहरीकृत रहा है। परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तन ने आम नागरिकों को जागरूक किया है। शहर के साथ-साथ गाँवों में भी तकनीक की दस्तक ने आम नागरिकों को मीडिया से जोड़ा है। अब आम नागरिक पत्रकार बनकर अपने क्षेत्र की समस्याओं को बताने का प्रयास कर रहे हैं। वस्तुतः चहुँमुखी विकास के लिए प्रत्येक नागरिक को अपनी ज़िम्मेदारी समझनी होगी। नागरिक पत्रकारिता की अवधारणा के मूल में यही है। समस्याओं को जानना, समझना और स्थितियों को सबसे अवगत कराना नागरिक पत्रकारिता का ध्येय है। इसमें आम नागरिक पत्रकार की भूमिका निभाते हैं। मीडिया की पारदर्शिता और उसकी विश्वसनीयता को बरकरार रखे जाने के लिए भी नागरिक पत्रकारिता को धन्यवाद दिया जाना चाहिए। नागरिक अब अपनी भूमिका को पहचानकर उस नवीन मंच का भरपूर इस्तेमाल करने लगे हैं। इस सन्दर्भ में मीडिया पर नज़र रखने वाला ब्लॉग 'वीर-अर्जुन' पत्रकारिता के लिए नागरिक पत्रकारिता को महत्त्वपूर्ण मानता है - "आज का दर्शक या पाठक अपनी भूमिका को बेहतर समझने लगा है। लैटर टू एडीटर या हाँ या ना के संदेश भेजने से आगे निकलकर वह किसी भी मुद्दे पर अपनी राय देने के लिए सक्रिय हो गया है। अब एक आम आदमी सूचनाओं को हथियार के तौर पर प्रयोग करने में सक्षम है।" यह सच है कि सूचना के अधिकार ने नागरिक पत्रकारिता को सशक्त बनाया है। इस अधिकार के प्रयोग से 'व्हिसल ब्लोअर' अनेक तरह की लाभदायक एवं सामुदायिक हित की जानकारी लेकर सम्बन्धित विभागों या संस्थाओं की कमज़ोरियों को उजागर कर रहे हैं। मध्य प्रदेश का व्यापम घोटाला, महाराष्ट्र का आदर्श सोसायटी घोटाला इसी तरह के मामले हैं। कई बार तो एक सामान्य नागरिक की पोस्ट की गई फ़ोटो या सूचना से कार्य की गति में तीव्रता देखी गई है। इस तरह के परिणामों से आम नागरिक का उत्साहवर्धन होता है। वह और ज़्यादा सक्रिय होकर व्यवस्था की सच्चाई को सामने लाने में सक्रिय हो जाता है।

पत्रकारिता प्रारंभ से ही चुनौतियों भरा क्षेत्र रहा है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चुनौतियों का मुकाबला करने की बदौलत ही आज पत्रकारिता अपने वर्तमान स्थान तक पहुँची है। अनेक तरह के आन्दोलनों एवं जनमत को तैयार करने में पत्रकारिता की अहम भूमिका रही है। पत्रकार की स्थिति पर बात करते हुए डॉ. रेणुका नैयर लिखती हैं - "एक पत्रकार सक्रिय रूप से समाज के प्रजातांत्रिक विकास के लिए विचार विनिमय द्वारा सामाजिक संक्रमण के लिए वातावरण तैयार करता है। राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए भी वातावरण तैयार करता है ताकि निरस्त्रीकरण तथा राष्ट्रीय विकास संभव हो सके। पत्रकार को राष्ट्रीय व

अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, घोषणाओं व निर्णयों के प्रासंगिक प्रावधानों की जानकारी होनी चाहिए।" रेणुका जी का कथन वर्तमान संदर्भों में समीचीन है, किन्तु स्थानीय या क्षेत्रीय विकास के बिना राष्ट्रीय विकास की बात बेमानी है। मुख्यधारा का मीडिया राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों को महत्ता देता है। इससे स्थानीय सार पर या कहें तो मीडिया के दायरे से अलग क्षेत्र उपेक्षित रह जाता है। ऐसे क्षेत्र के लोगों में जब सामुदायिक चेतना जन्म लेती है, तब वे यथायोग्य तरीके से अपने आपको एवं विवेचित क्षेत्र को सामने लाने का उद्यम करने लगते हैं। स्थानीय स्तर पर इससे उनमें पत्रकारीय गुण आना स्वाभाविक लगता है। शहरी स्तर पर प्रत्येक तकनीकधारी व्यक्ति मानवीय गुणों के अनुसार पत्रकार रूप धारण किए रहता है। मीडिया, सोशल मीडिया पर उसकी 'वर्चुअल उपस्थिति' इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण भी है।

नागरिक पत्रकारिता का मूल उद्देश्य किसी भी व्यक्ति के विचार को सामने लाना भी है। वह अपने आंतरिक भावों के संघर्ष को, द्वन्द्व को बाह्य जगत में स्पष्ट करने की इच्छा रखता हो। ज़रूरत बस एक 'प्लेटफ़ॉर्म' की है, जो आज की यांत्रिक दुनिया में दुर्लभ कार्य नहीं है। आम पत्रकारिता से विलग इसमें किसी डिग्री की भी आवश्यकता नहीं है। आपकी कलम, आपका फ़ोन, आपका कैमरा या रिकॉर्डर ही आपके संसाधन हैं, जो इसमें आपकी सहायता कर सकते हैं। भरपूर इच्छाशक्ति और समुचित विकास हेतु प्रतिबद्ध कोई भी आम नागरिक इनका इस्तेमाल करके भावी पत्रकारिता को नयी दिशा दे सकता है। सूचना का अधिकार जैसा कानून इसमें सहायक की भूमिका निभा सकता है। एक सक्रिय एवं जागरूक नागरिक लोकतंत्र में नागरिक पत्रकारिता के माध्यम से सकारात्मक एवं क्रियाशील भूमिका का निर्वाह कर सकता है। कहा जा सकता है कि आने वाले समय में अगर हम सब अपने उत्तरदायित्व का पालन ईमानदारीपूर्वक करने लगे, तो नागरिक पत्रकारिता सामाजिक जीवन में एक बड़ी भूमिका निभा सकती है। लोकतंत्र में सामाजिक संवाद अत्यंत आवश्यक है, इसे नागरिक पत्रकारिता सीमित क्षेत्र में ही, लेकिन संभव बनाती है।

सोशल मीडिया की लोकप्रियता ने नागरिक पत्रकारिता को उड़ान का अवसर दिया है। हालांकि नागरिक पत्रकारिता पर अनेक तरह के आरोप लगाए जाते रहे हैं, किंतु अपनी सकारात्मक पहल से इसके उन सवालों का जवाब भी दिया है। तथ्य, स्पष्टता, संतुलन, वस्तुगत अश्लीलता, व्यक्तिगत हमले, अतिहिंसा, भ्रामक अफ़वाह आदि सन्दर्भों में नागरिक पत्रकारिता शिकायतों के केन्द्र में है। संपादक का न होना उसके लिए ज़िम्मेदार माना जाता है। इस सबके बावजूद मेरा तो यही मानना है कि नागरिक पत्रकारिता का ज्यों-ज्यों विकास होगा, प्रचार-प्रसार होगा सभी शिकायतें न्यून होती जाएँगी। उसकी उड़ान और ऊँची होती जाएगी और वह अपने मकसद में कामयाब हो पाएगी। नागरिक पत्रकारिता की सफलता का एक उदाहरण "सी.जी. नेट स्वर" है, जो आदिवासी इलाकों की समस्याओं को हमारे समक्ष लाता रहा है। अंत में, यही कहना चाहता हूँ कि सरकारें भी नागरिक पत्रकारिता को प्रोत्साहित करे, जिससे पत्रकारिता अपने वास्तविक स्वरूप में लौट सके और अपने पर लग रहे आक्षेपों का जवाब दे सके। एक स्वस्थ लोकतंत्र हेतु नागरिक पत्रकारिता का विकास परमावश्यक है।

mirothamukesh@yahoo.in

कनाडा में हिंदी पत्रकारिता

- डॉ. जवाहर कर्नावट
भोपाल, भारत

कनाडा उत्तरी अमेरिका का एक विशाल देश है। इसकी आबादी लगभग 3.77 करोड़ है। यह एक विकसित देश है, जहाँ भारतीयों का आगमन सन् 1903 में प्रारंभ हो गया था। सन् 2018 में कनाडा में पंजीकृत भारतीयों की संख्या लगभग 9.94 लाख थी। भारतीयों का पहला दल कनाडा के वेंकुवर शहर में बसने के उद्देश्य से आया था, जिसमें कुल दस सिक्ख थे। इसके बाद भारतीयों का आगमन शनैः शनैः बढ़ता गया। सन् 1907 में कनाडा में पहली बार भारतीय मूल के लोगों की एक संस्था रजिस्टर्ड हुई, जिसका नाम था 'वेंकुवर खालसा दीवान सभा'।

प्रारंभ में इस सभा का कार्यक्षेत्र धार्मिक था, परन्तु कुछ समय बाद अपने समुदाय के लोगों पर हो रहे अत्याचार का विरोध करना भी, इनके कार्यक्रम में शामिल हो गया। इसी साल (1907) संयुक्त राज्य अमेरिका से होकर एक क्रांतिकारी बंगाली सज्जन वेंकुवर पहुँचे, जिनका नाम तारकनाथ था। उन्होंने अन्य क्रांतिकारी साथियों के सहयोग से एसोसिएशन का गठन किया और एक समाचार-पत्र 'आज़ाद भारत' के नाम से निकाला इसका मुख्य उद्देश्य भारतीयों को देश की आज़ादी के लिए संगठित करना था। एक तरह से 'आज़ाद भारत' के माध्यम से कनाडा में भारतीयों की पत्रकारिता की शुरूआत हुई। इस एसोसिएशन को अनेक क्रांतिकारियों ने सक्रियता प्रदान की तथा अन्य कई प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी देशभक्त इसके सदस्य बने।

इसके विचारों का प्रचार करने के लिए उर्दू में 'स्वदेश सेवक' नाम का अखबार शुरू किया गया, जिसके सम्पादक डी.डी. कुमार थे। ऐसा ही एक अखबार "प्रेयसी खालसा" गुरुमुखी में अमरसिंह झिंगड ने जारी किया। मई 1911 में डी.डी. कुमार कनाडा छोड़ अमेरिका चले गए। वहाँ उन्होंने 'यूनाइटेड इंडिया लीग' का गठन किया। इस लीग में श्री रहीम के संपादन में जनवरी 1914 में अंग्रेज़ी में हिन्दुस्तानियों के आंदोलन को नेतृत्व प्रदान करना तथा सहायता करना एवं लीग के उद्देश्यों का प्रचार करना था। जैसे-जैसे हिन्दुस्तानियों की विचारधारा कौमी तथा क्रांतिकारी होती गई, उनमें से कुछ तत्व ठिठककर, पीछे रह गए और कुछ नए सदस्य जुड़े भी। अपनी गतिविधियों को तत्कालीन सरकार और सभी हिन्दुस्तानियों तक पहुँचाने हेतु कुछ और समाचार-पत्र/पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। ओटावा से अंग्रेज़ी में 'आर्यन' नाम का द्विमासिक पत्र शुरू हुआ। वेंकुवर से पंजाबी में प्रकाशित 'आर्यन' के संपादक डॉ. सुन्दर सिंह तथा 'संसार' के संपादक करतार सिंह थे।

कालांतर में विविध कारणों से ये समाचार-पत्र बंद भी हो गए। ये समाचार-पत्र/पत्रिकाएँ अंग्रेज़ी, पंजाबी एवं उर्दू में भी प्रकाशित हुए। धीरे-धीरे कनाडा में भारतीयों के लगातार आगमन के साथ ही हिंदी भाषी प्रवासियों की संख्या भी बढ़ती गई और हिंदी-अंग्रेज़ी में भी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। टोरंटो से सन् 1975 में एक मासिक पत्रिका 'भारती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। हिंदी-अंग्रेज़ी में प्रकाशित इस पत्रिका का संपादन श्री त्रिलोचन सिंह गिल ने किया।

नवम्बर 1982 से हिंदी में 'जीवन ज्योति' पत्रिका का प्रकाशन टोरंटो से प्रारंभ हुआ। इसके संपादन का दायित्व निर्वाह किया - श्री हरिशंकर आदेश ने। श्री आदेश प्रसिद्ध प्रवासी हिंदी कवि और संगीतज्ञ थे, अत: यह पत्रिका मूल रूप से संगीत एवं सांस्कृतिक गतिविधियों पर केन्द्रित रही। 'विश्व भारती' पाक्षिक पत्र का संपादन श्री रघुवीर सिंह द्वारा टोरंटो से सन् 1981 में किया गया,

जो राष्ट्रभाषा हिंदी एवं भारतीय संस्कृति के संवाहक के रूप में विख्यात हुआ। यह पत्र धार्मिक एवं सांस्कृतिक सूचनाएँ देने के साथ ही हिंदी भाषा सिखाने का कार्य भी करता था। इस पत्र में डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव ने हिंदी भाषा से संबंधित बहुत लेख लिखे।

श्री कामता कमलेश ने 'वैचारिक' त्रैमासिक पत्रिका सितम्बर 2013 अंक में अपने लेख 'विदेश में हिंदी पत्रकारिता' में कनाडा से कुछ और पत्रिकाओं के प्रकाशन का ज़िक्र किया है। जिनमें प्रमुख है – 'कर्तव्य' नाम की आर्य समाजी पत्रिका और हिंदी साहित्य परिषद्, कनाडा से प्रकाशित 'आर्य पत्रिका'। तमाम प्रयासों के उपरान्त भी इन पत्रिकाओं के कोई अंक या संदर्भ उपलब्ध नहीं हो सके।

सन् 1983 में हिंदी लिटरेरी सोसायटी ऑफ़ इंडिया की स्थापना की गई। इसके प्रथम अध्यक्ष स्व. डॉ. त्रयम्बकेश्वर द्विवेदी मोंट्रियल के थे। बाद में, इसके अध्यक्ष ब्रिटिश कोलम्बिया के आचार्य श्री निवास द्विवेदी बनाए गए। इस संस्था ने 1985 में 'हिंदी संवाद' नामक त्रैमासिक छापी, जो लगभग 15 वर्षों तक नियमित रूप से प्रकाशित हुई। साथ ही, 1990 के आसपास 'संगम' नामक पाक्षिक पत्र, टोरंटो से श्री उमेश विजय ने निकालना शुरू किया, जो कई वर्षों तक चला। इसी दौरान श्री ज्ञानराज हंस ने रेडियो स्टेशन से 'भजनमाला' का प्रसारण भी शुरू किया, जो बहुत लोकप्रिय हुई।

सन् 1998 में कनाडा के टोरंटों शहर से 'हिंदी चेतना' त्रैमासिक पत्रिका की शुरूआत श्री श्याम त्रिपाठी के सम्पादन में हुई थी। हिंदी प्रचारिणी सभा, कनाडा से प्रकाशित यह त्रैमासिक पत्रिका अपने प्रकाशन के 20 से अधिक वर्ष पूर्ण कर चुकी है। यह पत्रिका विश्व हिंदी पत्रिका एवं विश्व हिंदी साहित्य को ऐसा मंच प्रदान करती है, जिससे न केवल कनाडा बल्कि अमेरिका, चीन ब्रिटेन, भारत, नॉर्वे, फ़्रांस, मॉरीशस आदि अनेक देशों के लेखक अपनी रचनाओं के ज़रिए विश्व के असंख्य हिंदी प्रेमियों से जुड़ते हैं। यह पत्रिका 'वसुधैव कुटंबकम्' के सिद्धांतों में पूरी आस्था रखते हुए, हिंदी साहित्य का वैश्विक प्रचार कर रही है। इस 84 पृष्ठीय पत्रिका में कहानियाँ, कविताएँ, लेख, हिंदी की गतिविधियों से संबंधित रिपोर्ट आदि सामग्री, हिंदी पाठकों में चेतना जगाए रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। हिंदी चेतना का अक्तूबर अंक विशेषांक होता है। अब तक इस पत्रिका के पद्मश्री यशपाल जैन, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', हरिवंशराय बच्चन, चन्द्रशेखर पांडेय, प्रो. हरिशंकर आदेश, मुंशी प्रेमचंद, पं. मदनमोहन मालवीय, डॉ. नरेन्द्र कोहली, श्री प्रेम जनमेजय, कामिल बुल्के आदि हिंदी विद्वानों पर विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा लघुकथा विशेषांक और नई सदी का कथा समय विशेषांक भी प्रकाशित हुए हैं। यह पत्रिका अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित भी हो चुकी है। उत्तरी अमेरिका और विशेषकर कनाडा के ए. टी. एन., रोजर, ओयनी आदि चैनलों पर हिंदी चेतना के कार्यक्रम प्रसारित हुए हैं। पत्रिका का मुख पृष्ठ कलापूर्ण होता है तथा शब्द संयोजन और प्रस्तुति भी आकर्षक होती है। विदेश की धरती पर हिंदी की स्तरीय पत्रिका का प्रकाशन एक बेहद दुरूह कार्य है, किन्तु श्याम त्रिपाठी जी अपनी टीम के साथ इस साधना में लगे हुए हैं। वे अपने संदेश में इसीलिए कहते हैं -

''विपरीत परिस्थितियों में भी हम अपने उद्देश्य से अलग नहीं हुए हैं और अपने संघर्ष का डटकर मुकाबला कर रहे हैं।''

वर्ष 2016 में अप्रैल-जून अंक से हिंदी चेतना के डिजीटल संस्करण की भी शुरूआत हो चुकी है। जुलाई-सितम्बर 2019 के अंक में लघुकथा के 21वीं शताब्दी के ऊर्जावान रचनाकारों की रचनाओं का समावेश है। इस अंक का संपादन श्री सुकेश साहनी ने किया है। अक्तूबर-दिसम्बर 19 का अंक भिन्न-भिन्न देशों की साहित्यिक कहानियों के विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। इसका संपादन यू.एस.ए. के युवा रचनाकार श्री दीपक मशाल ने किया है। इसी प्रकार जनवरी-मार्च 2020 का अंक 'हाइकू विशेषांक' के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस अंक की अतिथि

संपादक सुश्री कृष्णा वर्मा है। 'हिंदी चेतना' ने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं एवं विशेषांकों से विदेश की साहित्यिक हिंदी पत्रकारिता में विशेष स्थान बना लिया है। भारत के अलावा अमेरिका, चीन, नीदरलैंड, मॉरीशस, यू.ए.ई. में रचनाकार इस प्रतिनिधि पत्रिका को रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं।

कनाडा के ही टोरंटो शहर से 'वसुधा' पत्रिका 2004 से डॉ. स्नेह ठाकुर के संपादन में प्रकाशित हो रही है। 'वसुधा' कोई संस्थागत पत्रिका न होकर डॉ. स्नेह ठाकुर के हिंदी के प्रति प्रेम और समर्पण की परिचायक है। ऐसा बहुत कम देखने में आता है कि निजी प्रयासों से कोई साहित्य प्रेमी विदेश में रहकर, हिंदी की त्रैमासिक पत्रिका का अनवरत प्रकाशन करने में सफल हो।

इस पत्रिका का प्रथम अंक 64 पृष्ठों का प्रकाशित हुआ था, जिसमें अधिकांश रचनाएँ भारत के लेखकों की थी। इसके बाद के अंक 48 पृष्ठों के प्रकाशित हुए हैं। एक वर्ष पूर्ण होने पर अपने सम्पादकीय में डॉ. ठाकुर ने लिखा है कि इस पत्रिका में रचनाकारों का परिचय प्रकाशित नहीं किया जाता है, ताकि रचनाकारों को उनकी रचना से पहचाना जाए। इस पत्रिका के प्रकाशन में शनैः शनैः लगातार सुधार हुआ। आज यह पत्रिका अपने प्रकाशन के 16 वर्ष पूर्ण कर चुकी है। इन 16 वर्षों में पत्रिका की प्रस्तुति एवं सामग्री के प्रकाशन में लगातार निखार आया है। 'वसुधा' में भारत के ख्यातिलब्ध लेखकों के साथ ही मॉरीशस, ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशों के प्रवासी भारतीय रचनाकारों की रचनाएँ नियमित रूप से प्रकाशित हो रही हैं। सीमित साधनों के उपरान्त भी 'वसुधा' का प्रकाशन विदेश की धरती से हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता में एक अनूठा उदाहरण है।

इधर कनाडा के टोरंटो शहर से पाक्षिक समाचार-पत्र 'नमस्ते कनाडा' श्री सरन घई के सम्पादन में 1999 से 2010 तक नियमित रूप से प्रकाशित हुआ। सन् 2003 में श्री सुमन घई के सम्पादन में ही सन् 2009 से 2014 तक साप्ताहिक अखबार 'हिंदी टाईम्स' का प्रकाशन हुआ। 64 पृष्ठों के इस अखबार में 32 पृष्ठ साहित्य के लिए होते थे। श्री घई इस समाचार-पत्र में वैतनिक सम्पादक के रूप में कार्यरत रहे। उन्होंने 'हिंदी टाईम्स' को अच्छा लाभ अर्जित करने वाला और पाठकों का मनपसंद पत्र बना दिया। 2019 से इसे अब 'हिंदी टाईम्स' के नाम से ही मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। यह ई-पत्रिका और ऑडियो रूप में भी उपलब्ध है। इस पत्रिका के मुख्य सम्पादक श्री राकेश तिवारी हैं। आज कनाडा से दो साप्ताहिक समाचार-पत्र भी नियमित रूप से प्रकाशित हो रहे हैं - 'हिंदी एब्रॉड' 24 पृष्ठीय अखबार है, जो हिंदी एब्रॉड मीडिया द्वारा प्रकाशित किया जाता है। इसमें कनाडा और भारत की खबरों का समावेश होता है। आठ पृष्ठों में बॉलीवुड, धर्म-कर्म और भारत की अन्य खबरें भी प्रकाशित होती हैं। अखबार के लगभग 25 % भाग में विज्ञापन भी प्रकाशित होते हैं, जो इस अखबार की वाणिज्यिक उपयोगिता को भी सिद्ध करते हैं। कनाडा के टोरंटो शहर से ही हिन्दुस्तान टाइम्स भी हिंदी में प्रकाशित हो रहा है। इस 16 पृष्ठीय अखबार के संपादक श्री संजीव जिंदल है। इस अखबार में भारत के साथ ही विश्व के विभिन्न देशों के चित्रमय समाचार प्रकाशित होते हैं। विज्ञापनों की भी भरमार होती है - यह अखबार पिछले 12 वर्षों से प्रति सप्ताह प्रकाशित हो रहा है। इस अखबार के मुद्रित अंक (14 सितम्बर, 2018) में स्पष्ट किया गया है कि भारत से प्रकाशित होने वाले अंग्रेज़ी अखबार 'हिन्दुस्तान टाइम्स' से इसका कोई संबंध नहीं है।

हिंदी साहित्य सभा, कनाडा ने 'उद्गार' पत्रिका का प्रकाशन अमेरिका से प्रकाशित हिंदी पत्रिका 'विश्वा' के साथ मिलकर किया। सन् 2003 में अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, अमेरिका और हिंदी साहित्य सभा, कनाडा के बीच सहमति बनी कि कनाडा के रचनाकारों की रचनाएँ ''विश्वा'' में एक परिशिष्ट में 'उद्गार' पत्रिका के रूप में दी जाए। तदनुसार 'उद्गार' पत्रिका परिशिष्ट के रूप में 2 साल तक 'विश्वा' के आठ अंकों में प्रकाशित होती रहीं।

यह एक तरह से नवीन प्रयोग था। इसके संपादक डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव रहे। सम्पादकीय 'उद्गार' के साथ ही इस पत्रिका में कनाडा के अन्य लोगों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। ओटावा से ही श्री जगमोहन हूमर के संपादन में 'अंकुर' पत्रिका का प्रकाशन सन् 1980 से 1990 के बीच हुआ। इस त्रैमासिक पत्रिका का उद्देश्य भारतीय संस्कृति, समाज एवं साहित्य को विदेश की धरती पर जीवित रखना था। हिंदी-अंग्रेज़ी में प्रकाशित इस पत्रिका में लेख, कविताएँ, पत्र आदि प्रकाशित होते थे। संपादक श्री हूमर कोर्लटाने विश्वविद्यालय में रिसर्च प्रोफ़ेसर होने के बावजूद अपनी टीम के साथ इस पत्रिका को प्रकाशित करते रहे।

हिंदी की ऑनलाइन पत्रिकाएँ

कनाडा से 'साहित्य कुंज' ऑनलाइन पत्रिका पिछले 15 वर्षों से मिल रही है। इस ई-पत्रिका के सम्पादक सुमन कुमार घई हैं। डॉ. शैलजा सक्सेना इस पत्रिका को साहित्यिक परामर्श प्रदान करती हैं। इस पत्रिका में साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचनाएँ पढ़ने को मिल जाती हैं। इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भों में कथा-साहित्य, काव्य-साहित्य, शायरी, हास्य/व्यंग्य, संस्मरण, बाल-साहित्य, नाट्य-साहित्य, साक्षात्कार और समीक्षा प्रमुख हैं। इस पाक्षिक पत्रिका के अनेक विशेषांक भी प्रकाशित हो चुके हैं। 1 फ़रवरी, 2015 से इस पत्रिका में सम्पादकीय लेखन भी प्रारम्भ हुआ। अब प्रत्येक अंक में श्री सुमन घई के सम्पादकीय भी पढ़े जा सकते हैं। इस पत्रिका में कनाडा, अमेरिका, ब्रिटेन, भारत आदि अनेक देशों के लेखकों की रचनाएँ भी प्रकाशित होती हैं। इंटरनेट पर जारी होने वाली पत्रिकाओं में 'साहित्य कुंज' का प्रमुख स्थान है।

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

कनाडा के टोरंटो शहर से जनवरी - 2019 में डॉ. रत्नाकर नराले द्वारा 'पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल' ऑनलाइन रूप में जारी हुई। यह एक शोधपरक त्रैमासिक पत्रिका है, जिसमें हिंदी, संस्कृत, भारतीय कला, संस्कृति आदि विषयों पर आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। यह जर्नल पुस्तक भारती संस्था द्वारा जारी किया जाता है, जो पुस्तक प्रकाशन, प्रचार व प्रसार करने वाली संस्था है। यह संस्था अभी तक 60 उत्कृष्ट पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है। इनमें से 40 लोकप्रिय पुस्तकें डॉ. रत्नाकर नराले ने लिखी हैं। डॉ. नराले टोरंटो के रायर्सेन विश्वविद्यालय में और ग्रेटर टोरंटो स्कूल बोर्ड में हिंदी और संस्कृत पढ़ा रहे हैं। इस रिसर्च जर्नल का जनवरी-जून 2020 अंक संयुक्त रूप से जारी हुआ है, जिसमें भाषा और साहित्य विषयक अनेक देशों के ख्यातनाम लेखकों के लेख प्रकाशित हुए हैं। अप्रैल-जून 2021 अंक में भी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर हिंदी और अंग्रेज़ी में शोधपरक लेख प्रकाशित हुए हैं। डॉ. राकेश दुबे (बनारस) इस जर्नल के सहायक संपादक है और भारत के समन्वयक भी।

प्रयास ऑनलाइन पत्रिका

विश्व हिंदी संस्थान, कनाडा द्वारा 'प्रयास' ऑनलाइन पत्रिका जारी की जा रही है। श्री सरन घई इस पत्रिका के सम्पादक हैं। इस पत्रिका में मुख्य रूप से संस्थान की गतिविधियों और संस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की सामग्री/अंश प्रस्तुत किए जाते हैं। सामान्यतः यह पत्रिका दो माह में जारी की जाती है, किन्तु कतिपय अंक प्रतिमाह भी जारी हुए हैं। इस पत्रिका का सन् 2018 में मार्च व अगस्त माह का अंक जारी हुआ तथा सन् 2019 में जुलाई-अक्तूबर माह तक एक अंक ही जारी हुआ। अनियमित रूप से जारी हो रही, इस पत्रिका का मुख्य स्वर हिंदी को विश्व मंच पर स्थापित करना है।

कनाडा में हिंदी रेडियो

कनाडा में हिंदी भाषियों की बड़ी तादाद को ध्यान में रखते हुए, अनेक रेडियो स्टेशन हिंदी में प्रसारण करते हैं। गीत-संगीत के अलावा शैक्षणिक कार्यक्रमों का

प्रसारण भी इनके माध्यम से होता है।

ये रेडियो हैं -

1. एफ.एम. 91.5
2. बॉलीविषय रेडियो
3. रेडियो हमसफ़र
4. 22 ज़ी नेट
5. रेडियो दिल से
6. झंकार रेडियो
7. एम4 यू रेडियो।

अपना रेडियो (सी.एम.आर. 101,3 एफ. एम.) की शुरूआत भी सन् 2009 में हुई, किंतु 2019 में कतिपय कारणों से इसे बंद कर देना पड़ा।

इस प्रकार कनाडा में हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति को जीवंत रखने का कार्य निरंतर हो रहा है। प्रवासी भारतीयों द्वारा स्थापित अनेक संस्थाएँ भी इस कार्य को आगे बढ़ा रही हैं। नई भाषाई प्रौद्योगिकी को अपनाकर भी अनेक विशिष्ट कार्य इस क्षेत्र में हो रहे हैं।

संदर्भ :

1. गदर पार्टी का इतिहास, प्रथम भाग (1912-17)
2. हिंदी जगत पत्रिका(जनवरी –मार्च 2005 अंक) में प्रकाशित लेख 'कनाडा में भारतीय मूल के निवासी (डॉ सत्येंद्रनाथ रॉय)
3. विश्व हिंदी पत्रिका (सितम्बर 2008 अंक)
4. कनाडा में हिंदी (लेख –डॉ शैलजा सक्सेना)
5. कनाडा से प्रकाशित विविध हिंदी पत्रिकाओं के अंक।

jkarnavat@gmail.com

ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी का भविष्य

- डॉ. साईनाथ विट्ठल चपले
इचलकरंजी, भारत

आज का युग विज्ञान, टेक्नोलॉजी एवं इंटरनेट का युग है। आज के इस डिजिटल युग ने मनुष्य के जीवन में समग्र बदलाव पैदा किया है। सूचना प्रौद्योगिकी हमारे जीवन का अविभाज्य अंग बन गया है। वर्तमान समय में बालक, युवा और प्रौढ़ व्यक्तियों को डिजिटल दुनिया और इंटरनेट ने घेरा है। आज के दौर में हम सभी सोशल नेटवर्किंग साइट का प्रयोग करने में अपना अधिकांश समय व्यतीत कर रहे हैं। कल्पना कीजिए हम प्रतिदिन का कितना समय इंटरनेट एवं स्मार्ट डिवाइस का उपयोग करने में खर्च करते हैं। गूगल, ई-मेल, ट्विटर, फ़ेसबुक, इंस्टाग्राम, टेलिग्राम, टेलीविजन, डिश टीवी, सेटलाइट टीवी और ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म जैसे इंटरनेट संचार माध्यम हमारे जीवन की दैनिक गतिविधियों के अंग बन चुके हैं। भारत में परंपरागत संचार माध्यमों को पीछे छोड़कर आज हम ओटीटी के माध्यम से अद्यतन फ़िल्में, वेब सीरीज़, समाचार, डॉक्यूमेंटेरी आदि देख पाते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में हम ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

भारत में बीते दो-तीन वर्षों से ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म का जलवा दिख रहा है। हमारे यहाँ टीवी के देखने का अंदाज़ तेज़ी से बदल रहा है। अब दूरदर्शन, केबल, डीटीएच, सेटलाइट टीवी और डिश टीवी से लोग ऊब चुके हैं। स्मार्ट टीवी के ज़माने में अब तय समय पर आनेवाले सीरियल या रीयलिटी शो से लोगों का मन नहीं भर रहा। समय के बदलाव के साथ आज ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर प्रसारित कार्यक्रम देखना लोग पसंद कर रहे हैं। अब सबको यूट्यूब, अमेज़ॉन, हॉटस्टार और नेटफ़्लिक्स जैसे ऑनलाइन कंटेट पसंद आ रहे हैं। आज के दौर में केबल या डीटीएच कनेक्शन को हटाकर टीवी के लिए इंटरनेट कनेक्शन लिए जा रहे हैं। भारत के ओटीटी यानी ओवर द टॉप कंटेट प्रोवाइडर्स बाज़ार की बात करें, तो अभी भारत में 2019 करोड़ों रुपये का ओटीटी मार्केट है। ओटीटी मार्केट की सालाना ग्रोथ 23 फ़ीसदी है। अंदाज़ा है कि 2022 तक भारत टॉप 10 बाज़ारों में होगा। 2022 में ओटीटी रेवेन्यू का 80 फ़ीसदी सब्सक्रिप्शन से आने का अनुमान है।[1]

ओटीटी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

एक समय था जब दूरदर्शन सेट पर समाचार, मनोरंजन, रामायण, महाभारत देखने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। जिसकी वजह थी कि मनोरंजन पाने का ज़रिया सीमित था और टीवी सेट बहुत कम थे। समय के साथ भारतीय डिजिटल दुनिया में लोगों के सामने नए-नए विकल्प आए और दूरदर्शन से आगे निकलते हुए केबल, सेटलाइट टीवी और आज के दौर में हम ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म तक पहुँच चुके हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में टीवी या मनोरंजन पर दृष्टिपात करें, तो यह पाँच तरह के हैं - "रॉडकास्ट या ओवर द एयर टेलीविजन, फ़्री टु एयर, डायरेक्ट टु होम (डीटीएच), केबल टीवी और ओटीटी (ओवर द टॉप) प्लेटफ़ॉर्म।"[2] सन् 1990 तक भारत में मनोरजंन और समाचार पाने का एकमात्र माध्यम दूरदर्शन था। "साल 1991 तक भारत में 7 करोड़ से ज़्यादा घरों में टीवी लग चुका था।" [3] दूरदर्शन के माध्यम से हम समाचार, कृषि संबंधी खबरें, परिवार नियोजन की बातें, फ़िल्म, संगीत और खेल से जुड़ी खबरें पाते थे। वैश्वीकरण पर ज़ोर देने के तहत भारतीय मनोरंजन के साधनों में क्रांति दिखाई देती है, जिसके बदौलत वर्ष 1992 में भारत में केबल टीवी की शुरुआत हुई। पहले

बहुत ही कम चैनल आए फिर साल 2010 तक भारत में 500 से ज़्यादा सेटलाइट चैनल आ गए, जिसके द्वारा भारतीय जनमानस के सामने मनोरंजन का पिटारा खुल गया। समय के बदलाव के साथ भारतीय मनोरंजन के क्षेत्र में भी इंटरनेट के आगाज़ के कारण, आसानी के समाचार, फ़िल्म, डॉक्यूमेंटेरी आदि जनता तक मुहैया होने लगे। इंटरनेट के कारण नए डिजिटल डिवाइसों का आगाज़ हुआ, जिसके कारण आज का युवा ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म तक आकर रुका हुआ है। आगे का दौर क्या होगा यह तो समय ही बताएगा।

ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म किसे कहते हैं?

आज हम विज्ञान, तकनीकी एवं इंटरनेट के युग में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हम इंटरनेट एवं टैक्नोलॉजी का इतना विकास कर चुके हैं कि हम जीवन के अधिकांश कार्य, घर बैठकर करने में सक्षम हो चुके हैं। आज सभी लोग सूचना पाने से लेकर, खरीदारी तक करने के लिए इंटरनेट का प्रयोग करते हैं। इंटरनेट का हमारे दैनिक जीवन के अधिकांश पहलुओं पर प्रभाव पड़ा है। कल्पना कीजिए कि हम एक दिन इंटरनेट एवं डिजिटल गैजेट के बगैर जीवन व्यतीत करें। जवाब होगा असंभव क्योंकि हमारे दैनंदिन जीवन के अधिकांश कार्य इंटरनेट और डिजिटल गैजेट के कारण ही पूरे हो रहे हैं। आज हर व्यक्ति अपने डिजिटल गैजट पर मनोरंजन के साधन खोजता रहता है। आज का समय इंटरनेट का है। आज ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म ने हमारे मनोरंजन के परंपरागत तरीकों को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है। आज ओटीटी तेज़ रफ़्तार के साथ आगे बढ़ रहा है और वह बच्चे, युवा और कमोबेश बुज़ुर्गों की पहली पसंद बन चुका है।

ओटीटी का अर्थ है ओवर द टॉप या सबसे पहले। ओटीटी एक ऐसा प्लेटफ़ॉर्म है, जो इंटरनेट के द्वारा वीडियो या अन्य मीडिया से संबंधित कंटेंट को ऑनलाइन दिखाता है। यह एक तरह का एप्प है, जिसमें टेलीविजन कंटेंट एवं फ़िल्म दिखाई जाती है। ग्राहकों को ओटीटी कंटेंट देखने के लिए उसका सब्सक्रिप्शन लेना होता है। उसके बाद आप जिस कंटेंट को देखना चाहते हैं, उसे आसानी से देख सकते हैं। ओटीटी का उपयोग मुख्य रूप से वीडियो ऑन डिमांड प्लेटफ़ॉर्म्स, ऑडियो स्ट्रीमिंग, ओटीटी डिवाइसेस, वोइस आईपी कॉल, एवं कम्युनिकेशन चैनल मैसेजिंग आदि के लिए किया जाता है।[4] ओटीटी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर दृष्टिपात करें, तो इसकी शुरूआत अमेरिका में हुई। अमेरिका की जनता ने इसे बहुत पसंद किया और बाद में यह दुनिया के सभी देशों में फैलने लगा। आनेवाले समय में इसका प्रयोग और ज़्यादा देखने को मिलेगा।

भारत में ओटीटी की बात करें, तो इसका प्रारंभ सन् 2008 में हुआ। Bigflix भारत का पहला ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म है, जिसे रिलायंस एंटरटेनमेंट द्वारा प्रारंभ किया गया था। इसके बाद 2010 में Digivive द्वारा देश का पहला ओटीटी मोबाइल एप्प NEXG TV को प्रारंभ किया गया, जिसे टीवी और वीडियो ऑन डिमांड दोनों में प्रयोग किया गया। NEXG TV का पहला live Stream – Indian Premiere League Match 2013-2014 में स्मार्टफ़ोन पर उपलब्ध कराया गया। [5]

साफ़ है कि भारत में ओटीटी का बाज़ार विकास और आर्थिक कमाई का साधन हो रहा है। दूसरी ओर देश में स्मार्टफ़ोन, स्मार्ट टीवी और इंटरनेट डाटा की माँग लगातार बढ़ रही है। इसी वजह से कई कंपनियाँ यूज़र बेस बढ़ाने की आड़ में काफ़ी पैसा बहा रही हैं। भारत जैसे देश में युवाओं का अनुपात ज़्यादा है। युवा दुनिया भर का कंटेंट देखना चाहते हैं, जो ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर ही संभव है।

भारत के लोकप्रिय ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म

भारत में ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म बहुत तेज़ी के साथ प्रसिद्ध हो रहे हैं और कई ऐसे ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म लोगों द्वारा देखे जा रहे हैं। वर्तमान समय में चालीस से ज़्यादा ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म मीडिया सर्विसेस भारत में उपलब्ध हैं, जिनका इंटरनेट के माध्यम से प्रसारण किया जाता है।

आज के दौर में ओटीटी बाज़ार की नगद मूल्य 6450 करोड़ है।[6] एक सर्वे के अनुसार भारत में 55 प्रतिशत लोग ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म और 41 प्रतिशत लोग डिटीएच के ज़रिए वीडिओ कंटेंट देख रहे हैं। ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर कंटेंट देखने के लिए रुपये खर्च करने पड़ते हैं तब जाकर उनपर उपलब्ध सामग्री देखी जा सकती है। तो आइए इन प्रमुख और सब से प्रसिद्ध ओटीटी प्लेटफ़ॉर्मों पर एक पारखी नज़र डालते हैं –

1. **हॉटस्टार**

स्टार इंडिया ने 11 फ़रवरी 2015 को आधिकारिक तौर पर हॉटस्टार का प्रारंभ किया। हॉटस्टार ने भारतीय ओटीटी बाज़ार पर अपनी अच्छी पहचान बना ली है। आज हॉटस्टार के 50 हज़ार मिलियन से भी अधिक मासिक आधार पर सक्रिय यूज़र्स के साथ डिज़्नी के स्वामित्व वाला ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म है। यह प्रमुख रूप से लाइव स्पोर्टस् और गेम ऑफ़ थ्रोन्स जैसे सुपरहिट शोज़ को प्रदर्शित करने के लिए लोकप्रिय हैं। इसके साथ ही प्रिमीयम अंतरराष्ट्रीय फ़िल्मों और टेलीविजन श्रृंखला की विशेषता है। जुलाई 2021 तक, VIP प्लान की कीमत एक साल के लिए 399 रुपये और प्रीमीयम प्लान की कीमत 1499 रुपये प्रति वर्ष है, जो कि ऐड–फ़्री लिमिटेड कंटेंट प्रदान करता है। यह हिंदी, अंग्रेज़ी, मलयालम, तेलुगु, कन्नड और मराठी भाषाओं में सामग्री प्रसारित करता है।

2. **अमेज़न प्राइम वीडियो**

इस ओटीटी कंपनी ने भारत में अंग्रेज़ी के साथ-साथ भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में भी सामग्री प्रदर्शित की है। भारत में अमेज़ॉन प्राइम वीडियो 2016 में लॉन्च किया गया था और 2018 में अमेज़ॉन प्राइम म्यूज़िक को लॉन्च किया गया। अमेज़ॉन के सीईओ जेफ़ बेजोस ने 2020 की भारत-यात्रा में अमेज़ॉन प्राइम वीडियो के निवेश को दुगुना करने की घोषणा की थी।

अमेज़ॉन प्राइम वीडियो अंग्रेज़ी के साथ-साथ कई क्षेत्रिय भाषाएँ जैसे – मराठी, हिंदी, तेलुगु, तमिल, मलयालम, उड़िया, कन्नड, पंजाबी, गुजराती आदि में कंटेंट प्रसारित करता है।

3. **नेटफ़्लिक्स**

नेटफ़्लिक्स दुनिया में सबसे अधिक प्रसारित होनेवाला ओटीटी विश्वप्रसिद्ध प्लेटफ़ॉर्म है। सन् 2016 में इसे भारत में लॉन्च किया गया। नेटफ़्लिक्स पर फ़िल्म, वेबसीरिज़, ओरिजिनल शो, रियल्टी टीवी सीरीज़ प्रदर्शित किए जाते हैं और इसमें सब्सक्रिप्शन लेने की क्षमता में बढ़ोत्तरी होती गई।

4. **सोनीलिव**

सोनीलिव ने 2013 में अपनी स्वयं की ओटीटी सर्विस की शुरूआत की। सोनीलिव मनोरंजन के लिए वीडियो ऑन-डिमांड सेवा है, जिसका स्वामित्व सोनी पिक्चर्स नेटवर्क भारतीय प्रायवेट लिमिटेड के पास है। सोनीलिव हॉलीवुड फ़ीचर फ़िल्म के लिए संगीत सामग्री का निर्माण करनेवाला पहला ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म है। आज के समय में इसके 100 मिलियन से ज़्यादा ही सक्रिय यूज़र्स हैं।

5. **ज़ी 5**

ज़ी 5 ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म 14 फ़रवरी, 2018 में 12 भाषाओं में कंटेट के साथ लॉन्च हुआ, जो एस्सेल ग्रुप द्वारा अपनी सहायक ज़ी एंटरटेनमेंट एंटरप्राइज़ेज़ के माध्यम से चलाया जाता है। ज़ी 5 में 8000 से अधिक भारतीय भाषाओं के साथ 500 से अधिक टीवी शोज़ के लिए एक लाख से अधिक घंटे हैं। भारतीय भाषाओं के साथ-साथ इसमें तुर्की, कोरियाई और स्पेनिश शोज़ भी शामिल हैं।

6.**ऑल्टबालाजी**

यह एकता कपूर के बालाजी टेवीफ़िल्म्स की घरेलू वीडीयो स्ट्रीमिंग सर्विस है, जो 14 अप्रैल, 2017 में शुरू हुआ। इन दिनों ऑल्टबालाजी आडल्ट वेबसीरिज़ के कारण चर्चा में है।

7. **एम एक्स प्लेयर**

यह भारत का एक प्रसिद्ध ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म है, जो एम एक्स मीडिया एंड एंटरटेनमेंट द्वारा फ़रवरी 2019 में प्रसारित किया गया है। वैश्विक स्तर पर इसके 280 मिलियन से अधिक उपयोगकर्ता हैं। यह 12 भारतीय भाषाओं में 150,000 से अधिक घंटों की स्ट्रीमिंग लाइब्रेरी है। एम एक्स प्लेयर उपयोगकर्ताओं को मुफ़्त में सेवाएँ प्रदान करता है।

8. **वूट**

वूट मार्च 2016 में लॉन्च किया गया। यह Viacom 18 की ऑनलाइन शाखा है। फ़िलहाल वूट भारत में ही उपलब्ध है, जो 40,000 से अधिक घंटों के साथ सामग्री को होस्ट करता है। यह कई भारतीय भाषाओं में अपने प्रोग्राम प्रसारित करता है। वूट प्रमुखत: कलर के सीरियल की हायलाइट्स को देखने के काम आता है। वूट भारत के सबसे बड़े मीडिया नेटवर्क में से एक है।

9. **इरोज़ नाउ**

यह 2012 में लॉन्च किया गया, जिसका स्वामित्व इरोज़ इंटरनेशनल पी. एल. सी. की डिजिटल मीडिया प्रबंधन शाखा इरोज़ नाउ के पास है। इरोज़ नाउ के लगभग 80 मिलियन से भी ज़्यादा सक्रिय सदस्य हैं, जो 10000 से अधिक फ़िल्मों के लाइब्रेरी के साथ उपलब्ध है।

10. **जियो सिनेमा**

जियो सिनेमा 5 सितंबर, 2016 को रिलायंस समूह द्वारा लॉन्च किया गया, जिसके मालिक मुकेश अंबानी है। यह भारत का सबसे पसंदीदा ओटीटी के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। सम्प्रति 250 मिलियन से भी ज़्यादा इसके उपयोगकर्ता हैं। जियो सिनेमा भारत के 8 प्रांतीय भाषाओं में अपना प्रसारण करता है। जियो सिनेमा देखने के लिए सदस्यता की बात करें, तो यह जियो नेटवर्क के ग्राहकों को मुफ़्त में सुविधा प्रदान करता है।

उपरोक्त भारत के प्रमुख ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म हैं। इसके अलावा कई ओटीटी उपलब्ध हैं, जैसे – Bollix, Arre आदि।

ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म में हिंदी का भविष्य

आज के दौर में दूरसंचार क्षेत्र में ओवर द टॉप (Over the Top - OTT) की ओर दर्शकों का रुझान बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। समय के बदलाव के साथ-साथ दर्शक दूरसंचार के पारंपरिक माध्यमों को पसंद नहीं कर रहे हैं। आज का दर्शक केवल अपने प्रांत या देश तक ही सीमित न होकर, वैश्विक ग्राम पटल पर जो घटित हो रहा है, उसे देखना और समझना चाहता है। इन्हीं सब कारणों से आज हम ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म तक पहुँच चुके हैं। गौरतलब है कि दर्शकों द्वारा लंबे समय से इंटरनेट के द्वारा स्ट्रीमिंग करने की माँग थी, जो सपना था आज हमारे सामने प्रस्तुत है। मनोरंजन का ग्लैमर हमेशा से ही युवा पीढ़ी को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है।

आज ओटीटी पर हिंदी के लिए उज्ज्वल भविष्य है। इस क्षेत्र में अपना भविष्य सँवारने के लिए अपने भीतर छिपी प्रतिभा और रुचियों की सही तरीके से पहचान करने और उस प्रतिभा का सही क्षेत्र में इस्तेमाल करने की माँग है। ओटीटी पर हिंदी के लिए अपार संभावनाएँ एवं स्वर्णिम भविष्य है। इस समय ओटीटी के क्षेत्र में हिंदी की माँग को लेकर, युवा अपना भविष्य सँवार सकते हैं।

ओटीटी पर हिंदी का भविष्य जानने से पूर्व अगर

हम इनके तथ्यों पर दृष्टि डालें, तो पूरा परिदृश्य स्पष्ट हो जाएगा। हिंदी दुनिया की दूसरी सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा है। इस समय दुनिया भर में हिंदी बोलने वालों की संख्या 55 करोड़ से अधिक है, वहीं हिंदी समझ सकने वाले लोगों की संख्या 1 अरब से भी ज़्यादा है। प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, इंटरनेट, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंच और संस्थाओं में हिंदी के प्रयोग में गुणात्मक वृद्धि हुई है। फ़ेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब तथा व्हाट्सएप जैसे अनुप्रयोगों में तो अब हिंदी का ही दबदबा है। गूगल और माइक्रोसॉफ़्ट जैसी दिग्गज कंपनियों ने भी, हिंदी में बहुत बड़े पैमाने पर काम करना शुरू कर दिया है। हाल में प्रकाशित रिपोर्ट बताती है कि हमारे देश में कुछ ही समय में मनोरंजन क्षेत्र में 200 बिलियन डॉलर की कमाई होगी। इस समय भारतीय फ़िल्म इंडस्ट्री करीब 1256 मिलियन डॉलर की है, जिसके अगले पाँच वर्षों में 18 फ़ीसदी की दर से बढ़ने का अनुमान है।

पिछले 2 साल से हम सभी कोविड-19 महामारी से लड़ रहे हैं। महामारी का यह दौर सभी क्षेत्रों के लिए निराशाजनक रहा है। पर कोविड-19 महामारी का दौर अगर किसी क्षेत्र के लिए सुनहरा अवसर लेकर आया है, तो वह है मनोरंजन के क्षेत्र में ऑनलाइन स्ट्रीमिंग करने वाला ओवर द टॉप (ओटीटी) मंच। इस समय सिनेमाघरों के बंद होने की वजह से महानगरों में ही नहीं, अपितु मध्यम एवं छोटे शहरों के दर्शकों ने भी ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म से जुड़कर अपने मनोरंजन के नए दौर का आरंभ कर दिया है। आज ओटीटी का बाज़ार बढ़ चुका है। देश-विदेश से लेकर ग्रामीण क्षेत्र में भी लोग आज ओटीटी मंचों पर निर्भर हैं। देश में ओटीटी वीडियो बाज़ार से जुड़ी रेडसीर कंसल्टिंग की रिपोर्ट के मुताबिक "मार्च और जुलाई 2020 के बीच ओटीटी क्षेत्र में सबस्क्राइबरों की तादाद 30 फ़ीसदी तक बढ़ी और यह 2.2 करोड़ से बढ़कर 2.9 करोड़ हो गई। इसके अलावा अप्रैल-जुलाई 2020 के दौरान कुल स्ट्रीमिंग में 50 फ़ीसदी से अधिक हिंदी भाषा का योगदान था।" [7] समय की माँग को देखकर सभी ओटीटी मंचों ने हिंदी को लेकर गंभीरता से विचार शुरू कर दिया है। इसकी वजह है कि आज हिंदी केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व पटल पर बाज़ार एवं व्यवसाय की भाषा बन चुकी है, इसे हम अनदेखा नहीं कर सकते है। ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म का सबसे बड़ा प्लेटफ़ॉर्म नेटफ़्लिक्स को माना जाता है, जो अमेरिका द्वारा चलाया जाता है। नेटफ़्लिक्स से मिली जानकारी के मुताबिक कंपनी हिंदी भाषा को लेकर बेहद गंभीर है और 2019 से लेकर इस साल तक नेटफ़्लिक्स भारत में सामग्री पर 3000 करोड़ रुपये निवेश कर रही है। हमने यहाँ 15 सीरीज़ और 22 फ़िल्में रिलीज़ की हैं और कई नई कहानियों पर काम जारी है। नेटफ़्लिक्स की उपाध्यक्ष मोनिका शेरगिल ने कहा कि – "हिंदीभाषी लोगों के लिए नेटफ़्लिक्स ने हिंदी यूज़र इंटरफ़ेस लॉन्च किया है, ताकि लोग इस भाषा में साइन अप करने से लेकर आसानी से सामग्री सर्च भी कर सकें।" [8]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आज हिंदी ओटीटी पर अपना परचम फहरा रही है। ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, जिसे हम निम्नलिखित मुद्दों के द्वारा देखने का प्रयास करेंगे।

1. **विदेशी वेबसीरिज़ एवं फ़िल्मों की डबिंग**

वर्तमान समय के दर्शक केवल अपने ही प्रांत और देश तक मनोरंजन का दायरा न रखकर, विदेशी धरती पर आधारित वेब सीरिज़ एवं फ़िल्मों से प्रभावित हो रहे हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि विदेशी वेबसीरिज़ एवं फ़िल्मों की कमी को हिंदी में डबिंग द्वारा पूरा किया जा रहा है। इस वक्त कई विदेशी वेबसीरिज़, भारतीय परिवेश के अनुरूप एवं नए कलेवर में ढाले जा रहे हैं, जिसकी वजह से हिंदी लेखकों के लिए एक बड़ा बाज़ार तैयार हुआ है और उसकी माँग भी बढ़ रही हैं। कई विदेशी कंपनियाँ स्थानीय भाषाओं में कंटेंट देने के लिए हिंदी भाषा के लेखकों के लिए रोज़गार के मौके दे रही हैं। विदेशी

वेबसीरिज़ एवं फ़िल्मों के लिए हिंदी भाषा की कितनी ज़रूरत है, इसपर लेखिका अनु सिंह चौधरी लिखती है – "ओटीटी मंचों को अगर हिंदी भाषी क्षेत्रों और दर्शकों तक अपनी पहुँच बनानी है, तो हिंदी पट्टी की कहानियाँ उन्हें चाहिए। हिंदी पट्टी की कहानियाँ कहने और लिखने वाले ऐसे लोग मुंबई में नहीं हैं, जो हिंदी पट्टी की भाषा, परिवेश और किरदार समझते हों। हमने यह देखा कि महामारी के दौरान स्क्रिप्ट की माँग बढ़ी है। लेकिन हिंदी लेखकों के सामने इस नए माध्यम की चुनौतियाँ भी हैं।" [9] हिंदी एक ऐसी भाषा है, जिसमें विदेशी भाषाओं में बनी वेब सीरिज़ एवं फ़िल्मों की डबिंग कर हम दर्शकों के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं। इसके लिए उन विदेशी भाषाओं को जानना भी ज़रूरी है।

2. वैश्विक स्तर पर मनोरंजन का फैलाव

ओटीटी मंच के कारण मनोरंजन की सामग्री का दायरा वैश्विक बन चुका है। ऐसे दौर में हिंदी वेबसीरिज़ एवं फ़िल्मों को लेकर दर्शकों की उम्मीदें एवं अपेक्षाएँ बढ़ रही हैं। हम देखते हैं कि आज का दर्शक मनोरंजन के पारंपरिक दायरे को छोड़कर वैश्विक बन गया है। अब भारतीय मनोरंजन केवल भारतीय दर्शकों को ही लुभा नहीं रहा है, वह तो विदेशी दर्शकों के मनोरंजन का भी साधन बन रहा है। परिणामस्वरूप, हिंदी को एक नया फलक मिला है और उसे अधिक विस्तार मिला है। कई प्रांतीय एवं विदेशी भाषाओं में बनी फ़िल्मों को वैश्विक दर्शकों के लिए हम हिंदी भाषा में प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसके कारण हिंदी का प्रचार–प्रसार होगा एवं रोज़गार के नए अवसर मिलेंगे।

3. हिंदी वेबसीरिज़ और फ़िल्मों से दर्शकों की आशाएँ एवं अपेक्षाएँ

नई पीढ़ी के दर्शक वेबसीरिज़ एवं फ़िल्मों में नएपन की माँग करती है। हिंदी वेबसीरिज़ और फ़िल्मों में दर्शकों की आशाएँ एवं अपेक्षाएँ ज़्यादा हैं। एक फ़िल्म के लिए जितनी सामग्री लगती है, वहीं वेबसीरिज़ के लिए फ़िल्म से तीन गुना अधिक सामग्री की आवश्यकता होती है। मान लीजिए एक फ़िल्म के लिए लगभग सौ पन्ने लिखने होते हैं, वहीं वेबसीरिज़, जो लगभग दस एपिसोड में होता है, तो उसके लिए 300 से 400 पन्नों तक की स्क्रिप्ट लिखने की आवश्यकता पड़ती है, जो कई बदलावों से गुज़रती है। एक फ़िल्म की अपेक्षा वेबसीरिज़ के लिए विस्तृत फैलाव की संभावना है। दर्शकों की उम्मीदों एवं अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए गुणवत्तापूर्ण लेखन की आवश्यकता है। आज वेबसीरिज़ का दौर चल रहा है, जिसकी वजह से हिंदी लेखकों को रोज़गार के अनेक अवसर मिल रहे हैं, जो भविष्य में कई आशाएँ लेकर आ रहे हैं।

4. पटकथा लेखन - स्क्रिप्ट राइटिंग

आज ओटीटी पर जो वेबसीरिज़ कुकुरमुत्ते की तरह उग रही है, उसके लिए हिंदी के लेखकों की माँग बढ़ रही है। ओटीटी की पटकथा लिखने के लिए हमें युवा हिंदी लेखकों की आवश्यकता है। पटकथा लिखने की जिसके पास कला एवं भाषा है, उसके लिए आज का दौर अधिक कारगर साबित हो रहा है। वेबसीरिज़ के सीज़न एक के समाप्त होने तक उसका दूसरा, तीसरा और कई सीज़न तक कार्य करने की गुंजाइश अधिक है, इसके लिए पटकथा लिखने की माँग बढ़ती रहेगी। पहले फ़िल्मों से जुड़े हुए लोग ही पटकथा-लेखन करते थे और उनकी माँग ज़्यादा थी, पर ओटीटी आने के पश्चात् हिंदी लेखकों को नया अवसर मिला है। ओटीटी कंपनियाँ आज लेखक की गुणवत्ता पर ज़ोर दे रही हैं, इसलिए क्षेत्रीय भाषाओं के पटकथा लेखकों को ओटीटी कंपनियाँ रोज़गार के अवसर प्रदान कर रही हैं। ओटीटी पर हिंदी में पटकथा लेखन का उज्ज्वल भविष्य है; इसे नकारा नहीं जा सकता।

5. नए विषयों पर गंभीर लेखन

आज हम ऐसे दौर में जीवन यापन कर रहे हैं,

जहाँ पारंपरिक एवं घिसीपिटी एवं सतही सामग्री के लिए कोई जगह नहीं है। आज के दर्शक पारंपरिक एवं पुरानी शैली को पसंद नहीं कर रहे हैं, इसीलिए आज के हिंदी लेखकों के लिए नए विषयों पर विचार करने की आवश्यकता है। कहानी में एक ऐसा नया मोड़ होना चाहिए, जो दर्शकों को लुभा सके। तभी जाकर हिंदी लेखकों की पहचान बनेगी और रोज़गार के अनगिनत अवसर पैदा होंगे। नए और गंभीर विषयों पर लेखन की बात करते हुए मशहूर निर्देशक तिग्माशु धुलियाँ लिखते हैं – "लोग अब सतही सामग्री को बर्दाश्त नहीं करते हैं। ऐसे में लेखकों पर नए विषय पर, नए तरीके से सोचने और बेहतर कहानी लिखने का बड़ा दबाव है और प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। अगर एक लेखक सामाजिक-आर्थिक मुद्दों से जुड़े विषयों को गहराई से कहने की क्षमता रखता है, तो वह वैश्विक स्तर के दर्शकों की निगाह में आ सकता है।" उनका कथन है कि इस वक्त लेखकों को जितनी आज़ादी है और वे जितने विषयों पर सोच पा रहे हैं, वैसा मौका सिनेमा या टीवी नहीं दे पाया था। वे कहते हैं - "जब तक सेंसरशिप की बाधाएँ नहीं हैं, तब तक तो लेखकों के लिए अपार मौके हैं।" [10]

6. **ओटीटी मंच को नए लेखकों की ज़रूरत**

मनोरंजन के नए दर्शकों के लिए हमें नए हिंदी लेखकों की आवश्यकता है। जैसा कि आप जानते हैं कि फ़िल्मों के मुकाबले वेबसीरिज़ का फलक कम-से-कम तीन गुना ज़्यादा होता है इसीलिए उसे अधिक कंटेंट लेखन की ज़रूरत है। आज साहित्य, समाज, विज्ञान, ज्योतिष, क्राइम, नाटक, कविता, इतिहास आदि विषयों पर वेबसीरिज़ का निर्माण किया जा रहा है। आज के दर्शकों की माँगों को देखते हुए वेबसीरिज़ पटकथा का लेखन ज़रूरी है। इन सभी विषयों पर पटकथा लेखन के लिए हिंदी लेखकों की आवश्यकता है। ओटीटी मंच और इसकी कला को समझते हुए आज के युवा लेखकों को लेखन करना होगा। लेखक चंदन कुमार ने लिखा है – "नए लेखकों को ओटीटी मंच की ज़रूरतों और इस कला की समझ होनी चाहिए, क्योंकि यह फ़िल्मों से अलग है। वैसे जो हिंदी लेखक फ़्रीलांसर के तौर पर काम करते हैं, उन्हें हर स्तर पर अपना रास्ता बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।" [11]

7. **कार्य का मेहनताना बढ़ा**

फ़िल्मों के लिए हिंदी लेखकों का मेहनताना कम था। ओटीटी के आने के पश्चात् हिंदी लेखकों को टीवी या फ़िल्मों के मुकाबले ज़्यादा मेहनताना प्राप्त हो रहा है। स्क्रीनराइटर्स ऐसोसिएशन ने फ़िल्मों में लेखन के लिए फ़ीस का एक स्लैब तैयार किया हुआ है, जिसके अनुसार 5 करोड़ रुपये बजट की फ़िल्म के लिए लेखक को 12 लाख रुपये, 5 करोड़ रुपये से 15 करोड़ रुपये बजट के लिए 24 लाख रुपये और 15 करोड़ रुपये से ज़्यादा बजट की फ़िल्म के लिए लेखक को न्यूनतम 36 लाख रुपये फ़ीस दी जानी चाहिए। लेकिन ओटीटी के लेखन के लिए कोई मानदंड आज तक तय नहीं हुआ है। ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर मेहनताना के लिए बजट और प्रोटेक्शन हाउस पर निर्भर करता है। आज तक के प्रदर्शित वेबसीरिज़ पर दृष्टिपात करें, तो यह दिखाई देता है कि आज के हिंदी लेखक एक वेबसीरिज़ के लिए 30 से 50 लाख तक लेते हैं। हालाँकि नए लेखकों को एक एपिसोड के लिए 50 हज़ार से 5 लाख तक मिल सकते हैं, यह उस वेबसीरिज़ के बजट पर निर्भर करता है।

8. **गुणवत्ता पर ज़ोर**

वेबसीरिज़ का फैलाव ज़्यादा होने के कारण, इसमें दोहराव की गुंजाइश है, जिससे बचते हुए, मौलिकता को बरकरार रखना ज़रूरी होता है। वेबसीरिज़ पर कई स्तरों पर कार्य होता है। इसको लेकर अनु कहती है – "वेबसीरिज़ पर कई स्तरों पर काम होता है। कई दफ़ा टीम के साथ लेखन में आपकी मूल कहानी कोई और मोड़ ले लेती है। सभी लेखकों के लिए यह आसान नहीं होता।

कई बार कहानी क्रियान्वयन के स्तर पर पहुँच नहीं पाती, तो आपकी साल भर की मेहनत खराब भी हो सकती है।"[12]

9. स्थानीय भाषाओं के लेखकों को अवसर

ओटीटी कंटेंट ज़्यादा प्रभावपूर्ण दिखाने के लिए स्थानीय भाषाओं एवं वहाँ के लेखकों का चयन होता है। वे कंटेंट में वहाँ की मिट्टी की सौंधी-सौंधी खुशबू को देखना चाहते हैं। स्थानीय लेखक वहाँ की सभी अच्छाइयों एवं कमियों से अच्छी तरह अवगत रहते हैं, इसीलिए उनके लेखन में मौलिकता, गुणवत्ता एवं प्रामाणिकता होती है।

10. ओटीटी का बढ़ता बाज़ार

आज का दर्शक फ़िल्म या वेबसीरिज़ सिनेमाघरों में देखने पर उतना बल नहीं दे रहा है, क्योंकि जीवन की इस आपाधापी में उसके पास वक्त की कमी है। ओटीटी के माध्यम से वह अपने समय के अनुसार कहीं पर भी स्ट्रीमिंग के द्वारा देखना ज़्यादा पसंद कर रहा है। उद्योग के अनुसार ओटीटी का बाज़ार कितना बढ़ गया है, इसे शिखा शालिनी के आंकड़ों द्वारा समझने की कोशिश करते हैं – "उद्योग के अनुमान के मुताबिक देश का ओटीटी बाज़ार 2018 के 4,464 करोड़ रुपये से बढ़कर 2023 तक 11,976 करोड़ रुपये के स्तर तक पहुँच सकता है, क्योंकि इसमें अब विज्ञापन साझेदारी के लिए भी संभावनाएँ तैयार हो रही हैं। टैम के आंकड़ों के मुताबिक लॉकडाउन की अवधि के दौरान ज़्यादा दर्शक सबस्क्राइबर मिलने से ओटीटी विज्ञापन में भी तेज़ी देखी गई और यह मार्च के मुकाबले अप्रैल में दुगुनी हो गई। देश में ओटीटी वीडियो बाज़ार से जुड़ी रेडसियर कंसल्टिंग की रिपोर्ट के मुताबिक मार्च और जुलाई 2020 के बीच ओटीटी के सबस्क्राइबरों की तादाद 30 फ़ीसदी तक बढ़ी और यह 2.2 करोड़ से बढ़कर 2.9 करोड़ हो गई। इसके अलावा अप्रैल-जुलाई 2020 के दौरान कुल स्ट्रीमिंग में 50 फ़ीसदी से अधिक हिंदी भाषा का योगदान था।"[14]

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि हिंदी आज केवल साहित्य की भाषा न होकर बाज़ार, व्यापार, मनोरंजन और विश्व की भाषा बन चुकी है। इन सारी बातों पर गंभीर रूप से, सकारात्मक कार्य किए जाएँगे, तो ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी का भविष्य उज्ज्वल होगा। हिंदी ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर अन्य भाषाओं की स्पर्धा में तीसरे पायदान पर है। भविष्य में हिंदी अपना पहला स्थान ग्रहण करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

संदर्भ :

1. https://hindi.moneycontrol.com/mccode/news/print.php?id=185755&sr_no=&classic=truehttp
2. https://navbharattimes.indiatimes.com/tech/gadgets-news/cable-tv-vs-ott-war-debate-starts-after-multiplex-ott-war-netflix-amazon-prime-hotstar-mx-player/articleshow/81482285.cms
3. https://navbharattimes.indiatimes.com/tech/gadgets-news/cable-tv-vs-ott-war-debate-starts-after-multiplex-ott-war-netflix-amazon-prime-hotstar-mx-player/articleshow/81482285.cms
4. https://www.allhindime.net/ott-platform-kya-hai-hindi/
5. https://www.allhindime.net/ott-platform-kya-hai-hindi/
6. https://www.allhindime.net/ott-platform-kya-hai-hindi/
7. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
8. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
9. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
10. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
11. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
12. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
13. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
14. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054

saichaple@gmail.com

हिंदी-शिक्षण

20. राजभाषा अध्ययन की नई दिशाएँ - डॉ. प्रशांत प्रसाद गुप्त

21. हिंदी और ब्रजभाषा में प्रयुक्त पुरुषवाचक सर्वनाम और उनके कारकीय प्रयोग - डॉ. शेफ़ाली चतुर्वेदी

22. हिंदी भाषा की जागरूकता के प्रति बी.एड के प्रशिक्षणार्थियों के मंतव्यों का अभ्यास - डॉ. दीपक कुमार रविशंकर पंड्या

23. हिंदी-शिक्षण : हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के विशेष संदर्भ में - डॉ. बिन्द कुमार चौहान

राजभाषा अध्ययन की नई दिशाएँ

- डॉ. प्रशांत प्रसाद गुप्त
पुणे, भारत

आज कोरोना काल में सब बंद हैं, फिर भी शब्द अपना कार्य कर रहा है, चाहे वो वेबिनार हो या ई-गोष्ठी या पुस्तक-लेखन या आलेख-लेखन, ये सब कार्य तीव्र गति से हो रहे हैं। भाषा तो भाषा होती है। इसके कई रूप होते हैं। इसके विभिन्न रूपों में से एक रूप है राजभाषा। हम लोग साहित्य का अध्ययन करते हैं। जब हम राजभाषा की बात करते हैं, तब संघ सरकार की राजभाषा पर बात करने के आदी हो गए हैं। संघ सरकार अर्थात् केंद्र सरकार की जो राजभाषा है, हमारी दृष्टि वहीं तक सीमित हो गई है। राजभाषा क्या केवल संघ सरकार की होती है? अनेक प्रांत हैं। हर प्रांत की भी अपनी एक राजभाषा होती है, लेकिन उन राजभाषाओं की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। हम लोग कभी उत्तर प्रांत, दक्षिण प्रांत, पश्चिम प्रांत और पूर्व प्रांत में स्थित राज्यों की राजभाषा के विषय में बात नहीं करते हैं, उस राजभाषा विमर्श को हम एकदम हाशिए पर रख देते हैं, सिर्फ़ हम संघ सरकार द्वारा लागू की गई राजभाषा के विषय में ही अधिक से अधिक बात करते हैं और उनकी जानकारी रखते हैं। आज हमें उससे थोड़ा आगे बढ़ने की आवश्यकता है।

संघ सरकार की राजभाषा के लिए सारे लोग चौकन्ना और सचेत हैं। इसलिए हम लोग भी बहुत सपने देखते हैं और उन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए त्याग और समर्पण के साथ पूरी मेहनत से कार्य करते हैं। संघ सरकार राजभाषा का जो उद्देश्य है, उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उसकी सेना के रूप में हम सारे राजभाषा विशेषज्ञ तैनात हैं। जैसे कि कोविड-19 से लड़ने के लिए सभी डॉक्टर, नर्स और सिपाही तैनात हैं, वैसे ही राजभाषा की सेवा में सभी राजभाषा विशेषज्ञ भी तैनात हैं। राजभाषा की चुनौतियों को शिकस्त देने के लिए राजभाषा के सारे सिपाहियों को चौकन्ना और सजग रहने की आवश्यकता है।

संविधान में राजभाषा प्रावधानों का मूल उद्देश्य है राष्ट्रीय संगति। राष्ट्रीय संगति भाषा विमर्श के जाल में न फँस जाए। इस उद्देश्य के लिए हमें बड़े ही अनुशासित ढंग से विपरीत परिस्थितियों में पूरे संयम और अनुशासन के साथ धीरे-धीरे राजभाषा को एक-एक कदम आगे बढ़ाते रहना होगा और संविधान द्वारा अपेक्षित राजभाषा के लक्ष्यों को पूरा करने की दिशा में सतत प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है।

राजभाषा को लेकर कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। वैसे तो हम लोग जानते हैं हिंदी नाम से कोई भाषा नहीं है। जिसे हम हिंदी कहते हैं, वह तो एक खड़ी बोली है। कभी ऐसा भी समय था हिंदी कहे जाने से खड़ी बोली समझ में नहीं आती थी, हिंदी कहने पर ब्रज और अवधी समझ में आती थी। राजभाषा के रूप में केवल खड़ी बोली नहीं है, एक भाषा-समूह का नाम हिंदी है, इसे हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिए। इस हिंदी शब्द के मूल अर्थ में हम लोग जाएँ, तो इतिहासकार अलबरूनी ने 7वीं-8वीं शताब्दी में सिंधु नदी के किनारे खड़े होकर इशारा किया था कि इधर की सारी भाषाएँ हिंदी हैं। अर्थात् तात्पर्य हुआ कि सिंधु नदी के किनारे जो समाज बसा हुआ है उस भूखंड की भाषाएँ हिंदी कहलाती हैं। हिंदी के अंतर्गत सारी भाषाएँ आती हैं, एक भाषा नहीं। तो इसी उद्देश्य से हिंदी को समस्त राज्यों द्वारा स्वीकार करने की आवश्यकता है।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका में पब्लिक में कोई भी व्यक्ति जर्मन बोले अथवा कोई भी दूसरी भाषा

बोले तो उसे सज़ा हो जाती थी। उसका विरोध होता था कि अमेरिका में विदेशी भाषा और जर्मन भाषा नहीं चलेगी। अमेरिका में जर्मन भाषा का बड़ा बोलबाला था। अमेरिका में 41 वोट जर्मन भाषा को और 42 वोट अंग्रेज़ी भाषा को मिले थे, परिणामस्वरूप वहाँ अंग्रेज़ी राजभाषा के रूप में स्थापित हो गई। जर्मन भाषा की क्षमता को हम अस्वीकार नहीं कर सकते, लेकिन मैं चेतना की बात कर रहा हूँ। यहाँ चेतना अर्थात् अमेरिका में विदेशी भाषा का विरोध था। विदेशी भाषा का प्रयोग हम नहीं करेंगे, जो लोग विदेशी भाषा का प्रयोग करते थे, उनके लिए सज़ा का भी प्रावधान था। हम दक्षिण भारत को देखते हैं, तो पाते हैं कि कभी वहाँ भी हिंदी का विरोध होता था। पूर्वोत्तर भारत में हम देखते हैं कि आज से 20-25 वर्ष पहले मणिपुर, नागालैंड, मेघालय, असम और त्रिपुरा आदि प्रांतों में हिंदी का विरोध होता था, जो अशान्ति का कारण बनता था। इसके कारण हत्याएँ भी कर दी जाती थीं। पूर्वोत्तर भारत के साथ-साथ दक्षिण भारत में भी यही हालात थे। इस विरोध को मिटाने के लिए और इन प्रांतों में हिंदी को स्थापित करने के लिए भारत सरकार ने कई प्रावधान बनाए, जिसके अन्तर्गत राजभाषा के अधिनियम और नियम भी शामिल हैं। इन प्रांतों के अंतर्गत हिंदी के प्रचार-प्रसार और कार्यान्वयन के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के एक-एक क्षेत्रीय कार्यालय की स्थापना की गई। इन प्रांतों में कुल तीन संस्थानों की स्थापना की गई, खासकर हम वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की बात करते हैं, तो पता चलता है कि शब्दावली आयोग बहुत से कोशों का निर्माण करता है और हिंदी को स्वीकृति प्राप्त हो और लोग हिंदी समझें इन कार्यों में निरंतर लगा हआ है। शब्दावली आयोग अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों को लेकर हिंदी में शब्द-निर्माण कर शब्दकोश तैयार करने का कार्य कर रहा है।

इस सिलसिले में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हैं - संविधान का लक्ष्य है; भारत की अखंडता यानी भाषायी आधार पर देश बँटा हुआ न हो और अखंड देश में संगति बनी रहे। इस उद्देश्य से सभी प्रांतों को हिंदी स्वीकार करनी चाहिए। यदि ऐसा संभव नहीं हो रहा है, तो यह चिंता का विषय नहीं, चिंतन का विषय है। यह नामुमकिन नहीं है; कोशिश करेंगे तो अवश्य सफल हो जाएँगे। उदाहरण के तौर पर बंगाल में भी हिंदी का विरोध होता है। भाषा के तहत आप लोगों ने सुनीति बाबू का नाम सुना ही होगा, सुनीति बाबू जिस हिंदी को चाहते थे वह हिंदी उस समय कोलकाता में फल-फूल रही थी। हिंदी पत्रिका, हिंदी समाचार और हिंदी के गद्य-पद्य साहित्य पर बेहतर तरीके से कार्य हो रहा था। उस दौर में कलकता विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन आरंभ हो चुका था। उसका जो स्वरूप तब था, वह आज नहीं दिख रहा है। यह बंगाल समाज के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। तात्पर्य यह है कि बिहारी बोलियों का प्रभाव कलकता में बोली जाने वाली हिंदी पर ज़बरदस्त तरीके से था, जैसे - "मैं खाया हूँ", "गीता खायी है।" यह लिंग दृष्टि से था, वह कोलकाता की हिंदी नहीं थी। बंगाल समाज की हिंदी थी - "सीता आया", "राम आया", "गाय आया", "बैल आया।" सबके लिए क्रिया के रूप में एक ही क्रिया का प्रयोग किया जाता था। इसीलिए जो संपर्क भाषा है, उसमें सुधार की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति में डॉ. राम विलास शर्मा यह कहते हैं कि - "सामाजिक-सांस्कृतिक जातीयता की दृष्टि से हिंदी बोलने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज़्यादा है। विशाल हिंदी-भाषी जन समूह का गठन, उसकी जातीय भाषा का विकास, उसका सांस्कृतिक अभ्युत्थान और उसके साहित्य की प्रगति सारे भारत की प्रगति की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। अपनी विशेषताओं के फलस्वरूप हिंदी सारे देश की प्रगति एवं सांस्कृतिक विकास की कड़ी के रूप में काम करने में सक्षम रही है। तब हमें चाहिए कि आज के प्रतिगामी समाज में, जहाँ जैविक क्रांति और तकनीकी प्रगति दस्तक दे रही हैं, वहाँ हिंदी भाषा को रोज़ी-रोटी का माध्यम बनाया जाए। उसे रोज़गारोन्मुख, प्रयोजनमूलक और व्यवहारोन्मुख बनाया जाए।"[1]

जो राजभाषा है वह साहित्य की भाषा नहीं है। साहित्य की भाषा भिन्न है, जो साहित्य का अध्ययन करेगा, वह साहित्य की भाषा को पढ़ेगा। अगर राजभाषा को अध्ययन का विषय बनाया जाए, तो वह भाषा साहित्य की नहीं होगी। राजभाषा का उद्देश्य है - आम लोगों और सरकार के बीच कम्युनिकेशन की समस्या न हो, दोनों पक्षों में संप्रेषण प्रक्रिया निर्बाध हो।

यदि हम रूस को देखें, तो रूस में हम पाते हैं कि वहाँ की राजभाषा पर विदेशी भाषाओं, खासकर यूरोपीयन लैंग्वेजेस का प्रभाव है। हम हिंदी वालों ने क्या यूरोपीयन लेंग्वेजेस को नहीं अपनाया? राजभाषा हिंदी में भी पश्चिमी लेंग्वेजेस के मॉडल लैंग्वेज को बखूबी अपनाया गया है। हमें विकास करना है, इसलिए हमें अपनी भाषा के लिए डिक्शनरी का कलेवर बढ़ाने की आवश्यकता है। पहले हमें अपने देश की भाषा के विकास के विषय में बात करनी चाहिए और फिर हमें अंतरराष्ट्रीय भाषा के स्तर पर बात करनी चाहिए। हम अपने देश में राजभाषा का कलेवर कैसे बढ़ाएँ। उदाहरण के तौर पर हम बंगाल के विषय में जानते हैं। बंगला साहित्य में नाटक, उपन्यास बेहद अच्छे हैं। बंगला में साहित्य की बहुत-सी विधाएँ हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता और अनुवाद, अर्थात् हर विधा की शब्दावली अलग-अलग है। तात्पर्य है कि जब हमारा देश आज़ाद हुआ तब कुछ लोगों ने कहा कि भारत की आँखें अभी खुली हैं। भारत में हिंदी नामक राजभाषा का निर्माण अभी हुआ है, उसका तो अतीत ही नहीं है। उस समय का जो परिवेश और परिस्थिति थी; चाहे शिक्षा में हो या राजनीति में हो या प्रशासन में हो; अंग्रेज़ी का वर्चस्व था। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजभाषा के लिए हिंदी का प्रयोग चाहते थे, फिर भी राष्ट्रीय जीवन में उन्होंने अंग्रेज़ी को अति आवश्यक बताया – After all, it is on account of that language we have been able to achieve many things; apart from the role that English has played in unifying India politically, and thus in our attaining political freedom; it opened to us the civilization of large parts of the world. It opened to us knowledge, especially in the realm of science and technology which would have been difficult to achieve otherwise. अर्थात् इस भाषा के कारण ही हमें अनेक उपलब्धियाँ हुई हैं। इसके अतिरिक्त, देश के राजनीतिक एकीकरण और उसकी स्वतंत्रता प्राप्ति में अंग्रेज़ी का बहुत बड़ा हाथ है। इसके माध्यम से संसार के अनेक भागों की संस्कृति के द्वार हमारे लिए खुल गये। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की जो प्राप्ति हमें अंग्रेज़ी पढ़ने से हुई, वह अंग्रेज़ी की जानकारी के बिना मुश्किल थी ।"[२] विदेश में जो अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती थी, उसके अपेक्षाकृत देश में पढ़ाई जाने वाली अंग्रेज़ी घटिया थी, क्योंकि उसका बड़ा लक्ष्य नहीं था। बस उसे क्लर्क बनाना था। उसी विशेष उद्देश्य के लिए हिंदी को लागू किया गया था। इसीलिए देश में अंग्रेज़ी के अध्ययन-अध्यापन का विशेष महत्त्व नहीं था। क्योंकि अंग्रेज़ी इतनी ज़रूरी नहीं थी। इस तरह हम देखते हैं कि आज आज़ाद भारत में भी अंग्रेज़ियत का ही बोलबाला है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय जितनी भी महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्थाएँ थीं, उन सबने अपने कार्यक्रमों में हिंदी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। ब्रह्म समाज, आर्यसमाज, सनातन धर्म सभा, थियोसोफ़िकल सोसाइटी, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन तथा राधास्वामी सम्प्रदाय आदि ने अपना संदेश लोगों तक पहुँचाने के लिए हिंदी का आश्रय लिया। दक्षिण भारत में इसका विकास 'दक्खिनी हिंदी' के नाम से हुआ। अंग्रेज़ों ने दक्षिण भारत पर अपने राज्य का प्रसार करते समय गोरे फ़ौजी अफ़सरों के लिए यह ज़रूरी कर दिया था कि वे हिंदी सीखें। जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार उन दिनों कुछ अंग्रेज़ सौदागर नि:संदेह धड़ल्ले से हिन्दुस्तानी बोल सकते थे। कुल मिलाकर हिंदी इस देश की संस्कृतिक एकता की भाषा रही है - " Thus we see that the installation of Hindi as the national language is merely a regeneration brought about through a removal of the adverse conditions created by political

subjugation. Indeed, this regeneration may justifiably be called self-deliverance, for the rise of Hindu xxx in the back ground, there is the Sanskrit vocabulary, well organised and abundant in meaning and several dialects, spoken over a wide and extensive region xxx the time – honoured common speech of Madhyadesh is once again fast growing to be a medium of the cultural unity of India." [3]

आज राजभाषा हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार करने की बात चल रही है, किन्तु राजभाषा शब्द के मानकीकरण का प्रयोग विभिन्न प्रांतों में विभिन्न रूप से होता है। जैसे कि हिंदी में 'पुस्तकालय' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जबकि बंगाल में 'ग्रंथालय' शब्द प्रचलित है। हम लोग पुस्तकालय के अध्यक्ष को 'पुस्तकालयाध्यक्ष' बोलते हैं, किंतु बंगाल में उनको 'ग्रंथागाली' बोला जाता है। बंगाल का जो मिज़ाज है, वह मीठी भाषा का है। उनको कठोर भाषा नहीं चाहिए, उन्हें मीठे रस वाली शब्दावली पसंद है। इसलिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को चाहिए कि वे पश्चिम बंगाल में आकर प्रत्येक ज़िले में बड़ी ज़िम्मेदारी के तहत शब्दावली-निर्माण के लिए कार्यशाला की व्यवस्था करें। बंगाल के गणमान्य जाने-माने विद्वानों से कहें कि वे उन्हें बंगला के कुछ शब्द उपलब्ध करवाएँ, जिससे हिंदी को और समृद्ध किया जा सके।

राजभाषा में जो संघ सरकार का विमर्श चल रहा है, उसके समक्ष हम नेपाल को देख सकते हैं कि नेपाल में भाषा की स्थिति क्या है। नेपाली भाषा को समृद्ध और विकसित करने के लिए लोग कितने तत्पर हैं। यदि हम पाकिस्तान, श्री लंका, बांग्लादेश, भूटान, मालदीप और अफ़गानिस्तान की स्थिति देखें, तो पता चलता है कि इन देशों में उनकी भाषा में ही अधिकांश प्रशासनिक कार्य होता है और वहाँ उनकी भाषा का वर्चस्व भी है। हमारे देश में अंग्रेज़ी को राजभाषा और हिंदी की सहयोगी भाषा के रूप में रखा गया था। कहीं-न-कहीं वर्चस्व अंग्रेज़ी का ही है। अफ़गानिस्तान में दो राजभाषाएँ हैं - पश्तो और दारी, श्रीलंका में दो राजभाषाएँ हैं - सिंहली और तमिल, नेपाल में नेपाली और विश्व भाषा दिवस का आरंभ बांग्लादेश से ही हुआ था। बांग्लादेश के कारण ही यू.एन.ओ. ने अंतरराष्ट्रीय भाषा दिवस की घोषणा की थी। भाषा दिवस के विषय में मैं कहना चाहता हूँ कि बांग्लादेश भी पश्चिम बंगाल के साथ भारत का भी एक अंग था। भाषा संवेदना पश्चिम बंग में है और विभाजित संवेदना पूर्व बंग में भी है। इसका मतलब यह है कि बांग्लादेश में भाषा संवेदना वही है। इसीलिए जब वहाँ उर्दू भाषा को राजभाषा बनाने की बात चली, तो बांग्लादेश में लोगों ने अपनी जान दे दी, उर्दू का विरोध किया और बंगला का समर्थन किया। बांग्लादेश की राजभाषा बंगला ही होगी, उर्दू नहीं। यह भाषिक संवेदना हम देख सकते हैं, तो बंगला और हिंदी में क्या अंतर है? हमारे पड़ोसी मुल्क से हम सीख सकते हैं कि कैसे उन्होंने अपनी भाषा के लिए संघर्ष किया और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बंगला भाषा का परचम लहराया। चाहे बांग्लादेश या पाकिस्तान के निवासियों के पूर्वज भारतीय हैं। इसी प्रकार वहाँ जो भारतीय हैं; चाहे वे पश्चिम बंगाल से हो या अन्य प्रांतों से, यदि वे चाहें, तो संपर्क भाषा, प्रशासनिक भाषा और शिक्षा भाषा के रूप में हिंदी का प्रचार कर सकते हैं। इसी प्रकार पूरे विश्व में जहाँ भी भारतीय हैं, वहाँ वे संपर्क भाषा के रूप में ही हिंदी का प्रचार-प्रसार कर सकते हैं। इससे हिंदी पूरे विश्व में विराजमान हो सकती है। बांग्लादेश की तरह भारत में भी हमें हिंदी का प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता है ।

इस प्रकार हम भारतीय बड़े या छोटे राष्ट्र में थोड़ा-सा कुछ कर देंगे, तो वहाँ हिंदी की गहनता बढ़ जाएगी। सार्क देशों में भी केंद्रीय हिंदी संस्थान या केंद्रीय हिंदी निदेशालय हो या वैज्ञानिक तथा शब्दावली आयोग हो, उन्हें सार्क देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कदम उठाना चाहिए। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा जो है यूरोप के विद्यार्थियों को हिंदी सिखाने के लिए कुछ प्रयास कर रहा है, किन्तु सार्क देशों के लिए हम कुछ भी

नहीं कर रहे हैं। जब तक हम उनकी भाषा को सम्मान नहीं देंगे, तब तक वे भी हमारी भाषा को सम्मान नहीं देंगे। हिंदी प्रचार-प्रसार खास करके इन छोटे-छोटे देश में करने की आवश्यकता है। हिंदी की उपयोगिता को वे बखूबी समझते हैं, लेकिन उनको सीखने का अवसर नहीं है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय को वहाँ पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से हिंदी सर्टिफ़िकेट, डिप्लोमा और डिग्री कोर्स की पढ़ाई का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। सुप्रसिद्ध कवि और आलोचक श्री अशोक वाजपेयी कहते हैं कि संसार में शायद ही किसी भाषा ने पिछली सदी में इतिवृतात्मकता की सीढ़ी से चढ़ना शुरू कर इतनी कम अवधि में इतनी पहुँच बनाई होगी, जितनी हिंदी ने, पर दुर्भाग्य से इसी हिंदी की जड़ ज़मीन से पनपी प्रयोजनमूलक या व्यावहारिक हिंदी, जो 70 के दशक से अपने नामकरण, संकल्पना, अवधारणा और विविध आयामों को लेकर अपनी कोई निश्चित शक्ल अख्तियार न कर पाने के कारण आज भी सहमति-असहमति के बीच हिचकोले खा रही है। इसकी संकल्पना और अवधारणा को लेकर हिंदी विद्वानों में समय-समय पर व्यापक बहस हो रही है और यह बहस आज भी सतत जारी है। काफ़ी अंतर्विरोध और धड़ेबंदियाँ हैं।[4]

यदि विदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है और हिंदी को विश्व भाषा बनाना है, तो प्रश्न यह उठता है, विदेशियों को हिंदी पढ़ाने की क्या व्यवस्था है? जो टेक्स्ट बुक स्टडी मैटेरियल है, वह कितनी भाषाओं में है? विश्व स्तर पर हम हिंदी को ले जाने के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया है। विदेशी भाषाएँ कितनी हैं? कितने को इस पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है? यह जानने की ज़रूरत है। हम देख सकते है कि जो रवींद्र साहित्य है, विशेषकर अपने संदेश, अपने प्रतिपाद्य और दर्शन के लिए विश्व स्तर पर स्वीकृत है, तो क्या रवींद्र साहित्य का अनुवाद विश्व की समस्त भाषाओं में हो गया? यह भी एक प्रश्न है हिंदी के समक्ष। भारत से संस्कार और धर्म का संदेश लेकर गौतम बुद्ध चीन, जापान और कोरिया गए थे, पर वहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार और विस्तार किया। यह प्रश्न उठता है कि गौतम बुद्ध ने जिस बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार भारत से किया, तो क्या उनके संदेश की भाषा चीनी, जापानी और कोरिया भाषाएँ थीं? उत्तर होगा 'नहीं'। फिर भी आज वहाँ बौद्ध धर्म को पूजा जाता है। इसी प्रकार हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए, वहाँ हिंदी के विशेषज्ञ की ही ज़रूरत है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. प्रयोजनमूलक हिंदी की नयी भूमिका, डॉ. कैलाश नाथ पाण्डेय पृ.16
2. वही पृ. 103
3. वही पृ.278
4. वही, पृ.8 -9

prasant.ftii@gmail.com

हिंदी और ब्रजभाषा में प्रयुक्त पुरुषवाचक सर्वनाम और उनके कारकीय प्रयोग

- डॉ. शेफ़ाली चतुर्वेदी
आगरा, भारत

सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं, जो पूर्वापर सम्बन्ध से किसी भी संज्ञा के बदले आता है। हिंदी के सर्वनामों पर प्राकृत तथा अपभ्रंश का प्रभाव है, क्योंकि ये वहीं से घिसते-बनते आये हैं। संभाषण में सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाले महत्त्वपूर्ण भाषाई तत्व पुरुषवाचक सर्वनाम है। इन साधारण से भाषाई प्रतीकों के पीछे पूरा सामाजिक व्यवहार समझा जा सकता है। ब्रज भाषा में प्रयुक्त होने वाले मूल सर्वनामों की संख्या बारह है, किंतु प्रयोग के स्तर पर उनके कई रूप बनते हैं। हिंदी में कुल ग्यारह सर्वनाम हैं। प्रयोग के आधार पर सर्वनाम के आठ भेद होते हैं – पुरुषवाचक, निजवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, सम्बन्धवाचक, नित्यसम्बन्धी, प्रश्नवाचक, आदरवाचक। आदरवाचक सर्वनाम के रूप ब्रजभाषा काव्य में बहुत कम हैं, जो प्रयोग हैं भी उनमें 'रावरी' और 'राउरी' के प्रयोग मिलते हैं। हिंदी में 'तू' का प्रयोग घनिष्ठता, मैत्री, सौहार्द या आत्मीयता के लिए होता है, किंतु कुछ विशेष परिस्थितियों में यह धृष्टता का प्रतीक बन जाता है। कुछ स्थितियों में यह इंगित करता है कि 'तू' का प्रयोग करने वाला व्यक्ति, श्रोता से आयु, बल, पद, प्रतिष्ठा आदि में बड़ा है। हिंदी के व्याकरण में 'आप' ही आदरसूचक सर्वनाम है, 'तू' नहीं। भाषा के सार्वभौम नियम भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि बहुवचन रूप का एकवचन में प्रयोग आदर सूचित करने के लिए किया जाता है; किन्तु यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखें, तो ब्रजभाषा में सर्वनामों के कारकीय प्रयोगों में मानक हिंदी से अधिक रूप दिखायी देते हैं।

मध्यदेश की मुख्य साहित्यिक बोलियाँ - अवधी, ब्रजभाषा और खड़ी बोली पृथक-पृथक होने पर भी आरंभ से एक ही भाषायी परंपरा की संवाहिका प्रतीत होती हैं। वस्तुतः खड़ी बोली उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हुई ब्रजभाषा आदि अन्य भाषाएँ। अपभ्रंश काल के जैन आचार्यों, बौद्ध-सिद्धों, नाथ पंथियों, चारण-कवियों आदि की रचनाओं को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें खड़ी बोली का आरंभिक रूप उसी प्रकार पाया जाता है, जिस प्रकार ब्रज, अवधी, पंजाबी आदि अन्य भाषाओं का। जिस प्रकार अवधी ने ब्रजभाषा में अपना अस्तित्व मिलाकर अवधी मिश्रित ब्रजभाषा के निर्माण में सहयोग किया, उसी प्रकार ब्रजभाषा ने भी खड़ी बोली का मार्ग बाधा रहित कर उसे एक नवीन साहित्यिक भाषा के रूप में पहचान दी। डॉ. नामवर सिंह के मतानुसार - "इस तरह व्याकरण की दृष्टि से अपभ्रंश के बाद अवधी से लेकर खड़ी बोली तक एक ही भाषा का निरंतर परिमार्जन और परिष्कार प्रतीत होता है। सदियों तक घिसते-घिसते प्रत्ययों, विभक्तियों, परसर्गों, उपसर्गों आदि ने आधुनिक परिनिष्ठित रूप धारण किया; इस प्रवाह में कुछ प्रत्यय-परसर्ग प्रवाह-पतित अथवा अप्रचलित हो गए और कुछ नए आ मिले; फिर भी व्याकरण का ढाँचा बहुत कुछ वही रहा। उच्चारण और ध्वनि-विकार संबंधी छोटे-मोटे स्थानीय भेदों के बावजूद अवधी, ब्रजभाषा और खड़ी बोली एक ही हिंदी के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। (सिंह नामवर, 2006, हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, पृ. 92)

इस संदर्भ में एक प्रश्न पर विचार कर हम मुख्य विषय पर आएँगे कि वह क्या वजह थी, जिसके कारण हिंदी के विकास-क्रम में खड़ी बोली उसकी सहयात्री रही और ब्रजभाषा पीछे रह गई? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा की तीन सहायक शक्तियाँ थीं,

जिन्होंने उसे मज़बूती प्रदान कीं। वे थीं - कृष्ण भक्ति या वैष्णव धर्म, राजदरबार तथा संगीत। इन्हीं के वर्चस्व के कारण मध्यकाल में उसकी उन्नति हुई। उक्त शक्तियों के पतन के साथ ही ब्रजभाषा की सामाजिक स्थिति में भी बदलाव आया।

जिन ऐतिहासिक कारणों से ब्रजभाषा निर्जीव होती जा रही थी, उसी प्रकार के अन्य ऐतिहासिक कारण हैं, जो खड़ी बोली हिंदी के विकास में सक्रिय योगदान दे रहे थे। जैसे - अंग्रेज़ कर्मचारियों की शिक्षा, देशी शिक्षा, ईसाई धर्म का प्रचार, आर्य समाज, स्वतंत्र साहित्यिक प्रयास, पत्र-पत्रिकाएँ, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा हिंदी बनाम उर्दू का संघर्ष। "हिंदी जनपद में रहने वाले व्यक्ति अपने क्षेत्रीय कटघरे से ऊपर उठकर हिंदी को एक जातीय संपदा के रूप में देखते हैं, क्योंकि हिंदी का अपना एक जनपदीय इतिहास और सांस्कृतिक चेतना है, उसकी अपनी एक सांस्कृतिक धारा है जो ब्रज, अवधी, मैथिली आदि बोलियों के भीतर एक अंतःसलिला की भाँति प्रवाहित है।" (श्रीवास्तव रवींद्रनाथ, 2013, हिंदी भाषा का समाजशास्त्र, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 132)

खड़ी बोली और ब्रजभाषा समानान्तर आकार ले रही थी। किंतु अनुकूल अवसर पाकर जब खड़ी बोली हिंदी मानक भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित हुई, तब ब्रजभाषा को अपदस्थ होना ही पड़ा। दोनों भाषाएँ यद्यपि शौरसेनी अपभ्रंश की ही प्रतिनिधि हैं, किंतु सामाजिक स्थिति, प्रयोग एवं संरचना के कारण दोनों के सार्वनामिक प्रयोगों में जो अंतर दिखाई देता है एवं इन दोनों भाषाओं के सर्वनामों एवं उनके कारकीय प्रयोगों की क्या स्थिति रही है, उनका अध्ययन यहाँ अभीष्ट है।

मानक भाषा के व्याकरणिक नियम सुनिश्चित हो जाने के कारण संरचना की दृष्टि से उस भाषा में प्रयोग (experiment) की संभावनाएँ बहुत कम हो जाती हैं, किंतु जन बोली में प्रयोगगत स्वतंत्रता उसके स्वरूप को एक नया रंग देती है। यही कारण है कि हिंदी के सर्वनामों की तुलना में ब्रजभाषा में प्रयुक्त सर्वनामों की संख्या बहुत अधिक है। वहाँ सार्वनामिक अभिव्यक्ति के कई आयाम दिखाई देते हैं।

हिंदी सर्वनामों की एकरूपता उसकी एक ऐसी विशेषता है, जो भारत की अन्य वर्तमान भाषाओं में प्रायः नहीं मिलती।

कामता प्रसाद गुरु (गुरु कामता प्रसाद, 2014, हिंदी व्याकरण, दिल्ली पराग प्रकाशन) के अनुसार आधुनिक हिंदी में कुल मिलाकर 11 सर्वनाम हैं - मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन और क्या। ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले मूल सर्वनामों की संख्या बारह है - मैं, हौं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन और क्यों। (टंडन प्रेमनारायण, 1962, ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा, लखनऊ, लखनऊ विश्वविद्यालय, पृ. 75) प्रयोग के अनुसार इनके छह भेद किए जाते हैं- पुरुषवाचक, निजवाचक, निश्चयवाचक, संबंधवाचक, प्रश्नवाचक और अनिश्चयवाचक। धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिंदी भाषा का इतिहास' में हिंदी सर्वनामों के आठ मुख्य भेद माने हैं - पुरुषवाचक (मैं, तू), निश्चयवाचक (यह, वह), संबंधवाचक (जो), नित्यसंबंधी (सो), प्रश्नवाचक (कौन, क्या), अनिश्चयवाचक (कोई, कुछ), निजवाचक (अपना) तथा आदरवाचक (आप)। प्रश्नवाचक तथा अन्य सर्वनाम विशेषण भी बनते हैं। जब वे किसी संज्ञा के बदले आएँ, किसी संज्ञा का प्रतिनिधित्व करें, तब सर्वनाम और जब किसी संज्ञा के आगे पीछे लगकर उसकी विशेषता प्रकट करें, तब विशेषण कहलाते हैं। संभाषण में सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाले महत्त्वपूर्ण भाषाई तत्व पुरुषवाचक सर्वनाम हैं। साहित्यिक ब्रजभाषा कोश की भूमिका में डॉ. रमानाथ सहाय एवं पं. विद्यानिवास मिश्र ने विकारी सर्वनाम के लिए तिर्यक् (संश्लिष्ट एवं विश्लिष्ट) शब्द का प्रयोग किया है एवं बड़े वैज्ञानिक ढंग से ब्रजभाषा के संज्ञा-सर्वनाम की रूप-रचना को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार - "साहित्यिक ब्रज में मानक हिंदी की भाँति संज्ञा के दो रूप होते हैं - ऋजु और तिर्यक्। ऋजु के साथ कोई परसर्ग नहीं लगता है, तिर्यक् के साथ विविध परसर्ग लगते हैं। किंतु ब्रज में एक वैशिष्ट्य है, जिसके कारण केवल

मानक हिंदी जानने वालों को बोधन में कठिनाई होती है। वह है तिर्यक् में संश्लिष्ट विभक्ति - प्रत्ययों की उपस्थिति। संश्लिष्ट संस्कृत, प्राकृत-अपभ्रंश के परंपरागत रूप हैं, जो मानक हिंदी में कुछ सर्वनाम रूपों को छोड़कर लुप्त हो चुके हैं (सर्वनाम रूप - 'इसको', 'इसे', 'इनको', 'इन्हें', में 'इसे', 'इन्हें' में - 'ए', 'एँ' संश्लिष्ट प्रत्यय हैं) संश्लिष्ट रूप के तिर्यक् होते हुए भी परसर्ग की आवश्यकता नहीं होती।

मानक हिंदी की तरह सभी सर्वनाम प्रकार जैसे पुरुष वाचक (उत्तम और मध्यम पुरुष), निश्चय (दूरवर्ती और निकटवर्ती) वाचक, संबंधवाचक और नित्य संबंधी, प्रश्न (प्राणि और अप्राणि) वाचक, अनिश्चय (प्राणि और अप्राणि) वाचक, निज/आदरवाचक ब्रज में मिलते हैं। सर्वनाम की रूपरचना में भी संज्ञा की तरह विश्लिष्ट और संश्लिष्ट पद्धतियाँ प्रयुक्त होती हैं। ये ऋजु, तिर्यक् और संबंधकारकीय रूपों के साथ मिलती हैं। (मिश्र विद्यानिवास, सहाय रमानाथ, अग्रवाल रामेश्वर प्रसाद, सं. मण्डल, 1985, साहित्यिक ब्रजभाषा कोश, भाग-1 लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान)

ब्रजभाषा के तिर्यक विश्लिष्ट में लगने वाले परसर्ग हिंदी के परसर्गों से मिलते-जुलते हैं। हिंदी एवं ब्रजभाषा के परसर्गों की स्थिति इस प्रकार देखी जा सकती है -

कारक	हिन्दी	ब्रजभाषा
कर्ता	ने (विकारी)	ने (विकारी)
कर्म	को	को, कौ, कौं, कों, कूं, कुं हिं, कहँ
करण	से	से, सों, सौं, ते, तैं
सम्प्रदान	को	को, कों, कौं, कूं, कुं, हिं
अपादान	से	से, सों, सौं, ते, तैं
सम्बंध	का, के, की	को, कों, के, कें, कै, कैं, की
अधिकरण	में, पर	में, मैं, मो, पै, पर माँहि, माँझ, मंहँ, मधि

संज्ञा शब्दों की अपेक्षा सर्वनामों में ध्वनि-परिवर्तन बहुत अधिक दिखाई देता है। अनेक सर्वनाम तो इतने परिवर्तित हो गए हैं कि उनके मूल रूप से उनका संबंध सुनिश्चित करना कठिन-सा प्रतीत होता है। सर्वनामों में परिवर्तन के कारण उनसे संलग्न विभक्तियों के रूप में परिवर्तन भी होने के संकेत मिलते हैं। इस प्रक्रिया में बहुत संभव है कि ध्वनि-परिवर्तन से हुई क्षतिपूर्ति के लिए लोगों ने नए शब्दों की आवश्यकता अनुभव करते हुए उनका भाषा में प्रयोग आरंभ कर दिया होगा। संभवतः इसीलिए विभक्ति चिह्नों की असमर्थता की वजह से परसर्गों का प्रयोग किया जाने लगा है। इन परसर्गों में भी ध्वनि-परिवर्तन बहुत हुआ है। इसीलिए अनेक परसर्गों की व्युत्पत्ति संदेहास्पद बनी हुई है। परसर्गों में अत्यधिक ध्वनि-परिवर्तन होने का मुख्य कारण यह है कि सहायक शब्द के रूप में प्रयुक्त होने के कारण इन्हें प्रयत्न लाघव का शिकार होना पड़ता है। मुख्य शब्द झटके के साथ उच्चरित होता है, तो उस स्वरपात का प्रभाव परवर्ती परसर्ग पर भी पड़ता है, फलतः यह परसर्ग धीरे-धीरे मुख्य शब्द का ही एक अक्षर (सिलेबुल) बन जाता है। अधिकांश परसर्ग सर्वनामों के साथ अभिन्न रूप में जुड़कर उनके अंग बन गए; लेकिन संज्ञा शब्द से उनकी वैसी अभिन्नता स्थापित न हो सकी। इसका एक ही कारण संभव हो सकता है। सर्वनाम प्रायः एकाक्षरिक (मोनोसिलेबिक) होते हैं, इसलिए उनके साथ एक और अक्षर के रूप में परसर्ग का जुड़ जाना स्वाभाविक है। (सिंह नामवर, 2006, हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, पृ. 107)

जैसे - "नाथ, सकौ तौ मोहिं उधारौ।"

प्रस्तुत पत्र में, अन्य पुरुष के विवरण प्रसंग में दूरवर्ती व निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनामों का विश्लेषण आवश्यक होने के कारण उन्हें पुरुष वाचक सर्वनाम में समाहित कर लिया गया है। इस प्रकार पुरुषवाचक एवं निश्चयवाचक सर्वनामों का युगपद विवेचन है।

हिंदी और ब्रजभाषा के सर्वनामों की रूप-रचना

1. पुरुष वाचक सर्वनाम

उत्तम पुरुष (मैं) सर्वनाम	ब्रजभाषा	हिंदी
उत्तम पुरुष, एकवचन, मूल रूप	हूँ, हौं, हों, मैं, में	मैं
उत्तम पुरुष, एकवचन, विकृत रूप	मो, मोहिं, मोय	मुझ, मुझे
उत्तम पुरुष, एकवचन, संबंधवाची मूलरूप	मेरो, मेरे, मेरी	मेरा (पुल्लिंग) मेरी (स्त्रीलिंग)
उत्तम पुरुष, एकवचन, संबंधवाची विकृतरूप	मेरे, मोय, मोएँ	मेरे
उत्तम पुरुष, बहुवचन, मूल रूप	हम	हम, हमें
उत्तम पुरुष, बहुवचन, विकृत रूप	हम, हमहिं, हमें	हम
उत्तम पुरुष, बहुवचन, संबंधवाची, मूलरूप	हमारो, हमारौ, हमारी	हमारा
उत्तम पुरुष, बहुवचन, संबंधवाची, विकृतरूप	हमारे, हमें	हमारे, हमारी (स्त्रीलिंग)

विभिन्न विभक्तियों के पूर्व उत्तमपुरुष सर्वनाम किन रूपों में आते हैं और विभक्ति का संयोग होने पर उनके कितने कारकीय रूप हो जाते हैं, उन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है -

कारक	विभक्ति कारक रहित मूल और विकृत रूप		विभक्ति कारक सहित मूल और विकृत रूप	
	ब्रज	हिंदी	ब्रज	हिंदी
कर्त्ता (एकवचन)	मैं, हौं, हम	मैं, मुझ, मैंने	-	-
कर्त्ता (बहुवचन)	हम	हम	-	-
कर्म (एकवचन)	मैं, हौं, हम, मो	मुझे	मोकों, मोहिं हमकौं, हमहिं, हमैं,	मुझे, मुझको
कर्म (बहुवचन)	हम, हमैं	हमें, हमको	हमकौं, हमहिं	हमें, हमको
करण (एकवचन)	मैं, मो, हम	मैं	मोकौं, मोतैं, मोपैं मोसौं, मोहिं	मुझसे

करण (बहुवचन)	हम, हमैं	-	हमतैं, हमपैं, हमपै हम सन, हमसौं, हमहिं	हम से
संप्रदान (एकवचन)	मैं, मो, हम	मुझे	मो कहँ, मोकौं मोसौं, मोहिं, मोही	मुझको, मेरे लिए
संप्रदान (बहुवचन)	हम, हमैं	हमें	हमें, हमहिं हम कहँ, हमकौ, हमकौं	हमको, हमारे लिए
अपादान (एकवचन)	-	-	मोतैं, हमतैं	मुझ से
अपादान (बहुवचन)	-	-	हमतैं, हमहिं	हम से
संबंध (एकवचन)	मम	-	मेरी, मेरे, मेरौ, मो, मोर, मोरि, मोरी, मोहिं, हमरी हमरे, हमार, हमारी हमारे, हमारौ	मेरा, मेरी, मेरे
संबंध (बहुवचन)	हम		हमरी, हमरे, हमरौ हमार, हमारी, हमारे, हमारौ	हमारा, हमारी, हमारे
अधिकरण (एकवचन)	मेरैं, मोहिं, हमरैं		मोकौं, मोपर, मो पै, मो मैं, मोहि पर, महियाँ, मोहिं,	मुझमें, मुझ पर
अधिकरण (बहुवचन)	हमरैं, हमारैं हमैं		माँझ, हम पै हम पर, हम पै, हम मैं, हमकौं	हम में, हम पर

उत्तम पुरुष सर्वनाम (ब्रजभाषा) के कतिपय उदाहरण :

मैं	-	खेलत मैं को काकौ गुसैयाँ।
	-	अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
हौं	-	यह व्रत हौं प्रतिपलिहौं। तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हम	-	हम तौ झकति स्याम की करनी मन लै जोग पठाए।
हमहिं	-	हमहिं छाँड़ि किनि देहु।
मोकौं	-	मोकौं मारि सके नहिं कोइ।

हमकौं	-	केहि कारन हम कौं भरमावत।
मोतैं	-	मोतैं कछू न उबरी हरि जू, आयौ चढ़त उतरतौ।
मोपै	-	मांगि लेइ अब मोपैं सोइ।
हमतैं	-	हमतैं चूक कहा परी तिय, गर्व गहीली।
मोसन	-	अनबोली न रहै री आली आई मोसन बात बनाबन।
मोहि सौं	-	भ्रमि मैं तो रिस करति न रस-बस, मोहिं सौं उलटि लरत।
मोसौं	-	तुम प्रभु मोसौं बहुत करी।
हमहिं	-	ऐसे मुख की बचन माधुरी, काहै न हमहिं सुनावति हौ।
हमैं	-	हमैं खोय या विधि हो कौन धौं लहा लहौ।
मौसौं	-	लोचन ललित त्रिभंगी छवि पर अटके मौसौं तोरि।
हमतैं	-	हमतैं बिदुर कहा है नीकौ।
मेरी	-	मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
मोरी	-	मूसै मन संपत्ति सब मोरी।
हमारे	-	हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।
हमरी	-	हमरी गति पति कमलनयन सौं।
हमारौ	-	अन्तरजामी नाउँ हमारौ।
मो मैं	-	औगुन और बहुत हैं मो मैं।
मोहिं पर	-	कृपा करि मोहिं पर।
हम पै	-	कहा भयौ जो हम पै आई।

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ब्रजभाषा और हिंदी की विभक्तियों के संदर्भ में लिखते हैं कि - 'खड़ी बोली की विभक्तियाँ - 'को', 'के', 'लिए', 'से', 'का', 'के' आदि ब्रजभाषा की 'हिं', 'कों', 'से', 'सों', 'कहँ' आदि से समता की स्पर्धा नहीं कर सकतीं। खड़ी बोली में एक ही विभक्ति मधुर है - 'में', परन्तु वह भी ब्रजभाषा की 'मँहँ' की श्रुति-सरसता से फीकी पड़ जाती है। (निराला, सं. 2011 वि., प्रबंध पद्म, गंगा पुस्तक माला का 148 वां पुष्प, दिल्ली भारती (भाषा) भवन, पृ. 101) हउँ और हौं - हिन्दी और ब्रज के उत्तम पुरुष सर्वनामों का विश्लेषण - हउँ और हौं है। उत्तम पुरुष एकवचन कर्ता कारक में अपभ्रंश में 'हउँ' और 'हौं' सर्वनामों का प्रयोग मिलता है। आगे चलकर अवधी और ब्रजभाषा में भी इसका प्रचलन रहा, किन्तु हिंदी में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। जैसे - झगरिनि तैं, हौं बहुत खिझाई। (ब्रज) प्राचीन ब्रज के लेखकों में 'हौं' समान रूप से प्रचलित मिलता है। ब्रज के राजनैतिक तथा धार्मिक केंद्र मथुरा और आगरा की बोली के प्रभाव के कारण भी 'हौं' अधिकता से प्रचलित हो सकता है। बाद में प्राचीन लेखकों की भाषा के आदर्श पर यह ठेठ ब्रज का रूप माना गया है।(वर्मा धीरेंद्र, 1954, ब्रजभाषा, इलाहाबाद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, पृ. 62)

'हौं' और 'हम' एकवचन के मूल रूप में ही कर्मकारकीय विभक्तियों, कौं और हिं के संयोग का कारण यह है कि इनके विकृत रूप ब्रजभाषा में नहीं होते।

ब्रजभाषा में 'मैं' का विकृत रूप 'मो' अवश्य प्रयुक्त होता है, जिसका प्रयोग कभी-कभी कर्मकारक में बिना विभक्ति के ही कवियों ने किया है। जैसे -

"मो सम कौन कुटिल खल कामी,
सुनी तगीरी बिसरि गई सुधि मो तजि भये नियारे।"

'मो' का प्रयोग ब्रजभाषा में परवर्ती संज्ञा के लिंग के विचार के बिना ही संबंधवाचक सर्वनाम के समान भी होता है। इस प्रकार प्रयुक्त होने पर मूलरूप और विकृतरूप में उसके भिन्न रूप नहीं होते हैं। जैसे - मो मन हरत।

कामता प्रसाद गुरु ने 'मैं' का संबंध संस्कृत 'अहम्' से माना है। प्राकृत में इसका रूप 'ह' हो जाता है। जिससे ब्रजभाषा का 'हौं' विकसित हो सकता है। यह मूलतः करण कारक, एकवचन का रूप है और बीम्स, चटर्जी आदि विद्वान 'मैं' का संबंध 'मया' (तृतीया एकवचन) से मानते हैं -

सं. - मया > पा. मया > प्रा. मइ > अप. मइँ > मैं। अपभ्रंश में 'मइँ' के साथ कोई परसर्ग नहीं लगता था, लेकिन हिंदी में भूतकालिक सकर्मक क्रिया के सभी कर्ताओं की तरह 'मैं' में भी परसर्ग लगने लगा। प्राचीन ब्रज में भी 'मैं' का प्रयोग मिलता है।

उदाहरणार्थ - "मैं भक्तबछल हौं। मैं कहि समुझायौ। मैं समुझयौ निरधार यह।"

अवहट्ट से आगत 'मों' और 'मोहि' की प्रवृत्ति का हिंदी में प्रचलन नहीं हो सका। ब्रजभाषा में 'मो' में को, सो, में, पै, पर तथा कर आदि परसर्ग जोड़कर विभिन्न कारकों के अनुसार मोको, मोसों, मोपै, मोमैं, मोर आदि रूप बनाए गए हैं। इनमें 'मोर' का प्रयोग अवधी एवं अन्य पूर्वी बोलियों में भी अधिकता से सुरक्षित है। सूरसागर में कहीं-कहीं इसका प्रयोग मिलता है -

"जीवन-घन मोर।
धर्म बिनासन मोर।"

मुझ, मुझे, मेरा - विद्वान 'मुझ' को 'मह्यम्' (संप्रदान एकवचन) से संबद्ध मानते हैं। इस प्रकार मह्यम > पा. मय्हं > प्रा. मज्झं > अप. मज्झ, मज्झु > हिं मुझ। 'मुझे' के 'ए' को विकारी 'ए' माना जाता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार अपभ्रंश के 'तुज्झे' के सादृश्य पर 'मुज्झे' बना था। उसी से 'मुझे' विकसित हुआ है। 'मेरा', 'हमारा', 'तेरा', 'तुम्हारा' में अंत्य 'आ' लिंग वचन का द्योतक है, और इसके स्थान पर 'ए' (मेरे, तेरे इत्यादि) या 'ई' (मेरी, तेरी आदि) आ सकते हैं। 'में', 'हमा', 'ते', 'तुम्हा' क्रमशः उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष के हैं। शेष बचता है 'र'। यह 'र' ही संबंध कारक को द्योतित करता है। मेरा के विकास संदर्भ में धीरेंद्र वर्मा का कथन है कि - 'र' लगा कर बने हुए षष्ठी के इन सब रूपों का संबंध कारक, करौ, केरा, करा आदि प्राकृत प्रत्ययों के प्रभाव से माना जाता है। उदाहरण के लिए प्रा. मह केरो या मह करो रूप से हिं - म्हारो, मारो, मेरा, आदि समस्त रूप निकल सकते हैं -

अम्ह करको > अम्ह अरओ > अम्हारौ > हमारो > हमारा;

तुम्ह करको > तुम्ह अरओ > तुम्हारौ > तुम्हारो > तुम्हारा। (वर्मा धीरेन्द्र, 2002, हिंदी भाषा का इतिहास, इलाहाबाद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, पृ. 283)

हिंदी 'हम' का संबंध अप. 'अम्हे' या 'म्हे' से है, जिनके 'म' और 'ह' में स्थान परिवर्तन हो गया है। इन प्राकृत रूपों की व्युत्पत्ति 'अस्मे' से मानी जाती है। विद्वानों ने अवधी, ब्रज और खड़ी बोली के 'हम' का संबंध प्राकृत के 'हमुँ' से माना है, लेकिन 'अम्ह' से 'हम' बनना अधिक तार्किक लगता है। 'हम' से 'हमें', 'हमको', 'हमहिं', 'हमारे' आदि रूप बनते हैं - जिनमें विभिन्न कारकों की विभक्तियाँ लगी हुई हैं। मूलरूप बहुवचन के रूप का प्रयोग बहुवचन में प्रयुक्त क्रिया के कर्त्ता के समान होता है। आधुनिक ब्रज में 'हम्' संपूर्ण क्षेत्र में प्रयुक्त होता है - हम जात् हैं। अवधी के समीपस्थ कुछ पूर्वी ज़िलों में इसका प्रचलित उच्चारण रूप 'हमु' है। प्राचीन ब्रज में भी 'हम' के रूपांतर नहीं होते हैं। विकृत रूप बहुवचन का प्रयोग परसर्गों के साथ विभिन्न प्रचार के संबंधों को व्यक्त करने के लिए होता है। आधुनिक ब्रज में 'हम' के कोई रूपांतर नहीं होते हैं और वह मूल रूप बहुवचन के समान ही रहता है। 'मुझको'

अथवा 'हमको' का अर्थ देने वाले कुछ संयोगात्मक रूप परसर्गों के बिना अन्य रूपों के साथ-साथ ब्रज में अधिकता से व्यवहृत होते हैं। समकालीन मैनपुरी, एटा आदि की कन्नौजी मिश्रित ब्रजभाषा में इसका प्रयोग बहुधा मिल जाता है। जैसे - हमहूँ करिहैं, हमैंऊँ देयो।

मध्यम पुरुष (तू) सर्वनाम	ब्रजभाषा	हिंदी
मध्यम पुरुष, एकवचन, मूलरूप	तू, तूं, तें	तू
मध्यम पुरुष, एकवचन, विकृत रूप	तो	तुझ, तुझे
मध्यम पुरुष, एकवचन, संबंधवाची, मूलरूप	तेरौ, तेरौ (पुल्लिंग) तेरी (स्त्रीलिंग)	तेरा (पुल्लिंग) तेरी (स्त्रीलिंग)
मध्यम पुरुष, एकवचन, संबंधवाची, विकृतरूप	तेरे (पुल्लिंग) तेरी (स्त्रीलिंग)	तेरे (पुल्लिंग) तेरी (स्त्रीलिंग)
मध्यम पुरुष, बहुवचन, मूलरूप	तुम	तुम
मध्यम पुरुष, बहुवचन, विकृत रूप	तुम	तुम
मध्यम पुरुष, बहुवचन, संबंधवाची विशेषण मूलरूप	तुम्हारो, तुमारौ, तिहारौ (पु.) तुम्हारी, तुमारी, तिहारी (स्त्री.)	तुम्हारा (पु.) तुम्हारी (स्त्री.)
मध्यम पुरुष, बहुवचन, संबंधवाची विशेषण विकृत रूप	तुम्हारे, तुमारे, तिहारे (पु.) तुम्हारी, तुमारी, तिहारी (स्त्री.)	तुम्हारे (पु.) तुम्हारी (स्त्री.)

मध्यमपुरुष मूल और विकृत सर्वनाम रूपों के विभक्ति रहित और सहित रूपों को इस प्रकार समझा जा सकता है -

कारक	कारक विभक्ति रहित मूल और विकृत रूप		कारक विभक्ति सहित मूल और विकृत रूप	
	ब्रज	हिंदी	ब्रज	हिंदी
कर्ता (एकवचन)	तुम, तूँ, तू, तै	तू, तुम, आप	तैने	तूने, तुमने
कर्ता (बहुवचन)	तुम	तुम, आप	तैने	तुमने
कर्म (एकवचन)	तुम, तू, तुम्है, तुमैं, तोए, तोय	तुम	तुमकौं, तुमहिं, तुहिं तोकौं, तोहिं	तुमको, तुम्हें तुझे, तुझको

कर्म (बहुवचन)	तुम्हैं	तुम	तुमकौं, तुमहिं	तुम्हें
करण (एकवचन)	तुम्हैं, तोह	तुम	तोकौं, तोतैं तोपै तोसौं, तोहिं, तुम तैं	तुम से
करण (बहुवचन)	तुम्हैं	तुम	तुम पै, तुम सौं, तुमहिं तुमकौं, तुमसौं, तुमहिं	तुम से
सम्प्रदान (एकवचन)	तुम्हैं	तुम	तुमकौं, तुमहिं, तोकौं तोहिं	तुमको तुझे, तुमको
सम्प्रदान (बहुवचन)	तुम्हैं	तुम	तुमकौं, तुमहिं	तुझे
अपादान (एकवचन)			तुम तैं, तुम सौं, तुमहिं तोतैं, तोहिं	तुम से
अपादान (बहुवचन)			तुम तैं, तुम सौं	तुम से
संबंध (एकवचन)	तव, तुम, तुव तैं, तो	तुम	तेरी, तेरे, तेरौ, तोर, तुमरे, तुमरौ, तुम्हरी, तुम्हरौ, तुम्हार, तुम्हारि तुम्हारी, तुम्हारे, तुम्हारौ, तिहारी, तिहारौ	तेरा, तुम्हारा (पुल्लगि) तेरी, तुम्हारी (स्त्रीलगि)
संबंध (बहुवचन)	तुम	तुम	तिहारी, तुम्हरे, तुम्हरौ, तुम्हारौ	तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे
अधिकरण (एकवचन)	तिहारैं, तुम्हरैं	तुम	तो पर, तोपे, तोमैं, तुम्हारैं, तुम्हैं, तुम पर, तुम पैं, तुम, तेरैं पै, तुम पै	तुम पर, तुम में, तुझ पर, तुझ में
अधिकरण (बहुवचन)		तुम	तुम पर, तुम पै	तुम पर, तुम में

मध्यम पुरुष सर्वनाम (ब्रजभाषा) के कतिपय उदाहरण :

तुम	-	प्राणनाथ तुम कवधौं मिलौगे, सूरदास प्रभु बाल सँघाती।
तू	-	अंतहु तोहिं तजेंगे पामर! तू न तजै अब ही ते।
	-	चातक, घातक त्यौं ही तू हू कान फोरि लै।
तुमकौं	-	संकर तुमकौं धरै।
तुमहिं	-	ऊधौ, जाहु तुमहिं हम जानैं।
तुम्हैं	-	तातैं कही तुम्हैं हम आइ।
तोतैं	-	कहत न डरती तोतैं।
तोसौं	-	कहत यहि विधि भली तोसौं।
तुमतैं	-	सकल सृष्टि यह तुमतैं होइ।
तुम सन	-	जो कुछ भयौ सो कहिहौं तुम सन।
तोहिं	-	मैं बर देऊँ तोहिं सो लेहि।
तव	-	तव कीरति।
तुम्हारे	-	जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
तोहि	-	तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो आवै।
तिहारी	-	सूर सपथ हमैं कोटि तिहारी कहौ करैंगी सोइ।
तेरो	-	लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत।
तेरी	-	भूषन भनत सिवराज तेरी धाक सुनि हयादारी चीर फारि मन झुंझलाती हैं।
	-	भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं।
तैं	-	धनि बछरा धनि बाल जिनहिं तैं दरसन पायो।
तोर	-	बंक विलोकनि, मधुरी मुसुकनि भावति प्रिय तोर।
तुम्हरे	-	तुम्हरे भजन बिनु।
तुम्हार	-	कंत तुम्हार।
तिहारे	-	पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानति हैं।
तिहारैं	-	आजु बसैंगे रैनि तिहारैं।
तेरैं	-	क्यों करि तेरैं भोजन करौं।
तो पर	-	तो पर वारी हौं नंदलाल।
तुम पर	-	हम नाहिंन रिस तुम पर आनी।
तुम मैं	-	साच्छात सो तुम मैं देखी।

हिंदी के रूपों का संबंध संस्कृत के रूपों से बहुत सीधा नहीं है। ब्रजभाषा आदि हिंदी की बोलियों में संयोगात्मक रूप अवश्य मिलते हैं, किंतु हिंदी में ऐसे रूपों का व्यवहार नहीं पाया जाता। हिंदी 'तू' का संबंध सं. त्वया > प्रा. तुम, तुअं > अप. तुहं से है। धीरेंद्र वर्मा 'त' का विकास संस्कृत 'त्वया' से मानते हैं, किंतु हार्नले, सुनीतिकुमार चटर्जी तथा बाबूराम सक्सेना आदि त्वम् से तू की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानते हैं – सं. त्वम् > पा. त्वं, तुवं > प्रा. तुवं > हिं तू।

ब्रज आदि पुरानी हिंदी का 'तैं' रूप हिंदी 'मैं' की तरह सं. त्वया > प्रा. तइ, तए > अप. 'तहँ' से संबंध रखता है। प्राचीन ब्रज के लेखकों में मूल. एक. 'तू' बहुत अधिकता से प्रयुक्त होता है। 18वीं शताब्दी के रचनाकारों में 'तूँ' बहुत प्रचलित है। 'तैं' करण कारक में अधिक प्रचलित है और 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में इसका प्रयोग अधिक किया गया है। जैसे - 'तैं बहुतै निधि पाई।' तईं > तैं - बोलचाल की खड़ी बोली में कभी-कभी "तैंने क्या किया" जैसे प्रयोग सुनाई पड़ते हैं, अन्यथा साहित्यिक हिंदी में अब यह लुप्त है। विकृत एकवचन 'तो' परसर्गों के साथ आधुनिक तथा प्राचीन ब्रज में भी विभिन्न प्रकार के संबंधों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। विकृत वैकल्पिक 'तोय' आदि रूप ब्रज की एक मुख्य विशेषता है और केवल बुंदेली में ये रूप मिलता है। हिंदी में प्रायः 'तुम' का प्रयोग बहुवचन के अतिरिक्त एकवचन में भी होता है। जब 'तुम' के बाद ने, को, से, पर परसर्गों का प्रयोग होता है, तब इसका रूप पूर्ववत् ही रहता है, लेकिन कर्म, सम्प्रदान और संबंधकारक में यह 'तुम्ह' हो जाता है और इस प्रकार 'तुम्हें', 'तुम्हारे लिए' आदि रूप बनते हैं। ब्रजभाषा के तिहारौ सर्वनाम का प्रयोग कहीं तो संबंधी शब्द के पहले किया गया है, कहीं बाद में और कहीं दोनों के बीच में कुछ अन्य शब्द भी आए हैं जैसे - 'हरि, अजामिल तौ विप्र तिहारौ, हुतौ पुरातन दास। 'तउ मूलतः संस्कृत संबंध कारक के 'तव' का रूपांतर है। आगे चलकर 'तउ' 'तो' हो गया और इसमें अन्य कारकों की विभक्तियाँ लगाकर तोहि (कर्म), तोर (संबंध) आदि रूप बनाए जाते हैं। हिंदी 'तुझ' का संबंध प्राकृत के षष्ठी के 'तुह' के रूपांतर 'तुज्झ' तथा संस्कृत के 'तुभ्यं' से माना जाता है। प्राकृत के पूर्व संस्कृत में इस तरह के रूप नहीं मिलते। हिंदी 'तुझे' में ए विकृत रूप का चिह्न है। षष्ठी के 'तेरा', 'तुम्हारा' रूप विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं, अतः साथ में आने वाले संज्ञा, सर्वनाम के अनुरूप इन के लिंग तथा वचन में भेद होता है। 'तू' के प्रसंग में संभाषण में सबसे अधिक प्रयोग सर्वनामों का होता है। उनमें भी सबसे अधिक मध्यपुरुष सर्वनाम ही प्रयोग में आते हैं। यह सोलह आना सच है कि मध्यमपुरुष सर्वनाम सबसे अधिक संवेदनशील भी होते हैं, किंतु हिंदी में अन्य पुरुष और उत्तम पुरुष सर्वनाम के विविध रूप भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। मध्यमपुरुष सर्वनाम में बहुवचन के दो रूप - 'तुम' और 'आप' का एकवचन में भी प्रयोग होता है। हिंदी में मूलतः दो रूप थे - एकवचन में 'तू' और बहुवचन में 'तुम'। 'आप का प्रयोग अपेक्षाकृत बाद में आरंभ हुआ। तिवारी (1966) के अनुसार इसका प्रथम व्यापक प्रयोग भक्तिकाल में मिलता है, विशेष रूप से कबीर में और वह भी ईश्वर को संबोधित करने के लिए। (टंडन प्रेमनारायण, 1962, ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा, लखनऊ, लखनऊ विश्वविद्यालय, पृ. 103)

हिंदी के सर्वनामों की व्यवस्था में 'आप' का प्रयोग आरंभ होने के बाद कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आदरार्थ 'आप' के प्रयोग की बढ़ती प्रवृत्ति ने 'तुम' में व्याप्त आदर तत्व को कम कर दिया है। सामान्यतः हिंदी के व्याकरणों में यह बताया जाता है कि 'तुम' रूप बराबर वालों के लिए प्रयुक्त होता है। तू, तुम, आप परंपरागत रूप हैं और उनके कुछ निर्दिष्ट अर्थ और प्रयोग हैं, लेकिन समाज के सभी संबंध भाषा के साथ बँध नहीं सकते। भाषा को उनमें होने वाले परिवर्तनों का अनुगमन करना पड़ता है। वर्तमान समय में हिंदी में मध्यम पुरुष एकवचन में निम्न रूप प्राप्त होते हैं-

तुम आना (सामान्य आमंत्रण)
तुम आओ (आदेश)
तू आना (अनौपचारिक आत्मीय भाव)
तू अइयो (बोलीगत अनौपचारिक प्रयोग)
आप आइएगा (सम्मानसूचक, अतिशय आग्रह)
आप आइए (प्रतिष्ठा)
आप आना (सामान्य सादर निवेदन)
आप आओ (एकवचन हेतु प्रयोग)

प्रत्यक्ष संबोधन में परस्पर संबंधों का पूर्ण स्पष्टीकरण आवश्यक होने के कारण मध्यम पुरुष एकवचन में कई रूप एवं विकल्पन हैं। ऐसी स्थिति में किसी अन्य व्यक्ति का उल्लेख करने की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम पड़ती है, इसीलिए अन्य पुरुष एकवचन में सर्वनाम रूपों के विकल्प कम हैं। कभी-कभी वक्ता अपने लिए भी सर्वनाम का प्रयोग करता है। प्रथम पुरुष एकवचन में तीन विकल्प मिलते हैं-

- अपन या अपने राम का प्रयोग करके वक्ता स्वयं को अन्य पुरुष के रूप में दिखाकर प्रतिष्ठा दिलाने की चेष्टा करता है।
- 'हम' भी प्रतिष्ठात्मक तत्व से परिपूर्ण है।
- 'मैं' प्रथम पुरुष एकवचन का प्रयोग वक्ता तभी करता है जब वह अपने अहम् का प्रदर्शन व्यक्तिगत रूप से करने की इच्छा रखता है।

2. अन्य पुरुष या दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम (वह)

दूरवर्ती निश्चयवाचक रूपों का प्रयोग अन्य पुरुष सर्वनाम तथा निश्चय बोधक विशेषण के लिए होता है। इन सर्वनामों में एकवचन और बहुवचन का भेद बहुत स्पष्ट होता है। आधुनिक ब्रज में इसका प्रयोग नित्य संबंधी के रूप में भी होता है।

ब्रजभाषा - रूप

	एकवचन	बहुवचन
मूलरूप -	बु, बुअ, बो, बौ, गु, वह, सो	वे बै ग्वै, से
स्त्रीलिंग -	बा, वा, ग्वा, ता, उन	बे, वै, वे, वै, ग्वे, वे
विकृत रूप -	बा, वा, ग्वा	उन, तिन, बिन, ग्विन
अन्य -	वाहि, तानि	तिन्हैं

सम्प्रदान में वैकल्पिक रूप

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग	बाए, वाए, ग्वाए	उनै, बिनै, ग्वनैं
संबंधवाची रूप	बिसका	बिनका
पुल्लिंग	बिसके	बिनके
स्त्रीलिंग	बिसकी	बिनकी

हिंदी रूप

	एकवचन	बहुवचन
मूल रूप -	वह	वे
विकृत रूप -	उस	उन
सम्प्रदान के वैकल्पिक रूप -	उसे उसके लिए	उन्हें उनके लिए
संबंधवाची पुल्लिंग	उसका	उनका
विकृत	उसके	उनके
स्त्रीलिंग	उसकी	उनकी

ब्रजभाषा का मूल पुल्लिंग एकवचन 'बौ' सर्वनाम रूप कुछ पूर्वी प्रदेशों में सामान्यतः तथा कभी-कभी पश्चिम के एक बड़े भाग में और दक्षिण में भी प्रयुक्त होता है। (बरेली, बदायूँ, पीलीभीत में नियमित रूप से, कभी-कभी मैनपुरी, एटा, इटावा में, भरतपुर, जयपुर, धौलपुर, ग्वालियर में भी) जैसे - 'बौ' जात् है। शाहजहाँपुर में इस रूप का उच्चारण 'बउ' है। मूलरूप स्त्रीलिंग एकवचन 'बा' संपूर्ण क्षेत्र में व्यवहृत होता है, जैसे 'बा जात है'। केवल मथुरा हरदोई में वा तथा अलीगढ़ में 'ग्वा' रूप मिलता है। ब्रजभाषा के कवियों ने उक्त रूपों को तो अपनाया ही, साथ-साथ नित्यसंबंधी मूलरूप 'सो' और 'सु' तथा विकृत रूप 'ता' का प्रयोग भी अन्यपुरुष एकवचन सर्वनाम के समान अनेक पदों में किया। अन्य पुरुष सर्वनाम के लिए संस्कृत 'सः' (तत्) वाले रूपों के अवशेष ही अधिक प्रचलित हैं; लेकिन आगे चलकर अवधी, ब्रज और खड़ी बोली में दूरवर्ती निश्चय वाचक सर्वनाम 'वह' के रूप अन्य पुरुष के लिए भी प्रचलित हो गए। अपभ्रंश में 'वह' का प्रयोग तो नहीं मिलता, लेकिन उसके रूप 'ओइ', ओहु अवश्य प्रयुक्त होते हैं। इस 'ओहु' से 'वह' का विकास संभव है। कुछ उदाहरणों के माध्यम से हिंदी और ब्रजभाषा की वाक्य-रचना को देखा जा सकता है :

हिंदी	ब्रज
वह उसका दुपट्टा है।	बु बाकौ दुपट्टा ए।
उसने कहा।	बानैं कई (कही), बानैक्कई
उसके लिए है।	बाके लैन एँ, बाके ताईं ए
उनसे कह दिया था।	बिनतैं कै दई ही (ई) बिनतैं कै दई हती

अन्य पुरुष और निश्चयवाचक दूरवर्ती ब्रजभाषा सर्वनामों के कर्ता कारकों के विभक्ति रहित एकवचन रूप - वह, सो, सु हैं। इनमें प्रथम तो इसी कारक का मूल रूप है और शेष दोनों नित्य संबंधी सर्वनाम भेद के रूप हैं। इनका प्रयोग दोनों लिंगों में हुआ है।

विभक्ति रहित बहुवचन मूल रूप - 'वे' और 'वै' हैं। इनमें 'वै' का प्रयोग अधिक हुआ है। उदाहरणार्थ -

'वै (हरि) तो निठुर सदा मैं जानति।'

इनके अतिरिक्त 'उहिं, तिहिं और तेहिं रूप भी उक्त वर्गीकरण के अंतर्गत आते हैं।

विभक्ति युक्त रूप - ने, नैं हैं। प्रसंगवश -

'अब सुधि भई लई वाही नैं, हँसति चली वृषभानु किसोरी।'

कर्मकारक विभक्तिरहित प्रयोग - ओहि, उहिं, ताहि, तिहिं, वाहि और सो

विभक्ति सहित प्रयोग - उनकौं, उनहिं, ताकौं, तिनकौं, तिनहिं, तिहिकौं, तेहिं, वाकौं, बिनकौं।

करणकारक, विभक्तिरहित प्रयोग - ताहि, तिनहिं, तिहिं, वाहि

विभक्ति युक्त प्रयोग - उनतैं, तातैं, ताही तैं, उनसौं, तासौं, ताहि सौं, तिन सौं, तिहिं सौं, वासौं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

हिंदी	ब्रज
उसको उससे बचा लिया।	ताकौं तासौं लियौ बचाइ।
उससे भरत ने कुछ नहीं कहा।	तिहि सौं भरत कछु नहिं कह्यो।

संप्रदानकारक, विभक्ति रहित रूप - उन, ताहि, तिन्हैं, तिहिं और तेहिं।

हिंदी	ब्रज
उसे राज्य देकर वे बैकुंठ सिधार गए	ताहि राज दै बे बैकुंठ सिधारि गए।
राजा ने उन्हें फिर भोजन करवाया	पुनि नृप तिहिं भोजन करवायौ।

विभक्ति युक्त रूप-

उनकौं, ताकौं, तिनकौं, बाकौं, ताके। उदाहरणार्थ - 'ताकें सुन्दर पुत्र भयौ।'

अपादानकारक - अपादान कारक के लिए 'तैं' विभक्ति के साथ मुख्य तीन रूप मिलते हैं - उनतैं, तातैं, वातैं। 'तातैं' का प्रयोग द्रष्टव्य है -

'राधा आधा अंग है तातैं यह मुरली प्यारी।'

संबंधकारक, विभक्ति रहित रूप-

'उन' और 'ता' - इन दो रूपों में कोई विभक्ति नहीं है, जैसे -

'कोटि जज्ञ फल दोइ उनके दरसन पाए'। 'ता अवतारहिं'।

विभक्ति सहित रूप -

उनकी, ताकी, तिनकी, बाकी, उनके, ताके, तासु के, तिनके, तेहिके, बाके, उनकौ, ताकौ, तिनकौ, बाकौ, उन केरी, उन केरे, ताकर, तासु आदि रूप इस वर्ग में आते हैं।

हिंदी	ब्रज
उसके गुण	बाके गुन
उसका नाम	ताकौ नाम
उसका दोष	बाकौ दोस
तुम उनकी पटरानी	तू तिनकी पटरानी

अधिकरण कारक -

इस कारक में प्रयुक्त अन्य पुरुष, एकवचन सर्वनाम रूपों की संख्या पच्चीस के लगभग है। 'सामान्यतः इन्हें छह भागों में विभाजित कर सकते हैं - विभक्ति रहित रूप, कै विभक्ति युक्त रूप, 'पर' विभक्तियुक्त रूप, 'पै' या 'पै' विभक्तियुक्त रूप और अन्यविभक्तिरूप।' (श्रीवास्तव रवींद्रनाथ, सहाय रमानाथ (सं.), 2008, हिंदी का सामाजिक संदर्भ, आगरा, केंद्रीय हिंदी संस्थान पृ. 137)

विभक्तिरहित रूप - ताहूँ और वाही ये दो प्रयोग इसके अंतर्गत आ सकते हैं।

विभक्ति युक्त रूप - उनकैं, ताकैं, तिनकैं, तापर, ताहि पर, तिन पर, उनपै, तापै, तिनपै, उन पाहीं, उन माँह, उन माहीं, उन मौं, ता महँ, ता माँहि आदि रूप इस रूप के अंग हैं।

निश्चय वाचक निकटवर्ती (यह)

निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए अपभ्रंश में दो प्रकार के रूप मिलते हैं - 'एह' और 'अय'। आगे चलकर अवहट्ट, अवधी ब्रज और हिंदी में इसी की परंपरा चली। 'एह' के अन्य रूप - यह, ये, इस और इन हैं। ब्रज में निकटवर्ती निश्चय वाचक सर्वनाम के लिए निम्नांकित रूप हैं -

ब्रज	एकवचन	बहुवचन
निकटवर्ती निश्चयवाचक	यह, यु, यो, यि, ये, जु, जौ, जि, जे	ये, जे, गे, ये, ए
स्त्रीलिंग	या, जा, गि, गु	-
विकृत	या, जा, ग्या	इन, जिन
संप्रदान के वैकल्पिक रूप	याए, जाए ज्याय, इनैं, जिनैं	-
संबंधवाची रूप (पु.)	जाका	जाके
संबंधवाची (स्त्रीलिंग)	जाकी	जाके

हिंदी में निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के रूप इस प्रकार हैं -

निकटवर्ती निश्चयवाचक	एकवचन	बहुवचन
मूलरूप	यह	ये
विकृतरूप	इस	इन
संप्रदान के वैकल्पिक रूप	इसे	इन्हें

संबंधवाची रूप (पुल्लिंग)	इसका	इनका
विकृत	इसके	इनके
स्त्रीलिंग	इसकी	इनकी

निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के मूल तथा विकृत रूपों का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक विशेषण की तरह भी होता है। ब्रज में पृथक स्त्रीलिंग रूप केवल मूल एकवचन में होते हैं। मूल, पुल्लिंग, एकवचन 'जौं' (यह) का प्रयोग बरेली, पीलीभीत और कभी-कभी मथुरा में मिल जाता है। कुछ पूर्व के सीमांत ज़िलों जैसे - शाहजहाँपुर, हरदोई में इसका उच्चारण 'जउ' मिलता है।

कर्ता के कारकीय प्रयोग -

इन, इहि, ए, एह, ये, इन, इनि और ये आदि रूपों का प्रयोग होता है। ये सभी विभक्ति रहित हैं। उदाहरणार्थ -

इन - इन तौ रामहिं राम उचारे।

इहिं - सखी सखी सौं कहति बावरी इहिं हमकौं निदरी।

इनि - इनि तव राज बहुत दुख पाए।

ये - ये बन फिरतिं अकेली।

ये नैना 'घनश्याम' बिनु, आप भये घनश्याम।

कर्मकारक

इन्हैं, इहिं यह और याहि विभक्ति रहित प्रयोग हैं तथा विभक्तियुक्त प्रयोग हैं - इनकौं, इनहिं, याकौं। उदाहरणस्वरूप -

इन्हैं - विष्णु, रुद्र विधि एकहिं रूप; इन्हैं जानि मति भिन्न स्वरूप।

इनकौ - 'को बाँधे को छोरे इनकौं।'

करणकारक

इनि और याहि मूलरूपों से सम्पृक्त विभक्तियुक्त प्रयोग हैं - इनतैं, इनसौं, इनहिं और यासौं। उदाहरणार्थ -

इनसौं - कतहिं रिसाति जसोदा इनसौं।

इनहिं - अबहिं मोहिं बूझिहैं, इनहिं कहिहौं कहा।

संप्रदान कारक

इन्हैं, इहिं, याकौं, इनकौं, इनहिं।

इनहिं - ब्रत फल प्रगट इनहिं दिखरावौं।

याकौं - जज्ञ भाग याकौं नहिं दीजै।

अपादान - इनतैं और यातैं।

इनतैं - इनतैं बड़ौ और नहिं कोऊ, कृपिन न इनतैं और।

संबंधकारक -

इस कारक के अंतर्गत बारह प्रयोग मिलते हैं, जिनमें 'की', 'के' और 'कौ' के संबंधकारकीय रूप बनते हैं। इनके अतिरिक्त अपवादस्वरूप 'केरी' का प्रयोग भी दिखाई देता है। रूप हैं - इनकी, याकी, इनके, याके, इहिं केरी, इहिं कौ।

इहिं केरी - महिमा को जाने इहिं केरी।

अधिकरण कारक -

इन, इनमैं, इनपर, इन माँहि, इहिं महियाँ, या पर, यामैं, याहि पर आदि रूप अधिकरण कारक में प्रचलित है।

इनमैं - इनमैं कछु नाहिं तेरौ।

यामैं - बन की रहनि नहीं अब यामैं, मधु ही पागि गई।

और निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए अपभ्रंश में 'एह,' 'आय' वाले रूप ही अधिक मिलते हैं। उनमें भी 'एह' वाले रूपों का ही अधिक प्रचलन था। आगे चलकर अवहट्ट, अवधी, ब्रज और खड़ी बोली में इसी की परंपरा चली। 'एह' के अन्य रूप यह, ये, इस और इन हैं। हिंदी यह, ये की व्युत्पत्ति सं. एषः एते एतानि आदि रूपों

से है। हार्नली भी 'इन' का संबंध संस्कृत एषः से जोड़ते हैं। हिंदी का 'इस' सर्वनाम स्पष्ट रूप से प्राकृत एअस्स > संस्कृत अस्य से संबद्ध प्रतीत होता है। हिंदी के सब सर्वनाम प्राकृत से बनते-बनाते आए हैं। संस्कृत में युष्मद्-अस्मद् ही सब लिंगों में समान रूप रखते हैं और शेष सब सर्वनाम रूप बदलते हैं; परंतु हिंदी ने वह जटिलता ही छोड़ दी। सभी सर्वनाम सर्वत्र समान रूप रखते हैं। स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में कोई भेद नहीं रहता। जैसे -

तुम कहाँ जाओगे? (पुल्लिंग)
तुम कहाँ जाओगी? (स्त्रीलिंग)
यह लड़का बहुत परिश्रमी है। (पुल्लिंग)
यह लड़की बहुत परिश्रमी है। (स्त्रीलिंग)

वस्तुतः इन साधारण से भाषाई प्रतीकों के माध्यम से पूरा सामाजिक व्यवहार समझा जा सकता है। वक्ता की भाषिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, क्षेत्रीय और समाजवर्गीय पृष्ठभूमि का अनुमान सर्वनामों के प्रयोग से लगाया जा सकता है।

संदर्भ :

1. गुरु कामता प्रसाद, 2014, हिंदी व्याकरण, दिल्ली पराग प्रकाशन
2. टंडन प्रेमनारायण, 1962, ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा, लखनऊ, लखनऊ विश्वविद्यालय
3. टंडन प्रेमनारायण, 1962, ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा, लखनऊ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. निराला, सं. 2011 वि., प्रबंध पद्म, गंगा पुस्तक माला का 148 वां पुष्प, दिल्ली भारती (भाषा) भवन
5. मिश्र विद्यानिवास, सहाय रमानाथ, अग्रवाल रामेश्वर प्रसाद, सं. मण्डल, 1985, साहित्यिक ब्रजभाषा कोश, भाग-1 लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान
6. राकेश विष्णुदत्त (सं.) 2008, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ग्रंथावली, खण्ड-1, दिल्ली, वाणी प्रकाशन
7. राकेश विष्णुदत्त सं. 2008, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ग्रंथावली, खण्ड 1, दिल्ली वाणी प्रकाशन
8. वर्मा धीरेंद्र, 1954, ब्रजभाषा, इलाहाबाद, हिंदुस्तानी एकेडेमी
9. वर्मा धीरेन्द्र, 2002, हिंदी भाषा का इतिहास, इलाहाबाद, हिंदुस्तानी एकेडेमी
10. श्रीवास्तव रवींद्रनाथ, 2013, हिंदी भाषा का समाजशास्त्र, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन
11. श्रीवास्तव रवींद्रनाथ, सहाय रमानाथ (सं.), 2008, हिंदी का सामाजिक संदर्भ, आगरा, केंद्रीय हिंदी संस्थान
12. श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, 2013, हिंदी भाषा का समाजशास्त्र, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन
13. सिंह नामवर, 2006, हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन
14. सिंह नामवर, 2006, हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन

drshefalichaturvedi@gmail.com

हिंदी भाषा की जागरूकता के प्रति बी.एड के प्रशिक्षणार्थियों के मंतव्यों का अभ्यास

- डॉ. दीपक कुमार रविशंकर पंड्या
गुजरात, भारत

शिक्षा क्षेत्र को सामाजिक परिवर्तन का अमोघ शस्त्र माना जाता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति एवं समाज में अपेक्षित परिवर्तन हम ला पाते हैं। सम्पूर्ण शिक्षा क्षेत्र की सफलता का आधार शिक्षक होता है। यदि शिक्षक अपने विषय और विषय सम्बंधित विशेष ज्ञान से परिपूर्ण होगा, तो वह अपने छात्रों को अपने ज्ञान से लाभान्वित कर पायेगा। अतः शिक्षक के पद की इस महत्ता को ध्यान में रखकर अभ्यासक ने भविष्य के शिक्षकों के ज्ञान की जाँच करने हेतु प्रस्तुत कार्य किया है। अभ्यास का हेतु बी.एड के प्रशिक्षणार्थियों की हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता जानना था। अभ्यासक द्वारा प्रदत्त एकत्र करने हेतु स्वरचित उपकरण "हिंदी भाषा जागरूकता कसौटी " बनाई थी। अभ्यास के परिणाम की बात करें, तो अपेक्षा से निम्न परिणाम पाया गया। याने कि भविष्य के शिक्षक बननेवाले बी.एड के प्रशिक्षणार्थी हिंदी भाषा के साहित्यिक ज्ञान के प्रति उदासीन दिखाई दिए। प्रशिक्षणार्थियों की यह उदासीनता दूर करने के लिए अभ्यासक ने कई सुझाव भी दिए, जो प्रस्तुत अभ्यास में शामिल हैं।

प्रस्तावना :

हरेक राष्ट्र की अपनी निजी एक पहचान होती है। यह पहचान एक अंतरराष्ट्रीय स्तर के दर्शनीय स्थल को लेकर, विशिष्ट योजना को लेकर या राष्ट्र स्तरीय भाषा को लेकर हो सकती है। जहाँ तक हमारे देश - भारत का प्रश्न है, संविधान ने हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया हुआ है। लोगों के दिलो-दिमाग में हिंदी भाषा के प्रति अनन्य लगाव होने की वजह से वे हिंदी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में ही स्वीकार करते हैं। समाज में भाषाओं के प्रति जागरूकता लाने का कार्य शिक्षक ही कर सकते हैं। अतः यहाँ पर भविष्य के शिक्षक बननेवाले बी.एड के प्रशिक्षणार्थी हिंदी भाषा के प्रति कितने जागरूक हैं, यह जानने हेतु अभ्यासक ने प्रस्तुत विषय पर कार्य करना उचित माना है।

शीर्षक : हिंदी भाषा की जागरूकता के प्रति बी.एड के प्रशिक्षणार्थियों के मंतव्यों का अभ्यास

शीर्षकीय शब्दों की संकल्पनाकीय समझ :

हिंदी : हिन्द देश में सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली एवं समझी जाने वाली भाषा, जिसे संविधान ने राजभाषा का दर्जा दिया है।

भाषा : भाषा मानव उच्चारण अवयवों द्वारा उच्चारित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग अपने विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं।

जागरूकता : किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थल को लेकर विशेष जानकारी होना।

बी.एड : शिक्षक बनने हेतु चलाया जा रहा द्विवर्षीय अभ्यासक्रम।

प्रशिक्षणार्थी : प्रशिक्षण महाविद्यालय में अध्ययनरत छात्र।

अभ्यास के हेतु : प्रस्तुत अभ्यास का निम्नांकित एक ही हेतु बना है।

1. बी.एड के प्रशिक्षणार्थियों की हिंदी भाषा

के प्रति जागरूकता जानना।

अभ्यास के प्रश्न : प्रस्तुत अभ्यास का निम्नांकित एक ही प्रश्न बना है।

1. बी.एड के प्रशिक्षणार्थियों की हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता क्या होगी?

अभ्यास की कार्य-योजना :

अभ्यास का प्रकार : प्रस्तुत अभ्यास का प्रकार व्यावहारिक कहलाएगा।

अभ्यास की जनसंख्या : गुजरात राज्य के कुछ ज़िलों में कार्यरत सभी याने कि 6 प्रशिक्षण महाविद्यालय में अध्ययनरत कुल 330 प्रशिक्षणार्थी प्रस्तुत अभ्यास की जनसंख्या बनेंगे।

अभ्यास का न्यादर्श : गुजरात राज्य के कच्छ ज़िले में कार्यरत सभी याने कि 6 प्रशिक्षण महाविद्यालय में अध्ययनरत कुल 330 प्रशिक्षणार्थियों में से जिन प्रशिक्षणार्थियों का प्रमुख या गौण विषय हिंदी भाषा हो, उतने ही याने कि कुल 60 प्रशिक्षणार्थी ही प्रस्तुत अभ्यास के न्यादर्श के रूप में लिए गए।

अभ्यास की मर्यादा : जिन प्रशिक्षणार्थियों का प्रमुख या गौण विषय हिंदी भाषा हो उतने ही प्रशिक्षणार्थियों पर कार्य किया जाएगा, जो प्रस्तुत अभ्यास की मर्यादा बनी रही।

अभ्यास का उपकरण : अभ्यासक द्वारा प्रदत्त एकत्र करने हेतु स्वरचित उपकरण "हिंदी भाषा जागरूकता कसौटी" बनाई गई। प्रस्तुत कसौटी में अभ्यासक ने कुल 10 प्रश्न रखे थे। सारे प्रश्न मुक्त जवाबी प्रकार के थे।

अभ्यास पद्धति : प्रस्तुत अभ्यास में प्रदत्त एकत्र करने के लिए सर्वे करना पड़ा। अतः अभ्यास पद्धति सर्वेक्षण पद्धति कहलाएगी।

अभ्यास की सांख्यिकी : प्रस्तुत अभ्यास में एकत्र किये गए प्रदत्त का विश्लेषण करने हेतु सांख्यिकी के रूप में प्रतिशत का प्रयोग किया गया।

प्रदत्त एकत्रीकरण :

प्रस्तुत कार्य के लिए प्रदत्त एकत्र करने हेतु अभ्यासक ने चयनित किये गए शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के प्रधानाचार्य की अनुमति लेकर उनके ईमेल पर कसौटी भेजी। उन्होंने उसकी कॉपी निकालकर अपने एक प्राध्यापक की निगरानी में अपने स्तर पर यह कसौटी लेने का प्रबंध किया। प्रशिक्षणार्थियों को उत्तर कसौटी में दी गई जगह में ही लिखने थे। इस प्रकार उन्होंने उत्तरपत्र भी एकत्र करके अभ्यासक तक पहुँचाने का प्रावधान किया।

प्रदत्त विश्लेषण : एकत्र किये गए प्रदत्त का विश्लेषण करने हेतु अभ्यासक ने सभी सही उत्तर को 1 गुण और गलत उत्तर को शून्य गुण दिए। अभ्यास के न्यादर्श के रूप में कुल 60 प्रशिक्षणार्थी लिए गए थे। अतः यदि किसी एक प्रश्न का सही उत्तर सभी याने कि 60 प्रशिक्षणार्थी देते हैं तो 100 प्रतिशत परिणाम गिना गया। उसी प्रकार अभ्यासक ने जितने सही उत्तर हुए हैं, उनका प्रतिशत अंक निकालकर गिनती की गई है।

अभ्यास का परिणाम : अभ्यासक को प्रस्तुत अभ्यास का जो परिणाम मिला, वह निम्नांकित कोष्ठक में दर्शाया गया है।

प्रश्न क्रम	प्रश्न	सही	गलत	सही के आधार पर प्रतिशत अंक
1	भारत के कितने प्रतिशत लोग हिंदी बोलते और समझते हैं?	28	32	46.66
2	देवनागरी में कितने स्वर और कितने व्यंजन हैं?	47	13	78.33
3	हिंदी भाषा के इतिहास में सब से पहली रचना किस फ़्रासिसी, लेखक ने की थी?	16	44	26.66
4	हिंदी भाषा में सब से पहली कविता किसने लिखी थी?	11	49	18.33
5	भारतीय संविधान ने हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा कब दिया?	56	04	93.33
6	हिंदी भाषा का पहला webportal कब अस्तित्व में आया?	21	39	35
7	प्रवर्त्तमान समय में हिंदी भाषा की पढ़ाई पूरे विश्व के कितने विश्वविद्यालयों में जारी हैं?	25	35	41.66
8	'हिन्द' से जो 'हिंदी' शब्द बना वह 'हिन्द' शब्द किस भाषा का है?	33	27	55
9	हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा देने वाला भारत का पहला राज्य कौन सा था?	18	42	30
10	1805 में प्रकाशित हुई 'प्रेम सागर' को हिंदी की पहली प्रकाशित पुस्तक माना जाता है। इस के लेखक कौन थे?	13	47	21.66

परिणाम विवरण के रूप में :

प्रस्तुत अभ्यास का परिणाम निम्नांकित मिला है :

1. भारत के कितने प्रतिशत लोग हिंदी बोलते और समझते हैं?
2. इस प्रश्न में कुल न्यादर्श के 46.66% प्रशिक्षणार्थी ही सही ठहरे हैं। याने कि 53.34% प्रशिक्षणार्थी जो भविष्य में हिंदी भाषा के शिक्षक बनने जा रहे हैं, वे इस जानकारी से अवगत नहीं हैं कि भारत के 77 प्रतिशत लोग हिंदी बोलते और समझते हैं।
3. कुल न्यादर्श के 21.66 % प्रशिक्षणार्थी ये नहीं जानते कि हिंदी भाषा में 11 स्वर और 33 व्यंजन हैं।
4. कुल न्यादर्श के सिर्फ़ 26.66 % प्रशिक्षणार्थी को ही

यह पता है कि हिंदी भाषा के इतिहास में सब से पहली रचना फ्रांसिसी लेखक गार्सा द तासी ने की थी।

5. कुल न्यादर्श के 81.66 % प्रशिक्षणार्थियों को यह भी जानकारी नहीं है कि हिंदी भाषा में सब से पहली कविता अमीर खुसरो ने लिखी थी।
6. कुल 60 प्रशिक्षणार्थियों में से 4 प्रशिक्षणार्थी इस बात से अनजान थे कि भारतीय संविधान ने हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा कब दिया।
7. कुल न्यादर्श के 65% प्रशिक्षणार्थी इस बात से अनजान मिले कि हिंदी भाषा का पहला web-portal सन् 2000 में अस्तित्व में आया।
8. कुल न्यादर्श के 41.66% प्रशिक्षणार्थी इससे परिचित पाए गए कि प्रवर्त्तमान समय में हिंदी भाषा की पढ़ाई पूरे विश्व के 177 विश्व विद्यालयों में जारी है।
9. कुल न्यादर्श के 55% प्रशिक्षणार्थी इससे अवगत मिले कि 'हिन्द' से जो 'हिंदी' शब्द बना वह 'हिन्द' शब्द फ़ारसी भाषा का है।
10. कुल न्यादर्श के 70% प्रशिक्षणार्थी इस जानकारी से अनजान मिले कि हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा देने वाला भारत का पहला राज्य बिहार था।
11. कुल न्यादर्श के सिर्फ़ 21.66% प्रशिक्षणार्थी को ही यह पता था कि हिंदी की पहली प्रकाशित पुस्तक 'प्रेम सागर' के लेखक लल्लू लाल जी थे।

सुझाव :

प्रस्तुत अभ्यास के परिणाम के आधार पर निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं :

1. बी.एड में अध्ययनरत प्रशिक्षणार्थियों को समय-समय पर हिंदी भाषा और साहित्य का विस्तृत ज्ञान देना चाहिए। जो प्रशिक्षणार्थी भविष्य में हिंदी विषय के शिक्षक बनने वाले हैं, उन्हें हिंदी भाषा और साहित्य का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि शिक्षक के पास ही अपने विषय का पर्याप्त ज्ञान नहीं होगा, तो वह छात्रों को क्या देगा? अतः प्रशिक्षणार्थी का अपने विषय के साहित्य से अवगत रहना ज़रूरी है।
2. प्रशिक्षण महाविद्यालयों को चाहिए कि वे अपनी तास सारणी में ही इसका प्रावधान करें। यदि तास सारणी में ही सप्ताह के दौरान एक तास इस प्रकार के कार्य को लेकर दिया गया हो, तो अनिवार्य तौर पर प्रशिक्षणार्थी को यह कार्य करना पड़ेगा। विषय प्राध्यापक भी नियमित रूप से सप्ताह में इस प्रकार का कार्य करेंगे और अपने छात्रों को साथ लेकर चलेंगे।
3. हिंदी विषय में अध्ययनरत प्रशिक्षणार्थियों की नियमित तौर पर कसौटी रखनी चाहिए। नियमित रूप से कसौटी रखने पर प्रशिक्षणार्थियों को अपने विषय का अतिरिक्त ज्ञान प्राप्त करने की आदत-सी पड़ जाएगी। वे अपने साथी मित्रों से मुकाबला करके भी प्रोत्साहित होंगे। साथ-साथ प्रशिक्षणार्थी को खुद को भी स्व का पता चलेगा। उन्हें कहाँ पर ज़्यादा मेहनत करनी है, उस बात की जानकारी मिलेगी।
4. हिंदी विषय पद्धति के प्राध्यापक को भी चाहिए कि वे अपने विषय में अध्ययनरत प्रशिक्षणार्थियों को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित करे। प्रोत्साहन का सबसे बड़ा स्त्रोत शिक्षक को माना जाता है। प्रोत्साहन शिक्षा क्षेत्र का प्राण है। शिक्षक अपने लगावयुक्त शब्दों से प्रशिक्षणार्थियों को प्रोत्साहित करके ये कार्य आसान तरीके से कर सकता है।
5. समय-समय पर भाषाविदों और साहित्यविदों के प्रवचन का भी प्रबंध किया जा सकता है। हिंदी विषय एवं साहित्य से जुड़े प्रवचनों से प्रशिक्षणार्थियों को ज़्यादा सीखने को मिलता है। इस प्रकार के कार्य में कम समय में ज़्यादा उपलब्धि होती है।
6. बी.एड में अध्ययनरत प्रशिक्षणार्थियों की

पुस्तकालय के प्रति रुचि बढ़े ऐसे प्रयास करने चाहिए। हिंदी विषय एवं साहित्य को लेकर प्रशिक्षणार्थी विशेष पठन करें, यह अति आवश्यक है। पुस्तकें ही ज्ञान-प्राप्ति का सबसे सरल माध्यम है। अतः प्रशिक्षणार्थियों को पुस्तकालय में जाने के अवसर ज़्यादा प्रदान करने चाहिए।

7. हिंदी विषय के प्राध्यापक को चाहिए कि वे अपने अध्यापन कार्य के दौरान कक्षा में ही विषय से सम्बंधित कुछ विशेष बातों को स्थान दें। हिंदी भाषा में जानने योग्य बातें, हिंदी विषय से जुड़े तथ्य आदि की प्रस्तुति विषय-प्रस्तुति के साथ ही समय-समय पर करें, ताकि प्रशिक्षणार्थियों को अतिरिक्त जानकारी मिलती रहे।

सन्दर्भ सूची :

1. तिवारी, भोलानाथ, (2016) हिंदी भाषा, किताब महल प्रकाशन , न्यू दिल्ली।
2. तिवारी, शशि शेखर, (2016) मानक हिंदी व्याकरण, वाणी प्रकाशन, न्यू दिल्ली।
3. नगेन्द्र और हरदयाल, (2010) हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, उत्तर प्रदेश।
4. सिंह, वी.पी , (2008) शैक्षिक अनुसन्धान की विधियाँ, आलोक प्रकाशन, लखनऊ - प्रयागराज (अलाहाबाद)।

drpandya05@gmail.com

हिंदी-शिक्षण : हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के विशेष संदर्भ में

- डॉ. बिन्द कुमार चौहान
असम, भारत

भारतवर्ष में हिंदी समन्वय की भाषा है, यह व्यावहारिक सत्य है। यह मातृभाषा के रूप में हमारे देश ही नहीं, बल्कि विश्वपटल के बड़े फलक पर बोली जाती है। मातृभाषा में शिक्षा गरीबी से लड़ने का सबसे बड़ा हथियार है। इस तथ्य पर विचार किए बग़ैर लोग अंग्रेज़ियत के पीछे पागलों-सा भागे जा रहे हैं। इसका मूल कारण सरकार की शिक्षा नीति और सरकारी विद्यालयों के निराशाजनक परिणाम हैं। हिंदी के साथ सबसे बड़ी समस्या सरकार की दोहरी नीति है। आज संविधान लागू होने के 71 वर्ष बाद भी हिंदी दोयम दर्जे की भाषा बनी हुई है और अंग्रेज़ी का वर्चस्व कायम है। यद्यपि भारत में असमीया, बंगला, बोड़ो, डोगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगू और उर्दू - ये 22 भाषाएँ संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। ये भाषाएँ ही सही अर्थ में भारत भूमि की मातृभाषाएँ हैं। देश-विदेश के लगभग सभी भाषाविद्-शिक्षाविद् मातृभाषा में शिक्षण के पक्षधर हैं।

भारतवर्ष को छोड़ दें, तो विश्व के लगभग सभी विकसित देश अपनी मातृभाषा में ही शिक्षा देते हैं। प्रश्न अवश्य उठता है कि मातृभाषा कहते किसे हैं? तो -

"जिस भाषा का प्रयोग बालक सर्वप्रथम अपनी माँ से सीखता है और जिसके माध्यम से वह परिवार एवं समुदाय में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है, सही अर्थ में उस बालक की वही मातृभाषा है...।"[1]

ऐसी मातृभाषाएँ भारत के गाँव-गाँव में हैं। चूँकि भारत वर्ष की बहुभाषिकता ऐतिहासिक तथ्य है। विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच सेतु का कार्य करने वाली तथा स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रभाषा की भूमिका का दायित्व वहन करने वाली हिंदी को 14 सितंबर, 1949 ई. को भारत की संविधान सभा ने भारतीय संघ की राजभाषा होने का गौरव प्रदान किया। आज विविधता में एकता को व्यावहारिक रूप देने के लिए परस्पर संपर्क स्थापित करने के लिए हिंदी का संपर्क-भाषा के रूप में अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। भारत जैसे विशाल देश में अंतरप्रांतीय व्यवहार के लिए हिंदी संपर्क-भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है। यह अनुभव किया जा रहा है कि देश में हिंदी के माध्यम से अपने विचारों तथा भावों, अपनी आवश्यकताओं तथा संवेदनाओं को प्रकट करने और भावात्मक एकता स्थापित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हम जानते हैं कि किसी भी राष्ट्र की भाषा उस राष्ट्र की सभ्यता व संस्कृति की संवाहिका होती है। भारत वर्ष के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए देशव्यापी भाषा-आंदोलन चला और इस आंदोलन के लिए हिंदी को ही चुना गया। इस संबंध में केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के संस्थापक मोटूरि सत्यनारायण का कहना है -

"हिंदी आंदोलन हिंदी भाषा का आंदोलन नहीं, हिंदी भाषा-भाषियों का आंदोलन नहीं, उत्तर भारत का आंदोलन नहीं, अहिंदी भाषा-भाषियों का आंदोलन नहीं, बल्कि यह है हिंदुस्तान के सांस्कृतिक पुनरुत्थान का आंदोलन।"[2]

हिंदी भाषा का शिक्षण समस्त भारतवर्ष में हिंदी भाषी राज्यों में मातृभाषा के रूप में तथा हिंदीतर प्रदेशों में द्वितीय भाषा के रूप में किया जाता है। मातृभाषा का शिक्षण जितना ही सहज होता है, द्वितीय या अन्य भाषा-शिक्षण उतना ही कठिन व श्रमसाध्य होता है। अत: हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में हिंदी का शिक्षण कई कारणों से चुनौती भरा है। भाषा विकास के अभाव में मनुष्य के

विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मनुष्य में मातृभाषा का विकास अनुकरण प्रक्रिया के माध्यम से अनायास नैसर्गिक होता है। परंतु किसी भी अन्य भाषा को सीखना तभी संभव है, जब उससे कोई लाभ हो, चाहे वह भाषा हिंदी ही क्यों न हो। मोटूरि सत्यनारायण लिखते हैं -

"हिंदी सीखने का काम दूसरे लोग जो करते हैं, वह राष्ट्रभाषा मानकर करते हैं। अगर हिंदी वालों को राष्ट्रभाषा स्वयं अपने आप मिल गई, तो अच्छा है, इतनी मेहनत उनकी बच गई। वह बची हुई मेहनत जो है, वह राष्ट्र की संपत्ति है, वह किसी और काम में लग जाएगी। हमारे लिए ज़्यादा मेहनत हो गई, तो इतना फ़ायदा मिल गया कि एक भाषा के साथ-साथ दूसरी भाषा और मिल गई। एक से दो बड़े।"[3]

वैसे भाषा जितनी भी अधिक सीखी जाए, उतना ही लाभ है। भारतवर्ष के हिंदीतर क्षेत्र के लोग कम-से-कम तीन भाषाएँ (मातृभाषा, हिंदी और अंग्रेज़ी) सीख ही लेते हैं।

हिंदीतर क्षेत्रों में हिंदी शिक्षण मातृभाषा शिक्षण से भिन्न एक नवीन कार्य-व्यापार है, जिसमें पूर्व अर्जित भाषाई आदतों को हटाकर या उन्हें रूपांतरित करके एक नवीन व्यवस्था एवं व्यवहार को स्थापित करना पड़ता है। हिंदी भाषा में प्रयुक्त ध्वनि, रूप-रचना, शब्द-भंडार तथा वाक्य-संरचना के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। ये परिवर्तन ही हिंदीतर भाषियों के लिए समस्या रूप में सामने खड़े होते हैं। भाषा सीखना एक आदत का निर्माण करना है, अत: अच्छे प्रशिक्षण के माध्यम से किसी भी भाषा को सीखा जा सकता है। परंतु हिंदीतर भाषी छात्र-छात्राओं के सामने हिंदी सीखते समय जो मूल समस्याएँ आती हैं, उनके सामने उक्त वर्णित समस्याएँ गौण-सी लगने लगती हैं। वे समस्याएँ निम्नवत् हैं -

हिंदी में भविष्य कहाँ? - उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी होने के कारण हिंदी का भविष्य उज्ज्वल नहीं है। सामान्य रूप से देखा गया है, जो छात्र मेधावी होते हैं, वे अंग्रेज़ी माध्यम की शिक्षा को ही अधिक महत्त्व देते हैं, कारण उन्हें उसी में अपना भविष्य नज़र आता है। परंतु ऐसी शिक्षा-व्यवस्था एक छात्र के भविष्य के साथ ही नहीं, बल्कि एक राष्ट्र के साथ खिलवाड़ करना है। हर राष्ट्र अपनी स्वदेशी भाषा में अपने भविष्य का निर्माण करता है, जैसे - चीन, रूस, जापान आदि विभिन्न देशों ने किया है, तो भारत क्यों नहीं कर सकता? अत: भाषा सीखने वाले में जागरूकता लाने की आवश्यकता है, कारण हिंदी सीखना हमारे लिए राष्ट्रहित से जुड़ा हुआ है। आत्मोन्नति और राष्ट्रोन्नति निज भाषा ज्ञान से ही संभव है। भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने कहा ही है -

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।"[4]

हिंदी श्रमशीलों की भाषा - भारतवर्ष के हिंदीतर क्षेत्रों में एक गलत मानसिकता को पनपते हुए देखा गया है। यहाँ हिंदी को लोग अज्ञानतावश ठेले-रिक्शे वालों की भाषा समझते हैं। अत: इसे सीखना श्रेष्ठ नहीं मानते। हिंदी श्रम की भाषा अवश्य है, ठेले-रिक्शे वालों की नहीं। ठेले-रिक्शे वालों की भाषा टूटी-फूटी होती है। हिंदी श्रमशीलों की भाषा है। श्रमशीलों की भाषा ही सर्जनात्मक होती है। हिंदी तो देव वाणी संस्कृत की दुहिता अर्थात् देव पुत्री है। यह भी सच है "हिंदी का उद्भव ओर्त में कैद विभिन्न देशों, प्रदेशों, जातियों की बेबस महिलाओं के मध्य आपसी सहानुभूति, सद्भाव एवं सहअस्तित्व की भावना के चलते पिजिन रूप में हुआ। दिल्ली में जब ओर्त ने हरम का रूप ले लिया और महिलाओं को मीना बाज़ार तक जाने की छूट प्राप्त हुई, तो कौरवी एवं ब्रज ने उसमें शौर्य एवं प्रेम के रंग चढ़ा दिए।... 1857 के सिपाही विद्रोह या प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की भाषा हिंदी ही बनी और परतंत्रता एवं गुलामी के विरुद्ध एक दिव्यास्त्र के रूप में ही नहीं, बल्कि 'भारत जननी एक हृदय हो' की सांस्कृतिक भावना का पर्याय बनी।"[5] अत: इसे हम ठेले-रिक्शे वालों की

भाषा कहकर ठुकरा नहीं सकते। यह कर्मवीरों की भाषा है। इसे स्वीकारना ही होगा।

शिक्षण माध्यम की समस्या - भारतवर्ष में हिंदीतर भाषियों की हिंदी-शिक्षा किस माध्यम से दी जाए? यह एक विचारणीय प्रश्न है, क्योंकि "शिक्षण के माध्यम की भिन्नता समस्याओं के स्वरूप को बदल देती है। यह एक व्यापक भ्रांति है कि अंग्रेज़ी के माध्यम से आप विश्व को जीत लेंगे, क्योंकि विश्व के अधिकांश देशों के निवासी अपनी-अपनी भाषा में जीते और मरते हैं।"[6] यह एक माध्यम की भिन्नता मात्र छात्रों के लिए ही नहीं, बल्कि अध्यापकों के लिए भी चुनौती प्रस्तुत करती है। शिक्षक हिंदीतर भाषी छात्र-छात्राओं को हिंदी की शिक्षा दे रहा है, तो उसके सामने दो भाषाओं के ज्ञान का प्रश्न उठता है। वह यदि हिंदीतर भाषी छात्र-छात्राओं की मातृभाषा का ज्ञान नहीं रखता है, तो वह हिंदी का महापंडित होकर भी उपयुक्त शिक्षण नहीं कर सकता। अत: हिंदीतर क्षेत्रों के हिंदी शिक्षकों के लिए आवश्यक है कि वे जिस राज्य में हिंदी शिक्षण कर रहे हों, वहाँ की मातृभाषा का भी ज्ञान रखें। यह हिंदी भाषियों और हिंदी प्रेमियों के लिए एक चुनौती है। अध्यापक द्वारा प्रयुक्त अध्येताओं की मातृभाषा के टूटे-फूटे शब्द भी उन्हें रोमांचित करते हैं, तो उनकी मातृभाषा का स्तरीय ज्ञान अध्यापक के अध्यापन में अवश्य चार चाँद लगाता है। जनता को छलने वाले राजनेता कई बार जनता की मातृभाषा के एक-दो शब्दों का प्रयोग करते ही उन्हें आकर्षित कर लेते हैं, फिर अध्यापक तो छात्र के भावी जीवन का निर्माण कर रहा होता है।

विद्यालयों में हिंदी शिक्षण का प्रारंभ - हिंदीतर क्षेत्रों के विद्यालयों में हिंदी शिक्षण का प्रारंभ प्रथम वर्ग से न होकर पाँचवीं या छठी वर्ग से होता है। यही स्थिति हिंदी माध्यम के विद्यालयों में हिंदीतर भाषाओं की भी है, जो भाषा अध्येता के लिए उचित नहीं है। इस स्तर पर आकर छात्रों में मातृभाषा के व्याघात की समस्या बलवती होने लगती है। द्वितीय भाषा हिंदी सीखते समय बालक ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से मातृभाषा के नियमों की व्यवस्था से परिचित होता है। वह व्यवस्था अन्य भाषा के अधिगम में बाधा पहुँचाती है। अन्य भाषा-शिक्षण की सफलता अथवा विफलता मातृभाषा के व्याघात की मात्रा पर निर्भर है। मातृभाषा की आदत जितनी ही सुदृढ़ होगी, अन्य भाषा के शिक्षण और अधिगम में उतनी ही अधिक बाधा उत्पन्न होगी। यही कारण है कि छोटा बालक किशोर छात्र की अपेक्षा अन्य भाषा को सरलता व शीघ्रता से सीखता है।

अन्य भाषा-शिक्षण में मातृभाषा का व्याघात ध्वनियों के स्तर पर विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। मातृभाषा की ध्वनि-व्यवस्था को सीखने के बाद ही सामान्यत: अन्य भाषा सीखना प्रारंभ होता है। फलस्वरूप, भाषा सीखने वाला छात्र मातृभाषा की ध्वनियों का प्रयोग अन्य भाषा की ध्वनियों के लिए करता है। यह प्रयोग अन्य भाषा में कभी-कभी दोष उत्पन्न कर देता है। उदाहरण के तौर पर भारत में पूर्वोत्तर के छात्र 'च', 'छ' का 'स' तथा 'स' का 'ख' उच्चारण करते हैं। मातृभाषा सीखते समय बालक रूप-रचना संबंधी जिस मोह के वशीभूत होता है, उसी प्रकार का मोह वह अन्य भाषा सीखते समय भी प्रदर्शित करता है। मातृभाषा में तो निरंतर अभ्यास के फलस्वरूप छात्र रूप-रचना की सही आदत विकसित कर लेता है, पर अन्य भाषा का छात्र अभ्यास के अभाव में रूप-रचना संबंधी त्रुटियाँ करता है। यथा –

"तुमी तुमार किताब पढ़ा, आमी आमार किताब पढ़ूँ।"

अर्थात् "तुम तुम्हारी किताब पढ़ो, हम हमारी किताब पढ़ते हैं।"

जबकि होना चाहिए 'तुम अपनी किताब पढ़ो, हम अपनी किताब पढ़ते हैं।'

इस प्रकार के प्रयोग मातृभाषा की रूप-रचना से ही प्रभावित होते हैं। अत: इन समस्याओं से अवगत होना भाषा-अध्यापक के लिए अत्यंत आवश्यक है। हिंदीतर

भाषी छात्र को हिंदी सीखते समय भाषा की समस्याओं से बचना तथा सही प्रयोग की आदत विकसित करना वांछनीय है। डॉ. मनोरमा गुप्त ने इसके निदान के लिए व्यतिरेकी अध्ययन का सुझाव दिया है -

"मातृभाषा तथा अन्य भाषा का व्यतिरेकी अध्ययन इसमें सहायक प्रमाणित होता है। उसके आधार पर भाषा अधिगम में उत्पन्न समस्याओं की निदानात्मक योजना तैयार की जा सकती है।"[7]

साथ ही विद्यालयों में प्रथम वर्ग से ही अन्य भाषा का शिक्षण प्रारंभ कर ऐसी समस्याओं का समाधान आसानी से किया जा सकता है।

उपयुक्त पाठ्यक्रम की समस्या – हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में पाठ्यक्रम उपयुक्त होना चाहिए। हिंदी की पुस्तकों में सिर्फ़ हिंदी भाषी प्रदेशों के लेखकों, साहित्यकारों का वर्णन न होकर हिंदीतर भाषा-भाषी साहित्यकारों का भी सम्यक परिचय मिलना चाहिए। इससे अध्येताओं में भाषा के प्रति आत्मीयता का भाव जागृत होता है।

हिंदी की बिंदी और लिंग संबंधी समस्या – हिंदी की बिंदी और लिंग संबंधी समस्या हिंदीतर भाषियों के लिए ही नहीं, बल्कि तथाकथित हिंदी भाषियों में भाषा संबंधी दोष उत्पन्न कर देती हैं। निर्जीव वस्तुओं के लिंग निर्धारण तथा शब्दों के लिंग निर्धारण में हिंदीतर भाषी हिंदी प्रयोक्ता अटक जाते हैं। शुद्ध भाषा का प्रयोग एक कला है, कोरा किताबी ज्ञान ही नहीं, क्योंकि नियम कंठस्थ होने पर भी अभ्यास न होने से अशुद्ध प्रयोग करते हुए बालक देखे जाते हैं। अत: शुद्ध भाषा सिखाने के लिए व्याकरण का सैद्धांतिक ज्ञान उतना आवश्यक नहीं, जितना व्याकरण के नियमों का व्यावहारिक उपयोग।

ज्ञात है कि भाषा-शिक्षण केवल लिपि, ध्वनि-उच्चारण, व्याकरण या भाषाई संरचना तक सीमित प्रक्रिया नहीं है, बल्कि उसकी व्याप्ति सांस्कृतिक संदर्भों व स्रोतों तक है। हिंदीतर भाषा-भाषी छात्र-छात्राओं का हिंदी भाषी प्रदेश में रहकर हिंदी सीखना अपेक्षाकृत सहज-सरल है, क्योंकि हिंदी भाषी प्रदेश में वे हिंदी की संस्कृति व हिंदी भाषा में अंतर्निहित उसकी अंतर्धारा तक सरलता से अपनी पहुँच बना सकते हैं। यह निर्विवाद तथ्य है कि वास्तविक जीवन स्थितियों के बीच रहकर तथा व्यावहारिक आवश्यकताओं और दबावों से घिरा व्यक्ति किसी भी भाषा को जल्दी और बेहतर ढंग से सीखता है।

भाषा-प्रयोगशालाओं का समुचित उपयोग, हिंदी-फ़िल्मों का प्रदर्शन, हिंदी गानों का श्रवण, हिंदी नाट्य-मंचन जैसी अनेक गतिविधियाँ हिंदीतर भाषी हिंदी विद्यार्थियों को हिंदी में पारंगत बनाने में कारगर भूमिका निभा सकती हैं। भाषा की आंतरिक प्रकृति से जुड़ी किसी भी समस्या का समाधान निरंतर अभ्यास द्वारा संभव है।

हिंदी क्षेत्र की संस्कृति, समाज-व्यवस्था आदि के अनेक प्रसंग कई हिंदीतर भाषा-भाषी विद्यार्थियों के लिए नए, अपरिचित और अटपटे लग सकते हैं। एक हिंदी भाषी अध्यापक जब किसी हिंदीतर भाषी छात्रा को 'बेटा' या 'बाबू' कहकर संबोधित करता है, तो वह असमंजस में पड़ जाती है कि उसके लड़की होने पर भी उसे 'बेटा' या 'बाबू' क्यों कहा जा रहा है, कहीं उसका मज़ाक तो नहीं उड़ाया जा रहा है? ऐसी ही मन:स्थिति कभी-कभी हिंदीतर क्षेत्र के हिंदी अध्यापकों की भी होती है, जब वे यह कहने में संकोच करते हैं कि 'मुझे अंग्रेज़ी नहीं आती' परंतु वे यह कहने में ज़रा भी नहीं हिचकते कि मुझे आपकी मातृभाषा का ज्ञान नहीं।

निष्कर्षत: मातृभाषा के द्वारा विचारों को अभिव्यक्त एवं ग्रहण करना सहज रूप से संभव है। अत: शिक्षण-प्रक्रिया का यह मूल आधार है। मातृभाषा का सार्वभौम महत्त्व सभी क्षेत्रों में समान रूप से स्वीकृत है। मातृभाषा-शिक्षण के महत्त्व की चर्चा करते हुए बैलार्ड का कथन है -

"यदि विचार एवं आंतरिक भाषा एक-दूसरे से इतने सन्निकट रूप से ग्रथित हैं कि वे साथ ही बढ़ते और

घटते हैं, तो एक के बिना दूसरे का उपार्जन नहीं कर सकते और मातृभाषा का शिक्षण, उस भाषा का जिसमें कि बालक सोचता और स्वप्न देखता है, शिक्षा का प्रमुख अंग और मानव-संस्कृति का सर्वोत्तम साधन हो जाता है।"[8]

स्पष्ट है कि मातृभाषा की शिक्षा अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य प्रक्रिया है। दूसरी तरफ़ आज के जटिल तथा विस्तृत समाज में केवल मातृभाषा का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होता। अन्य भाषा-भाषी समुदाय के साथ विचारों के आदान-प्रदान के लिए, उनसे संपर्क स्थापित करने के लिए उनकी भाषा को सीखना आवश्यक हो जाता है। जीवन के विविध क्षेत्रों में अन्य भाषा की कुशलता सहायक हो सकती है, चाहे यह क्षेत्र व्यावसायिक हो अथवा ज्ञानार्जन से संबद्ध हो। अन्य भाषा का ज्ञान व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक है। आधुनिक युग में द्वितीय भाषा को सीखना एक प्रकार से अनिवार्य हो गया है। हम मातृभाषा को छोड़कर जो भी भाषा सीखते हैं वह हमारे लिए अन्य भाषा ही होती है। मातृभाषी क्षेत्र को पार करते ही हमारे सामने जो सबसे बड़ी समस्या खड़ी होती है, वह है भाषा की समस्या। भारत भूमि पर यदि कोई भाषा विकल्प के रूप में सहायक होती है, तो वह हिंदी ही है। अत: मातृभाषा के बाद हिंदी सीखना हर हिंदीतर भाषी भारतीय के लिए आवश्यक है। इकबाल के "हिंदी हैं हम वतन हैं हिंदोस्ताँ हमारा"[9] में हिंदी का अर्थ ही भारतीय है। इस भारतीयता की शिक्षा के माध्यम से बालक में ज्ञानात्मक, कौशलात्मक, रसात्मक, सृजनात्मक तथा अभिवृत्यात्मक विकास ही भारत की अखण्डता, संप्रभुता, अक्षुण्णता आदि को बनाये रखेगा।

संदर्भ सूची :

1. पाण्डेय, डॉ. रामशकल- 'हिंदी शिक्षण', श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2, बीसवाँ संस्करण, 2010, पृ. सं. - 38
2. 'गवेषणा संचयन', केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 2008, पृ. सं. – 485
3. वही, पृ. सं. - 486
4. पाण्डेय, डॉ. रामशकल- 'हिंदी शिक्षण', श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2, बीसवाँ संस्करण, 2010, पृ. सं. - 38
5. 'समन्वय', केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 2008, पृ. सं. - 6
6. 'विश्व हिंदी पत्रिका', विश्व हिंदी सचिवालय, 2009, पृ. सं. - 151
7. मनोरमा गुप्त - 'भाषा-शिक्षण, सिद्धांत और प्रविधि', केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 1985, पृ. सं. - 52
8. वही, पृ. सं. - 10
9. प्रो. शंभुनाथ (प्र. सं.) – 'समन्वय पूर्वोत्तर, प्रवेशांक', अक्टूबर-मार्च 2007-08, कें. हिं. सं., मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, क्षेत्रीय केंद्र- गुवाहाटी-शिलांग, पृ. सं. – 142

bindkumarchauhan@gmail.com

हिंदी : विविध आयाम

24. हिंदी अंतरराष्ट्रीय फलक पर : पुर्तगाल में हिंदी - प्रो. शिव कुमार सिंह

25. हिंदी अंतरराष्ट्रीय फलक पर : सिंगापुर की धरती से हिंदी का नाद - डॉ. संध्या सिंह

26. नेपाल में हिंदी - श्रीमती वीणा सिन्हा

हिंदी अंतरराष्ट्रीय फलक पर : पुर्तगाल में हिंदी

- प्रो. शिव कुमार सिंह
पुर्तगाल

हिंदी भाषा के उद्भव की कहानी सैकड़ों सालों की है, और इन सालों के दौरान कई देशी एवं विदेशी भाषाओं ने हिंदी और भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है। भारतीय उपमहाद्वीप की इन्हीं गैर भाषाओं में से एक पुर्तगाली भाषा भी है, जिसने हिंदी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं को भी प्रभावित किया है और साथ ही समृद्ध भी। हालाँकि, भारतीय भाषाओं के विकास और भाषाई बदलावों के क्षेत्र में पुर्तगाली भाषा के प्रभावों पर बहुत कम अनुसंधान हुए हैं, अतः इस लेख के माध्यम से इन्हीं प्रभावों को संक्षिप्त रूप में दर्शाने की कोशिश की गयी है।

पुर्तगाल का परिचय

पुर्तगाली गणराज्य यूरोप के दक्षिण पश्चिम[1] में स्थित है और साथ ही स्पेन के साथ आइबेरियन प्रायद्वीप बनाता है। 1139 में राजा दों अफ़ोन्सू हैनरिक्स (Dom Afonso Henriques) ने एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में पुर्तगाल की स्थापना की। दुनिया के सबसे पुराने विश्वविद्यालयों में से एक कुइम्ब्रा विश्वविद्यालय की स्थापना 1288 में हुई। पुर्तगाल अपनी स्थापना से लेकर 1910 तक राजतंत्र रहा और तदुपरांत पुर्तगाल एक प्रजातंत्र बना। हालाँकि 1928-1974 के बीच पुर्तगाल तानाशाही का शिकार रहा, परंतु 25 अप्रैल, 1974 को गुलनार क्रान्ति (revolução dos cravos) हुई और इसके फलस्वरूप पुर्तगाल में पुनः प्रजातंत्र स्थापित हुआ।

पुर्तगाल दुनिया के उन देशों में से एक है, जो क्षेत्रफल के मामले में बहुत छोटा, लेकिन मौजूदा समय में विश्व राजनीति में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। एशिया में बहुतेरे युवा लोग पुर्तगाल को प्रसिद्ध फ़ुटबॉल खिलाड़ी क्रिस्तियानो रोनाल्दो की वजह से भी जानते हैं, लेकिन एक व्यक्ति जिसने पुर्तगाल का नाम दुनिया के इतिहास में हमेशा के लिए दर्ज करवा दिया, वे हैं महान समुद्री नाविक, वास्को द गामा (Vasco da Gama, 1468 – 1524), जिन्होंने न सिर्फ़ भारत और पुर्तगाल (यूरोप) के बीच समुद्री रास्ते की खोज की, बल्कि एक कुशल राजनयिक के रूप में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्को द गामा ने 8 जुलाई, 1497 को बलैं, पुर्तगाल से अपनी समुद्री यात्रा शुरू की और 20 मई, 1498 को भारत, केरल के कालिकट तट पर पहुँचे। भारत से लाए सामान जैसे, मसाले, कपास, कीमती पत्थर आदि पुर्तगाल और यूरोप के बाज़ारों में कई गुना ज़्यादा दामों पर बिके, जिससे पुर्तगाली राज्य को और पुर्तगाली व्यापारियों को कई गुना फ़ायदा हुआ। धीरे-धीरे पुर्तगाल ने अरबियों के आधिपत्य को समाप्त करते हुए, भारत से होने वाले व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया और सिर्फ़ पुर्तगाली ही भारतीय माल यूरोप में ला सकते थे, इस प्रक्रिया ने पुर्तगाल को यूरोप में एक बहुत धनी और सशक्त देश बना दिया। वास्को द गामा की मृत्यु भी 1524 में कोचीन में ही हुई।

15वीं शताब्दी के बाद से आने वाली सदियों में 10 से 15 लाख की जनसंख्या वाला एक छोटा-सा देश पुर्तगाल यूरोप का ही नहीं, बल्कि दुनिया की महाशक्तियों में से एक बनकर उभरा, जिसने ब्राज़ील से लेकर जापान तक अपना आधिपत्य स्थापित किया और साथ ही 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में व्यापार के क्षेत्र में अरबी भाषा के एकाधिकार को समाप्त करते हुए, उसकी जगह पुर्तगाली

---

https://www.portaldiplomatico.mne.gov.pt/en/about-portugal (29-11-2020, 19H45)

भाषा को एशिया में व्यापार और संपर्क की भाषा के रूप में स्थापित किया। जैसा कि हैमिल्टन ने 1727 में लिखी अपनी किताब में उल्लेखित किया है।

"...along the Sea-coasts, the Portugueze have left a Vestige of their language, too much corrupted, yet it is the language that most Europeans learn first, to qualify them for a general Converse with one another, as well as with the different Inhabitants of India. (Hamilton 1727)."

भारत के लिए समुद्री राह की खोज ने और वास्को द गामा के कुशल नेतृत्व ने भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की नींव रखी और यह साम्राज्य हमेशा समुद्र तटीय क्षेत्रों से जुड़ा रहा, और इस प्रक्रिया को अंग्रेज़ इतिहासकार, प्रोफ़ेसर चार्ल्स बॉक्सर ने "समुद्री साम्राज्य" की संज्ञा दी है। पुर्तगाली साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारत में ईसाइयत का प्रवेश हुआ, जिससे एक नए धर्म और एक और नई संस्कृति का भारत में जन्म हुआ।

पुर्तगालियों ने हिंद महासागर और चीन सागर में व्यापारिक बंदरगाह और सैन्य ठिकाने स्थापित किए और लगभग इस क्षेत्र से होने वाले सारे व्यापार पर उनका एकाधिकार स्थापित हुआ, और बिना उनको चुंगी दिए कोई भी नाव एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में नहीं जा सकती थी। पुर्तगालियों ने बहरीन, फ़ारस (ईरान), मकाऊ (चीन), जापान और कई दर्जन जगहों पर पूरब में किलों की स्थापना की। 1510 में गोवा की जीत के साथ भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की नींव पड़ी और जल्द ही दमन और दीउ के साथ-साथ मालाबार तट के कई क्षेत्रों पर पुर्तगाल का आधिपत्य स्थापित हो गया और भारत में यह आधिपत्य 1861 तक बरकरार रहा।

स्रोत : http://www.newworldencyclopedia.org/entry/File:Macau_Trade_Routes.png

पंद्रहवीं शताब्दी की शुरूआत में यूरोपीय समुद्री खोज काल के महान् लेखकों में से एक लुईश कामोएश का जन्म भी इसी देश में हुआ और उन्होंने "उश लुज़ियदश" नामक महान् पौराणिक पुर्तगाली ग्रन्थ की रचना की। "उश लुज़ीयदश" पुर्तगाली ही नहीं विश्व साहित्य के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण महागाथा है। इस महागाथा में पुर्तगाल के इतिहास को गद्य स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। इस महागाथा में मुख्य रूप से 'वास्को द गामा' की भारत के लिए समुद्री-मार्ग की खोज के दौरान रास्ते में आयी कठिनाइयों और उनसे जूझने की घटनाओं का विवरण एक दैवीय घटना के रूप में किया गया है।

काले रंग से वे स्थान इंगित हैं, जहाँ पुर्तगाली राष्ट्रीय भाषा है।

पुर्तगाल में हिंदी और भारतीय अध्ययन का इतिहास

पुर्तगाल में विश्वविद्यालय के स्तर पर भारतीय संस्कृति की शिक्षा-दीक्षा की शुरूआत का आधिकारिक श्रेय आदरणीय प्रो. गिल्येर्म द वाशकोंसेलुश अब्रेउ (Guilherme de Vasconcelos Abreu[2], 1842 - 1907) को जाता है, जो लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में संस्कृत के प्रोफ़ेसर भी रहे। अपने समय में, वे न सिर्फ़ पुर्तगाल में वरन पूरे यूरोप में पूरब (एशिया) की भाषा और संस्कृति के बारे में शोध करने वाले गिने-चुने विद्वानों में से एक थे। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं : Questions védiques (1877), Investigações sobre o caracter da civilisação árya-hindu (1878), Principios elementares da grammatica dalingua Sãoskrita (1879), Passos doslusíadas : estudados àluz da mitolojia e do orientalismo (1892), Manual para o estudo do sãoskrito clássico (1881)। उनकी मृत्यु के बाद लगभग 8 हज़ार किताबें लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय के पुस्तकालय को भेंट कर दी गयीं, जिनमें हज़ारों किताबें संस्कृत और भारतीय अध्ययन से सम्बंधित हैं।

प्रो. गिल्येर्म द वाशकोंसेलुश अब्रेउ की मृत्यु के बाद प्रो. सबस्तियाऊँ रदोल्फू दलगादु ने (Sebastião Rodolfo Dalgado[3], 1855–1922), जो गोवा में पैदा हुए थे, वे लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में संस्कृत के प्रोफ़ेसर बने और 1922 तक संस्कृत पढ़ाते रहे। उनको प्रथम कोंकणी-पुर्तगाली और पुर्तगाली-कोंकणी शब्दकोश के प्रकाशन का श्रेय जाता है। Coimbra में 1913 में प्रकाशित उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना – A Influencia do Vocabulario Português em-linguas Asiaticas, (एशियाई भाषाओं में पुर्तगाली शब्दों का प्रभाव) है।

1922 में प्रो. सबस्तियाऊँ रदोल्फू दलगादु की मृत्यु के बाद लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में संस्कृत की पढ़ाई बंद हो गई और भारतीय अध्ययन से संबंधित बहुत ही कम विषय उपलब्ध होते थे। 2008 से यहाँ हिंदी का पठन-पाठन शुरू हुआ, जो विधिवत अभी

2. http://vasconcelosabreu.bnportugal.gov.pt/apresentacao (29/11/2020, 12H45)
3. https://orientalistasdelinguaportuguesa.wordpress.com/sebastiao-rodolfo-dalgado/(29/11/2020,13H)

तक चल रहा है। 2008 से 2020 तक तकरीबन 500 नामांकन हिंदी के विभिन्न स्तरों में हो चुके हैं।

हिंदी - पुर्तगाली : एक दृश्य (शब्दावली)

हिंदी 800 साल पुरानी भाषा है, जो संस्कृत, पालि और प्राकृत से विकसित होकर अनेक विदेशी भाषाओं के शब्दों को समेटती हुई, अपने आधुनिक रूप में पहुँची है, जिसमें पुर्तगाली भी शामिल है। हिंदी में पुर्तगाली मूल के कुछ शब्द :

पुर्तगाली से हिंदी में			
पुर्तगाली	**हिंदी**	**पुर्तगाली**	**हिंदी**
ananás	अनानास	pagar	पगार
armário	अलमारी	padre	पादरी
alfinete	आलपीन	pão	पावरोटी
aia	आया	pistola	पिस्तौल
camisa	कमीज़	falto	फ़ालतू
capitão	कप्तान	fita	फ़ीता
canastro	कनस्तर	balde	बाल्टी
câmara	कमरा	biscoito	बिस्कुट
café	कॉफ़ी	botão	बटन
cartucho	कारतूस	mestre	मिस्त्री
igreja	गिरजाघर	mesa	मेज़
chave	चाभी	jesus	यीशू
toalha	तौलिया	sabão	साबुन
leilão	नीलाम	saia	साया

भारतीय भाषाओं में कोंकणी सबसे ज़्यादा पुर्तगाली से प्रभावित हुई है, जिसमें तकरीबन 2000 शब्द पुर्तगाली मूल के हैं, और इसका कारण साफ़ है, क्योंकि कोंकण क्षेत्र में तकरीबन 450 सालों तक, पुर्तगाली गोवा की राजभाषा थी। कोंकणी के अलावा पुर्तगाली भाषा का प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओं पर भी गोचर होता है, जिसमें सबसे ज़्यादा प्रभाव मलयालम में देखा जा सकता है, जिसमें तकरीबन 400 शब्द आज भी इस्तेमाल हो रहे हैं, जो पुर्तगाली मूल के हैं। बांग्ला, तमिल, मराठी और उर्दू में भी पुर्तगाली मूल के शब्दों का प्रयोग जारी है।

पुर्तगाली भाषा को हिंदी ने उतना प्रभावित नहीं किया है, जितना पुर्तगाली ने हिंदी को, लेकिन पुर्तगाली भाषा में भी हिंदी / भारतीय मूल के शब्द मौजूद हैं। जैसे:

हिंदी से पुर्तगाली में			
हिंदी	**पुर्तगाली**	**हिंदी**	**पुर्तगाली**
आसन	ássana	कश्मीरी	caxemira
आयुर्वेद	aiurveda	समोसा	chamuça
बासमती	basmati	चुरुट (तमिल)	charuto
ब्राह्मण	brâmane	संसार	samsara
चीता	chita	सितार	sitar
कढ़ी	caril	ठग	tugue
धर्म	dharma	Bengal [stick]	bengala
योग	yog[ue] / ioga	बुद्ध	buda
कर्म	carma	शाल	xaile
स्रोत : www.infopedia.pt, Houaiss Dictionary			

पुर्तगाल / लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में हिंदी

लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में एशियन अध्ययन में 2008 से स्नातक के पाठ्यक्रम की शुरुआत हुई और इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत हिंदी विदेशी भाषा के रूप में अन्य एशियाई भाषाओं के साथ पढ़ाई जाने वाली एक भाषा है, और हर साल तकरीबन 20/25 नए छात्र हिंदी विषय को चुनते हैं।

पुर्तगाल में हिंदी के पठन-पाठन की प्रमुख प्रेरणाएँ :

* भारत का विश्व बाज़ार में आर्थिक शक्ति के रूप में उदय
* भारतीय भाषाओं एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान
* योग और भारतीय दर्शन के प्रति आकर्षण
* भारतीय शास्त्रीय कलाएँ (नृत्य, संगीत और गायन)
* भारतीय फ़िल्में
* अनुवाद सेवा और आयात-निर्यात
* भारतीयों के साथ पारिवारिक संबंध
* भारतीय विरासत को जानने की इच्छा

भारतीय अध्ययन केंद्र की स्थापना

2015 में लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में भारतीय अध्ययन केंद्र की स्थापना हुई और तब से एक वर्षीय भारतीय अध्ययन डिप्लोमा कार्यक्रम चल रहा है, जिसमें हिंदी और संस्कृत के साथ-साथ भारतीय धर्मों, कला, इतिहास से संबंधित विषय भी पढ़ाये जाते हैं। भारतीय अध्ययन केंद्र ने लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय और भाषा-विज्ञान केंद्र, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार और लिस्बन स्थित भारतीय दूतावास के सहयोग से दूसरी / विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के पठन-पाठन को ध्यान में रखते हुए लिस्बन, पुर्तगाल में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें पूरी दुनिया से करीब 100 विशेषज्ञों ने शोध-पत्रों को प्रस्तुत किया। इस अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में विदेशी भाषा या द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन करने और सीखने-सिखाने के आयामों पर चर्चा को बढ़ावा दिया गया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य यूरोप और उसके बाहर हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करने वाले केन्द्रों के विस्तार और उनके बीच सम्पर्क स्थापित करने के साथ-साथ हिंदी भाषा के शिक्षण में भाषाई विविधता वाले क्षेत्रों में आने वाली चुनौतियों का समाधान ढूँढने पर बल देना और हिंदी भाषा को भारत देश के अंदर ही द्वितीय भाषा के रूप में पठन-पाठन से सम्बंधित क्षेत्र में शोध करने के लिए भी प्रेरित करना था। इसके अलावा ये केंद्र हिन्द महासागर सम्मेलन, विश्व हिंदी दिवस, योग दिवस, गांधी दिवस तथा भारतीय और पुर्तगाल से संबंधित विषयों पर कार्यशाला, व्याख्यान आदि का आयोजन करता रहता है। इन कार्यक्रमों के ज़रिए भी लोगों को हिंदी भाषा से जुड़ने के लिए प्रेरित किया जाता है।

प्रथम हिंदी-पुर्तगाली-हिंदी शब्दकोश

लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय और भाषा-विज्ञान केंद्र, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार और लिस्बन स्थित भारतीय दूतावास के सहयोग से शिव कुमार सिंह द्वारा प्रथम हिंदी-पुर्तगाली-हिंदी शब्दकोश का प्रकाशन 2019 में किया गया, जो कि पुस्तक रूप के साथ-साथ ऑनलाइन प्रारूप में भी उपलब्ध है।

हिंदी से पुर्तगाली में अनुवाद

प्रेमचंद, तुलसीदास, गालिब, हरिवंश राय बच्चन, अमृता प्रीतम और मो. इकबाल की रचनाओं का अनुवाद हिंदी से पुर्तगाली में शिव कुमार सिंह द्वारा लिस्बन विश्वविद्यालय के तुलनात्मक साहित्य केंद्र द्वारा LITERATURA-MUNDO COMPARADA III PERSPECTIVAS EM PORTUGUÊS, PE LO TEJO VAI-SE PARA O MUNDO (VOL. 5 E 6[4]) में प्रकाशित कराया गया है।

4. https://tintadachina.pt/produto/literatura-mundo-comparada-iii/

विदेशी भाषा के रूप में अन्य एशियाई भाषाओं जैसे चीनी, जापानी, कोरियाई आदि की अपेक्षा हिंदी सीखने वालों की संख्या कम होने का प्रमुख कारण व्यावसायिक प्रेरणा की मौजूदगी का नदारद होना है। साथ ही, हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी को सिर्फ़ संसाधनों की ही नहीं वरन् संस्थागत सहयोग की भी नितांत आवश्यकता और अपेक्षा है। जब भी भारतीय संस्थानों के प्रतिनिधियों को अवसर मिले, तो यथा सम्भव देश के अंदर और भारत के बाहर, विदेशों में सामाजिक और राजनयिक मंचों पर हिंदी का प्रयोग अवश्य किया जाए, अगर पूर्णतः सम्भव न हो, तो आंशिक रूप से ही सही इन मंचों पर हिंदी का प्रयोग दर्शाया जाए, और इस सन्दर्भ में यूरोप के देशों से सीख ली जा सकती है, जहाँ लगभग सभी देश सामाजिक और राजनयिक मंचों पर सदैव अपनी राजकीय भाषा का ही प्रयोग करते हैं।

वर्तमान समय में पुर्तगाल के प्रधानमंत्री श्री अन्तोनियु कोश्ता हैं, जो कि भारतीय (गोवा) मूल के हैं। 1961 में गोवा का भारत में विलय होने के बाद, उनका परिवार लिस्बन, पुर्तगाल पलायन कर गया था। पिछले तीन-चार सालों में दोनों देशों के प्रधानमंत्री, कई मंत्री और सचिव दोनों देशों की यात्रा कर चुके हैं, जिसकी वजह से पुर्तगाल और भारत के संबंध बहुत सुदृढ़ हुए हैं। उम्मीद है कि ये यात्राएँ आने वाले समय में न सिर्फ़ पुर्तगाल और भारत के संबंधों को मज़बूत करेंगी, बल्कि दोनों देशों के बीच अकादमिक संबंधों को भी मज़बूती प्रदान करते हुए, दोनों देशों के इतिहास, भाषा और संस्कृति के क्षेत्रों में भी शोध को बढ़ावा देंगी।

संदर्भ ग्रंथ :

- Carneiro, Matos e Costa. 2010. Portugal : Anos 10 (De 1210-2010 Nove Retratos de Portugal). Texto História, lisbon (Portugal).
- Mateus, Mira. 2003. Gramática da língua Portuguesa. Caminho, lisboa.
- Page, Martin. 2002. The First Global Village: How Portugal Changed the World. Notícias Editorial, lisbon (Portugal).
- Singh, Shiv-Kumar. 2014. पुर्तगाली और हिंदी का तुलनात्मक अध्ययन. Vishwa Hindi Patrika, Vishva Hindi Sachivalay, Mauritius (2014).
- Singh, Shiv-Kumar. 2013. The multicultural identity of India (A identidade multicultural da Índia, in Portuguese). BUALA (Online magazine).
- Singh, Shiv-Kumar. 2012. Teaching Hindi as Foreign language: Perspectives. Sangoschthi Samagra, Hindi Book Center, New Delhi.
- Singh, Shiv-Kumar. 2019. Dicionário Português – Hindi – Português. Colibri. ISBN: 978-989-689-735-2.
- Online Hindi-Portuguese-Hindi Dictionary. http://hindipurtgalikosh.com/ (launched on 15th November 2017).
- Teixeira, André. 2008. Fortalezas do Estado Português da Índia, Arquitectura Militar na Construção do Império de D. Manuel I. Tribuna da História, lisboa, Portugal.

shivsingh@campus.ul.pt

हिंदी अंतरराष्ट्रीय फलक पर : सिंगापुर की धरती से हिंदी का नाद

- डॉ. संध्या सिंह
सिंगापुर

आज अगर कहें कि हिंदी वह रेलगाड़ी स्वरूप प्रतीत हो रही है, जो वैश्विक पुल पर सरसराती हुई आगे बढ़ रही है, तो संभवत: अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारत की राष्ट्रभाषा का दर्जा भले ही हिंदी को न मिला हो, लेकिन भारत से बाहर भारत की प्रतिनिधि भाषा के रूप में वह अवश्य अपने पंख पसार रही है। दुनिया के मानचित्र में भारतीयों ने हर भाग में पहुँचने की कोशिश की है और अपने साथ भाषा और संस्कृति को भी पहुँचाने, ले जाने की कोशिश की है। भाषा, चाहे व्यक्ति हो, समाज हो या राष्ट्र हो उसकी अस्मिता-पहचान की निकष है। हिंदी में इस दायित्व को निभाने और पूरा करने की सभी खूबियाँ मौजूद हैं, जिनके बल पर आज वह भारत की भाषा के साथ ही, कहीं-न-कहीं विश्व भाषा की ओर बढ़ रही है। लाख विरोधों के बाद भी हिंदी अपनी पहचान विश्व जनता से करा चुकी है और आगे बढ़ रही है। हिंदी का वैश्विक परिदृश्य बहुत व्यापक है और यही व्यापकता हिंदी की लोकप्रियता का कारण है।

बहुप्रजातीय विशेषताओं से भरा हुआ सिंगापुर, विश्व नक़्शे पर एक छोटा-सा बिंदु है, जिसे अक्सर 'लिटल रेड डॉट' कहा जाता है। इस आकार के या इससे बहुत बड़े कई शहर हैं भारत में। सरकारी आँकड़ों के अनुसार सिंगापुर का कुल क्षेत्र लगभग 721.5 वर्ग किलोमीटर है, जो क़रीब 60 द्वीपों का मेल है। लेकिन ख़ूबी यही है कि इस देश ने अपने आकार को अपनी पहचान बनाने में कभी आड़े नहीं आने दिया। सन् 2021 में इसकी कुल जनसंख्या 5.9 मिलियन दर्ज की गई। यह देश बनाम शहर दक्षिण-पूर्व एशिया में, निकोबार द्वीप समूह से लगभग 1500 कि.मी. दूर है। इसकी जनसंख्या में सबसे बड़ा प्रतिशत चीनी जनसंख्या का है, जो करीब 76.2 प्रतिशत है, जबकि मलय जनसंख्या 15 प्रतिशत और भारतीय 7.4 प्रतिशत हैं। इसके साथ ही यूरेशियन आदि लोग भी इस द्वीप के निवासी हैं। भारतीयों की बात करें, तो दक्षिण भारतीयों की संख्या अधिक है। धीरे-धीरे उत्तर भारतीयों की संख्या भी बढ़ रही है और उनके साथ ही हिंदी भी।

पहले मलय और अब अंग्रेज़ी सिंगापुर की 'लिंगुआ फ़्रांका' के रूप में अपनी जड़ें जमाती दिखती है, लेकिन हिंदी भाषा का विकास और विस्तार जिस प्रकार से सिंगापुर में हुआ है, उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। हालाँकि सिंगापुर में भारतीय ही अल्पसंख्यक हैं और उसमें भी हिंदी भाषी। तमिल भाषियों की संख्या और इतिहास अधिक पुराना है, लेकिन सिंगापुर की द्विभाषी नीति और विदेशी प्रतिभाओं के स्वागत जैसी नीतियों के कारण भारतीयों की संख्या और हिंदी की स्थिति को अधिक सुदृढ़ता प्राप्त हुई है। छोटे से बिंदु के समान विश्व मानचित्र पर दिखाई देने वाले सिंगापुर में बहुभाषिकता अन्य कई बड़े देशों के मुक़ाबले न सिर्फ़ अधिक बेहतर है, बल्कि यहाँ के नागरिकों को दूसरी भाषाओं एवं संस्कृतियों के प्रति अधिक सजग बनाती है।

भाषा का विस्तार उसके भिन्न रूपों में प्रयोग के कारण होता है। सिंगापुर में हिंदी के कई रूप दिखाई देते हैं। कहीं हिंदी बोलचाल और परिवारों या समारोहों तक सीमित रह गई है, तो कहीं हिंदी अधिक बड़े रूप को साकार कर रही है। शिक्षण संस्थाओं में अपनी पकड़ के साथ हिंदी ने सिंगापुर के भारतीय समाज को एक नया अवसर दिया है, जिससे न सिर्फ़ शैक्षणिक बल्कि सांस्कृतिक धरोहर भी अधिक सहेजकर रखी जा सकेगी।

कोई भी भाषा कुछ मुख्य बिन्दुओं के आधार पर ही अपने वैश्विक आधार को तय करती है जैसे; भाषा के

प्रयोग करने वालों की संख्या, भाषा में हो रहा साहित्यिक कार्य जिसकी सभी विधाएँ वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध हों, शोध कार्य की व्यापकता, कार्य करने की शक्ति, जिसकी शब्द-संपदा विपुल एवं विराट हो व एक-दूसरे को प्रेरित-प्रभावित करने में सक्षम हो आदि। सिंगापुर में हिंदी इनमें से लगभग सभी क्षेत्रों में पैठ चुकी है; कहीं सुदृढ़ तो कहीं लचीली। सिंगापुर में हिंदी आज जिस दायित्व बोध को लेकर संकल्पित है, वह निकट भविष्य में उसे और भी बड़ी भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान करेगा। हिंदी के लिए सिंगापुर के परिदृश्य में यह ज़रूर संभव है कि यह सबकी मातृभाषा न होकर दूसरी, तीसरी अथवा चौथी भाषा भी हो सकती है, जो इसके विस्तार के पैमाने को अधिक समृद्ध करती है।

जब डायस्पोरा की बात करते हैं, तब सबसे पहले उनकी लिंगुआ-फ़्रांका भाषा का ज़िक्र भी होता है। भाषा-प्रसार का सबसे व्यापक और आसान रूप उसका व्यवहार या बोलचाल के रूप में प्रयोग होना है। आँकड़े अगर देखें, तो यही इंगित करते हैं। धीरे-धीरे विश्व में हिंदी बोलने और व्यवहार में लाने वालों की संख्या बढ़ रही है। सिंगापुर में हिंदी बोलने वाला वर्ग कौन-सा है? क्या वह दूसरी-तीसरी पीढ़ी का बसा भारतीय है या पहली पीढ़ी और नए प्रवासी हैं! दोनों में भिन्नता होती है, क्योंकि भले ही संख्या की दृष्टि से हिंदी बोलने वाले बढ़ रहे हैं, पर व्यावहारिकता को संज्ञान में लाया जाए, तो यह प्रवासियों की पहली पीढ़ी तक ही अधिक सीमित रह जाती है। भारत से आया पहली पीढ़ी का प्रवासी समाज तो काफ़ी हद तक अपनी बोलचाल और व्यवहार में हिंदी को क़ायम रखता है, लेकिन उसी प्रवासी समाज के बच्चे हिंदी को अपनी आम बोलचाल की भाषा नहीं बना रहे। ज़्यादातर युवा अंग्रेज़ी को ही अपनी मुख्य भाषा के रूप में बढ़ाना चाहते हैं। यहाँ युवकों में बोलचाल की भाषा के रूप में हिंदी भले ही अधिक न सुनाई देती हो, पर सर्वथा अभाव भी नहीं है, जिसका बड़ा कारण हिंदी की औपचारिक शिक्षा भी है। सिंगापुर में आज किसी भी सार्वजनिक स्थल पर हिंदी कहीं-न-कहीं सुनाई पड़ ही जाती है।

हिंदी सीखने-सिखाने का सिलसिला जो कई दशक पहले शुरू हुआ अब और अधिक ज़ोर पकड़ रहा है। भले ही घर में आम बोलचाल की हिंदी कम हो, पर औपचारिक रूप से हिंदी सिखाने के केंद्रों और संस्थाओं में विस्तार हो रहा है। सिंगापुर के दोनों नामी विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा, भारत अध्ययन, बॉलीवुड और कई रूप 'मोडयुल्स' का हिस्सा बन गए हैं। इन्हें सीखने वाले कुछ 'हेरिटेज लर्नर' यानी दूसरी-तीसरी पीढ़ी के प्रवासी हैं। साथ ही, कई विदेशी भी भारत और भारत-अध्ययन में रुचि रखते हैं, जो इस ओर उन्हें केन्द्रित करता है। भाषा सीखना हमेशा ही विशिष्ट श्रेणी में रहा है। कुछ लोगों में भाषा सीखने का कौशल अन्य लोगों से अलग होता है। पर प्रयास करने पर भाषाई दक्षता किसी-न-किसी हद तक पाई जा सकती है और सिंगापुर इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। सिंगापुर में हिंदी को मातृभाषा के रूप में सीखने वाले काफ़ी छात्र अहिन्दी भाषी होते हैं और अपनी लगन से भाषा सीखते हैं।

सिंगापुर में हिंदी भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में सिखाने की मान्यता प्राप्त है। स्थानीय विद्यालयों में इस समय लगभग 90000 विद्यार्थी इसे दूसरी भाषा के रूप में सीख रहे हैं और सबसे बड़ी बात इनमें प्रवासियों की दूसरी-तीसरी पीढ़ियों की संख्या काफ़ी बड़ी है। द्वितीय भाषा के रूप में सीखने के कारण हिंदी का स्थायित्व यहाँ अन्य कई देशों से अधिक है। विद्यार्थी दसवीं या ग्यारहवीं कक्षा तक हिंदी सीखते हैं और उन्हें मातृभाषा परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है। तभी वे विश्वविद्यालयी शिक्षा में आगे बढ़ सकते हैं। इस एक नीति ने हिंदी को सुदृढ़ता दी है। विदेशी शिक्षा प्रणाली में हिंदी को मान्यता दिलाना इतना सहज नहीं था। इसके पीछे कई लोगों का अथक प्रयास है। 6 अक्तूबर, 1989 का दिन सिंगापुर में हिंदी भाषियों के लिए अत्यंत ख़ास रहा, क्योंकि इसी दिन संसद में उस समय के शिक्षामंत्री श्री टोनी तान

जी ने घोषणा की कि गैर तमिल भाषी भारतीय छात्र माध्यमिक विद्यालय में पाँचों (हिंदी, गुजरती, पंजाबी, बंगाली, उर्दू) में से एक भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में सन् 1990 से पढ़ सकते हैं और यहीं से शुरुआत हुई आधुनिक सिंगापुर में हिंदी शिक्षण की। हिंदी सोसाइटी सिंगापुर और डी.ए.वी. हिंदी स्कूल नामक दो संस्थाओं के माध्यम से सिंगापुर में स्थानीय छात्रों को हिंदी सीखने का मौका मिलता है। इन दोनों संस्थाओं में कुल मिलाकर लगभग 250-300 अध्यापिकाएँ हैं, जो स्वयंसेवी के रूप में हिंदी-शिक्षण का कार्य करती हैं। सैकड़ों साल पहले आए समूह की आज तीसरी-चौथी पीढ़ी अगर हिंदी सीख पा रही है, तो हमारे पूर्वजों और सिंगापुर सरकार को इसका श्रेय जाता है।

स्थानीय विद्यालयों के अलावा सिंगापुर में कई भारतीय अंतरराष्ट्रीय विद्यालय हैं, क्योंकि काम के लिए आनेवाले लोगों में भारतीयों की बड़ी संख्या यहाँ रुख करती है। शुरू में ज़्यादातर ये 'प्रोफ़ेशनल्स' अपने बच्चों को भारतीय अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में ही डालते हैं और दूसरी भाषा के रूप में हिंदी ही पहली पसंद होती है। अगर इन विद्यालयों में देखें, तो दस हज़ार से भी अधिक छात्र यहाँ भी हिंदी सीख रहे हैं और जैसा पहले भी कहा है कि भाषा के साथ संस्कृति से भी जुड़ने के अधिक मौके मिलते हैं। जब ये छात्र हिंदी दिवस पर 'पन्ना धाय' जैसे नाटकों का हिंदी में मंचन करते हैं, तो इतिहास और संस्कृति की तमाम बातें स्वत: उनमें आत्मसात् हो जाती हैं।

सिंगापुर के दोनों मुख्य विश्वविद्यालयों में हिंदी विदेशी भाषा के रूप में अब अपनी पकड़ बना चुकी है। नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ सिंगापुर में सन् 2008 से ही हिंदी सिखाई जा रही है और अब यहाँ भाषा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम चलाया जाता है। यहाँ हिंदी सीखने वालों में बहुत विविधता है, क्योंकि छात्र चीनी, मलय और तमिल या गैर हिंदी भाषी तो होते ही हैं, साथ ही कई बार उनके सीखने के कारण भी बहुत रोचक होते हैं। यहाँ के दूसरे विश्वविद्यालय जैसे नान्यांग टेक्नोलॉजिकल विश्वविद्यालय में हिंदी पिछले पाँच-छह वर्षों से सिखाई जा रही है, पर अभी तक सिर्फ़ पहले स्तर की कक्षाएँ ही हैं और भविष्य में अगले स्तर में भी हिंदी लेने वालों का इंतज़ार है!

सिंगापुर में हिंदी का स्वर अब साहित्य में भी मुखरित हो रहा है। जब बात सिंगापुर में रचे जा रहे प्रवासी साहित्य की आती है, तो दायरा अभी कुछ सीमित हो जाता है। शुरूआती रूप में साहित्य की बात करने पर सन् 1940-50 के आसपास हमें अध्यापक वशिष्ठ राय जी के बारे में पता चलता है, जो 'नेताजी हिंदी हाई स्कूल' में हिंदी अध्यापन करते थे। उनके द्वारा लिखी कई पुस्तकों में दो उपन्यास भी शामिल थे। आज दस्तावेज़ों के सही रख-रखाव के अभाव में उन तक पहुँच नहीं बन पा रही है, पर सिंगापुर में लिखी हिंदी रचनाओं में उन्हीं का नाम सबसे पहले आता है।

सिंगापुर के वर्तमान हिंदी साहित्य समाज के बारे में चर्चा करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह देश एक तरह से कई उभरते प्रवासी साहित्य समाजों का प्रतिनिधि है, जिससे दुनिया को रूबरू होना है। सिंगापुर में कविताएँ काफ़ी लिखी जा रही हैं, कहानियाँ लिखने का सिलसिला भी शुरू हो चुका है। आराधना झा श्रीवास्तव, श्रद्धा जैन, विनोद दूबे, राजेंद्र तिवारी, चित्रा गुप्ता, गौरव उपाध्याय, शान्ति प्रकाश उपाध्याय, शार्दूला नोगजा, शीतल जैन, रीता पाण्डेय आदि कविताओं के क्षेत्र में तथा कथा व गद्य लेखन में चित्रा गुप्ता, डॉ संध्या सिंह, विनोद दूबे, आराधना झा श्रीवास्तव आदि नाम मुख्य हैं। यहाँ से एकमात्र उपन्यास अभी तक 'इण्डियापा' लिखा गया है, जिसे विनोद दूबे ने बनारस को केंद्र में रखकर लिखा है। सन् 2020 तक यहाँ से तीन कविता-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जो गौरव उपाध्याय की 'हाफ़ फ़िल्टर कॉफ़ी', शान्ति प्रकाश उपाध्याय की 'मेरी अनुभूतियाँ' और सिंगापुर के नौ कवियों की 'सिंगापुर नवरस' हैं। ऐसे कई युवा हैं, जो प्रवासी साहित्य के मानचित्र पर नए हैं, उभरकर सामने आ रहे हैं। 'लॉकडाउन' की सबसे बड़ी

उपलब्धि हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में हुई है। सिंगापुर से कई कवि-गोष्ठियाँ आयोजित हुईं तथा यहाँ के रचनाकारों ने भिन्न मंचों से अपनी रचनाएँ सुनाईं।

सिंगापुर से उपन्यास, कविताएँ, ग़ज़ल, शेरो-शायरी, गीत, कहानियाँ, संस्मरण, आलेख, डायरी आदि हर विधा में रचनाएँ लिखी जा रही हैं। धीरे-धीरे रचनाकारों की सूची लम्बी हो रही है और रचना का स्तर भी बेहतर हो रहा है। हिंदी रचनाएँ लिखने वाले ज़्यादातर लोग किसी-न-किसी व्यावसायिक पेशे से जुड़े हैं, जैसे आई. टी. या बैंकिग। हिंदी भाषा से लगाव पहले से रहा है और अब सुनने-सुनाने का मंच मिलने लगा है, तो लोगों की प्रतिभाओं में निखार भी आने लगा है।

'सिंगापुर संगम' नामक एकमात्र पंजीकृत हिंदी पत्रिका की जनवरी 2018 में शुरुआत हुई। इस पत्रिका के कारण सिंगापुर के रचनाकारों को विश्व मंच से जुड़ने का खास मंच मिला। साहित्य के प्रति रुचि भी अधिक विकसित हुई। पत्रिका ने छात्रों में लेखन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से, हिंदी लेखकों को हर अंक में स्थान देने के साथ ही छात्र-विशेषांक भी निकाला। इस पत्रिका की सम्पादिका डॉ. संध्या सिंह हैं। इस तरह यहाँ विद्यालयों में हिंदी सीख रहे छात्रों को भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए मंच मिल रहा है।

सन् 2019 में स्थापित लाभ निरपेक्ष हिंदी संस्था 'संगम सिंगापुर' साहित्य, भाषा और लोक-संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए, कई अनोखे प्रयास कर रही है। प्रति वर्ष अपने अग्रज साहित्यकारों के रचना-संसार पर एक सार्वजनिक आयोजन 'साहित्य के खज़ाने से' करवाने के साथ ही भिन्न प्रतियोगिताओं द्वारा छात्रों और वयस्कों को हिंदी से जोड़ने का कार्य कर रही है। खासकर छात्रों के लिए अंतरराष्ट्रीय कवि-गोष्ठी के आयोजन और उसकी सफलता ने यह सिद्ध कर दिया कि अगर मौके उपस्थित हों, तो भावी पीढ़ी में जोश कम नहीं। सिंगापुर में पंजीकृत यह संस्था हिंदी दिवस और विश्व हिंदी दिवस का आयोजन तो करती ही है, समय-समय पर साहित्यिक गोष्ठियाँ, छात्रों के मध्य राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करवाती है। कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा और विमर्श के आयोजन भी इस संस्था द्वारा किये जा रहे हैं, जिसमें देश-विदेश के कई विशेष व्यक्ति भाग लेते हैं। 'ग्लोबल हिंदी फ़ाउंडेशन' नामक संस्था द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर 2016-18 तक 'प्रेरणा अवार्ड्स' का वार्षिक रूप से आयोजन किया गया, जिसमें विद्यालयों के छात्रों के साथ ही वयस्कों के लिए प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं। 'हिंदी परिवार सिंगापुर' नामक टोस्ट मास्टर क्लब भी पिछले दो वर्षों से टोस्ट मास्टर गतिविधियों के साथ कवि गोष्ठियों और युवाओं के लिए कई कार्यक्रमों का आयोजन कर रहा है। ग्लोबल हिंदी फ़ाउंडेशन, सिंगापुर टोस्ट मास्टर्स क्लब जैसे मंचों के माध्यम से हिंदी को बल मिल रहा है। आज लोगों के पास कई विकल्प हैं, जो उन्हें प्रेरित करते हैं कि वे हिंदी से जुड़ें। मीडिया में भी सिंगापुर में हिंदी स्वयं को वैश्विक परिदृश्य से जोड़ रही है। 'दस्तक' के नाटक या हिंदी रेडियो 'रेडियो मस्ती' के शो, आज सभी हिंदी के बहाने अपनी पहचान बना रहे हैं और हिंदी को यहाँ बढ़ा रहे हैं।

सांस्कृतिक आयोजनों के बिना सिंगापुर या किसी भी बाहरी देश में हिंदी इस रूप में नहीं बढ़ पाएगी। सिंगापुर में भी आर्यसमाज सिंगापुर, श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर, भारतीय भवन, भोजपुरी असोसियेशन, बिजहार जैसी संस्थाएँ संस्कृति की जड़ों को और गहरे तक जमाने के प्रयास में लगी हैं। श्री लक्ष्मी नारायाण मंदिर या भारतीय भवन जैसी संस्थाओं में जाने पर, आज से 70-80 साल पुरानी भोजपुरी और हिंदी के भाव आपको सुनाई देंगे। हर मंगलवार को श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर में हनुमान चालीसा, सुन्दर काण्ड और दुर्गा पाठ का आयोजन उन्हीं लोगों के कारण जीवित है, जो बहुत पहले इस धरती पर कुछ मूर्त और अमूर्त साधनों के साथ आए थे। इन संस्थाओं के द्वारा होली, दिवाली, दशहरा से लेकर तीज और तुलसी विवाह तक का आयोजन अप्रत्यक्ष रूप से

हिंदी को इस द्वीप पर बढ़ाने में सहायक है।

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि सिंगापुर में हिंदी का वैश्विक फलक व्यापक है। घर, विद्यालय, समाज, मनोरंजन, साहित्य शायद ही ऐसा कोई कोना हो, जिस संसार में हिंदी ने अपनी पैठ बनानी शुरू न की हो। कहीं जमकर बैठी है, तो कहीं प्रवेश कर चुकी है और कहीं घुसने की फ़िराक में है। शिक्षा, साहित्य और संस्कृति का संवर्धन भाषा से जुड़ा है और इस दिशा में अनेक कार्य हो रहे हैं, जिनसे यहाँ भारत और भारत की भाषाओं और संस्कृति का भविष्य कुछ उज्ज्वल ही दिखाई देता है।

सन्दर्भ :

1. बर्मन, अमृत 2009, इंडिया फ़ीवर द न्यू इन्डियन प्रोफ़ेशनल्स इन सिंगापुर: सिंगापुर इन्डियन एसोसिएशन बुक सिरीज़ नंबर 2
2. ब्रिज वी. लाल, पीटर रीब्स एंड राजेश राय (एडिटेड) 2006. द इन्सैक्लोपीडिया ऑफ़ इन्डियन डायस्पोरा, सिंगापुर: एडिशन डिडिएर मिलेट.
3. अर्नेस्ट सी.टी. चिऊ एंड एडविन ली (एडिटेड) 1991. सिंगापुर अ हिस्ट्री ऑफ़ सिंगापुर: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. मजूमदार मौसमी, 2010, काहे गइले बिदेस, व्हेअर डिड यू गो? ऑन भोजपुरी माइग्रेशन सिंस द 1870 एंड कन्तम्पररी कल्चर इन उत्तर प्रदेश एंड बिहार, सूरीनाम एंड द नीदरलैंड : रॉयल ट्रोपिकल इंस्टिट्यूट प्रेस.
5. द स्ट्रेट टाइम्स, सिंगापुर, 7 अक्तूबर, 1989, पेज 24
6. सिंगापुर डिपार्टमेंट ऑफ़ स्टैटिक्स, पॉपुलेशन ट्रेड्स, 2021
7. www.singaporesamgam.com

sandhyasingh077@gmail.com

नेपाल में हिंदी

- श्रीमती वीणा सिन्हा
नेपाल

'भाषा' भावों तथा विचारों के आदान-प्रदान एवं अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन ही नहीं समाज की भावनात्मक एकता की संवाहिका भी है। मानवीय आचरण और सभ्यता का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार भाषा के माध्यम से ही संपन्न होता है। भाषा के बिना मानव और मानवीय समाज की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। संसार के सभी विषयों के ज्ञान का माध्यम भाषा ही है। व्यावहारिक जीवन में कोई भी ऐसा पेशा अथवा कार्य नहीं है, जो भाषा के बिना संपन्न हो सके। भाषा वह संचार व्यवस्था है, जिसके केंद्र में मनुष्य की पूरी सत्ता आ सिमटी है।

जहाँ तक हिंदी भाषा की बात है, इसमें संवाद की सुविधा है, संस्कृति से जुड़ने की ललक है और अन्य भाषाओं की विशेषताओं को आत्मसात् करने की ज़बरदस्त ताकत है। यही कारण है कि यह भाषा उस समुद्र-जलराशि की भाँति है, जिसमें अनेक नदियाँ आकर समाहित हो जाती हैं। अपनी विशालता तथा लचीलेपन की वजह से हिंदी आज विश्व के जन-जन की भाषा बनती जा रही है।

इक्कीसवीं सदी में सर्वत्र वैश्वीकरण की धूम है। सूचना तथा प्रौद्योगिकी के विकास ने इस भाषा के विकास को गति तथा तीव्रता प्रदान की है, एक नया आयाम दिया है। हिंदी भाषा अपनी संरचनात्मक तथा आध्यात्मिक विशेषताओं के कारण विश्व भाषा के रूप में उभरकर सामने आ रही है। वैश्विक स्तर पर यह सिद्ध हो चुका है कि हिंदी भाषा, अपनी लिपि तथा उच्चारण के लिहाज़ से सबसे जीवंत और विज्ञान सम्मत भाषा है।

भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टि से भारत और नेपाल दो संप्रभु राष्ट्र हैं। खुली सीमाएँ तथा सहज आवागमन, रोज़गार की संभावना तथा सांस्कृतिक-सामाजिक संबंधों की वजह से नेपाल में विश्व के अन्य देशों की तुलना में जन-जन में हिंदी के प्रति प्रेम अधिक है और हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार भी यहाँ अत्यधिक है।

नेपाल में हिंदी का इतिहास अत्यंत ही प्राचीन है। यहाँ हिंदी न केवल साधु-संतों, महापुरुषों, फ़कीरों, वेद ग्रंथों, आध्यात्मिक चिन्तकों, धर्म-गुरुओं, साधकों की भाषा रही है, बल्कि आम लोगों, व्यावसायिक वर्गों, पर्यटकों के साथ-साथ, वैचारिक आदान-प्रदान का प्रमुख माध्यम भी रही है।

सोलहवीं शताब्दी के आसपास काठमांडू घाटी के मल्ल शासकों के समय में हिंदी नाटकों का मंचन तथा दोहा, भजन और गज़ल का गायन होता था। भूपतीन्द्र मल्ल ने दशावतार नृत्य की रचना हिंदी में की थी। राष्ट्रीय अभिलेखालय में जो रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनमें से दो हिंदी भाषा में लिखी गई थीं। नेपाल में नाथ संतों तथा जोशमणि संतों के समय नेपाली तथा हिंदी दोनों भाषाओं में साहित्यिक रचनाएँ होती थीं। आधुनिक काल में भी हिंदी में साहित्य और वैचारिक आलेखों का लेखन जारी है और उससे नेपाल की साहित्यिक मंजूषा भरती रही है। इन साहित्यकारों के अलावा नेपाल में शाह तथा राणा शासकों द्वारा भी हिंदी अपनाई गई। नेपाल एकीकरण करने वाले शासक पृथ्वी नारायण शाह हों या लोकतांत्रिक आंदोलन के नेतृत्वकर्ता वीपी कोइराला, कृष्ण प्रसाद भट्टराई या गणतंत्र के संवाहक गिरिजा प्रसाद कोइराला सबने हिंदी को अपनी कलम का सारथी बिना हिचकिचाहट के स्वीकारा।

नेपाल एकीकरण के पश्चात् प्राथमिक कक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक हिंदी ही शिक्षा का माध्यम थी। साथ में, नेपाली, मैथिली, नेवारी तथा भोजपुरी भाषा

भी पढ़ाई जाती थी। नेपाली भाषा को राष्ट्रीय एकता के कारण आगे लाने के प्रयासों के बावजूद भी हिंदी नेपाल की शिक्षा तथा प्रशासनिक कामकाज की भी भाषा रही।

आगे चलकर राजा महेन्द्र ने सन् 1959 में नया पाठ्यक्रम लागू कर दिया, जिसमें प्राईमेरी से लेकर हाई स्कूल और कॉलिजों तक में हिंदी के पठन-पाठन पर पाबन्दी लगा दी गई। जो आज गणतंत्र स्थापना के बाद भी जारी है, लेकिन उसके बावजूद इतिहास की परछाइयों और वर्तमान की हकीकत से हम कैसे पीछा छुड़ा सकते हैं?

नेपाल में हिंदी की वर्तमान स्थिति

यद्यपि नेपाल एक बहुजातीय और बहुभाषिक देश है। यहाँ बोली जानेवाली भाषाओं और बोलियों की संख्या 125 है। नये संविधान में मातृभाषा का दर्जा नेपाल की इन सभी राष्ट्रीय भाषाओं को दिया गया है, जिनका प्रयोग करने का अधिकार सभी नागरिकों को है, चाहे वे संसद में करें या कहीं और। नेपाल की जनगणना के अनुसार नेपाल में सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली मातृ भाषाओं में हिंदी का स्थान सोलहवाँ है। भाषा आयोग के अनुसार हिंदी भाषा को 77 हज़ार 569 व्यक्ति अपनी मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। उसी तरह नेपाली के बाद हिंदी सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा भी है। यह 12 लाख 25 हज़ार 951 नेपालियों द्वारा, अपनी दूसरी भाषा के रूप में बोली जाती है। हिंदी मुख्यतः तराई क्षेत्र के ज़िलों में बोली जाती है। तराई क्षेत्र में हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में बोलने वालों की संख्या 995486 है। (भाषिक तथ्यांक, सन् 2019, भाषा आयोग : 60)।

नेपाल में हिंदी का अस्तित्व बरकरार है तथा इसका महत्त्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। आज नेपाल के दुर्गम क्षेत्र हो या भारत से सटा तराई-क्षेत्र या राजधानी, बिना औपचारिक शिक्षा के हिंदी भाषा समझने, पढ़ने, लिखनेवालों की तादाद दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हिंदी जन-मन की भाषा बन गई है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा।

सरकारी संस्थाओं में हिंदी

नेपाल के सरकारी संचार क्षेत्र रेडियो नेपाल से हिंदी भाषा में प्रत्येक दिन, रात्रि दस बजे हिंदी में समाचार प्रसारित होता है। उसी तरह सप्ताह के एक दिन गीत-संगीत का कार्यक्रम मधुरिमा का प्रसारण होता है। सरकारी साहित्य संस्थान नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान के अनुवाद विभाग से आज से छह वर्ष पूर्व रूपांतरण का प्रकाशन आरंभ हुआ, जिसमें विभिन्न भाषाओं की साहित्यक रचनाओं का हिंदी में अनुवाद कर, प्रकाशन की सुविधा प्रदान की गई है। अनुवाद विभाग से नेपाल की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का अनुवाद हिंदी भाषा में प्रकाशित होता आ रहा है।

श्रव्य-दृश्य में हिंदी

वैसे नेपाल रेडियो से हिंदी में समाचार तथा गीत-संगीत का एक कार्यक्रम सरकारी तौर पर प्रसारित होता है। अन्य गैर सरकारी रेडियो तथा एफ़.एम. में हिंदी गीत-संगीत को स्थान मिलता है और नेपाली श्रोताओं के बीच ऐसे कार्यक्रम काफ़ी लोकप्रिय भी हैं। हिंदी चैनलों से प्रसारित होने वाले सीरियल भी नेपाली सीरियलों की तुलना में नेपाल में काफ़ी पसन्द किए जाते हैं। नेपाल में हिंदी फ़िल्मों की लोकप्रियता, नेपाली फ़िल्मों की तुलना में ज़्यादा है। बच्चे से लेकर वयस्क तक, हिंदी फ़िल्मों तथा सीरियलों और उनके गीत-संगीत का धड़ल्ले से अनुसरण करते हैं।

हिंदी में पत्र-पत्रिकाएँ

नेपाल में हिंदी लेखन की परंपरा को विस्तृत, व्यापक और रुचिकर बनाने में यहाँ से प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का योगदान भी विशेष रूप से प्रशसंनीय रहा है। इन पत्रिकाओं में नेपाल की सर्वोत्कृष्ट हिंदी पत्रिका 'द पब्लिक', 'साहित्य लोक', 'नई उम्मीद', 'लोकमत' तथा

कुछ अन्य क्षेत्रीय स्तर पर पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ नेपाली पाठक वर्ग में हिंदी के प्रति रुचि पैदा करने में अविस्मरणीय योगदान प्रदान कर रही हैं।

नेपाली कलाकारों की वजह से भी नेपाल में हिंदी भाषा की लोकप्रियता और ज़्यादा बढ़ गई है। हिंदी भाषा की उत्कृष्ट पुस्तकों का नेपाली भाषा में हो रहे अनुवादों के कारण भी युवा वर्ग में हिंदी सीखने के प्रति आर्कषण बढ़ रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी

नेपाली शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी का उल्लेखनीय योगदान है। नेपाली और हिंदी भाषा की उत्पत्ति देवनागरी से होने के कारण बिना औपचारिक हिंदी शिक्षा के बावजूद सर्वग्राही हिंदी भाषा उनकी ज़ुबान पर सहज चढ़ जाती है और समझ में भी आती है। उच्च शिक्षा नीति के तहत नेपाल में हिंदी उच्च तथा उच्चतर शिक्षा में जीवित है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय के लगभग दो सौ अंगीकृत कैंपसों में से छह में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त त्रिभुवन विश्वविद्यालय के केंद्रीय हिंदी विभाग, कीर्तिपुर, काठमांडू में, स्नातकोत्तर और पी.एच. डी. स्तर के अध्ययन-अध्यापन की भी व्यवस्था है।

केंद्रीय हिंदी विभाग की अवस्था दयनीय है। हिंदी को प्राथमिक तथा माध्यमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में स्थान न देने के कारण, उच्च कक्षाओं में वे ही विद्यार्थी हिंदी अध्ययन करने आते हैं, जिन्हें भारतीय दूतावास से स्कॉलरशिप मिलती है या जो नाममात्र की डिग्री लेना चाहते हैं। कुछ गैर सरकारी स्कूलों में हिंदी एक विषय रूप में पढ़ाई जाती है।

साहित्य और हिंदी

नेपाल में हिंदी को तीन कालों में बाँटा जा सकता है। प्रारंभिक काल में सिद्ध और नाथ तथा जोशमणि की भक्ति काव्य-धारा सहस्रमुखी होकर प्रवाहित होती थी। नेपाल में चर्या गीत, जो काठमांडू के नेवार जाति में आज भी गाए जाते हैं, जिसमें हिंदी का प्रारंभिक रूप पाया जाता है। नेपाल के मल्ल तथा शाह वंश के अनेक शासकों ने भी हिंदी भाषा में रचना की थी। उसमें सबसे उल्लेखनीय आधुनिक नेपाल के संस्थापक पृथ्वी नारायण शाह हैं। नेपाल में हिंदी के प्रारंभिक दौर में प्रताप मल्ल तथा सिद्धि नर सिंह मल्ल का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। सिद्धि नर सिंह मल्ल ने हरिशचंद्र नाटक लिखा था, जिसमें हिंदी के अनेक शब्दों का उल्लेख किया था। - वि. सं 7710।

मध्यकाल में नेपाली हिंदी साहित्य आलेख, कहानियाँ, निबंध, कविता तथा गज़लों आदि का लेखन साहित्यकारों तथा विद्वानों द्वारा किया गया। जिसमें मोतीलाल भट्ट की गज़लें, देवी प्रसाद शर्मा की रचनाएँ, गिरीश वल्लभ जोशी के उपन्यास तथा नाटक, राम प्रसाद, कवि केसरी चित्रधर हृदय की कविताएँ शामिल हैं ।

आधुनिक काल में शुक्रराज शास्त्री लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा की कविताएँ, लेखनाथ पौडेल की नाट्य कृतियाँ, सिद्धिचरण श्रेष्ठ की कविताएँ, गोपाल सिंह नेपाली की कृतियाँ, विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला की कविता तथा कहानियाँ, केदारमान सिंह व्यथित की काव्य कृतियाँ, धुस्वां सायमि की कविताएँ तथा उपन्यास, कामता कमलेश की संपादित कहानी संग्रह, प्रो. डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र की कृतियाँ, प्रो. डॉ. उषा ठाकुर की कृतियाँ, डॉ. रामदयाल राकेश का निबंध संग्रह तथा रचनाएँ, राजेश्वर नेपाली की कविता तथा निबंध संग्रह, डॉ. आशा सिन्हा की रचनाएँ, डॉ. संजीता वर्मा की कहानी संग्रह तथा उपन्यास, गोपाल अश्क की कहानियाँ, गीत तथा गज़ल, कृष्णजंग राणा की कविता तथा गज़ल संग्रह, वसंत चौधरी का कविता-संग्रह तथा वीणा सिन्हा का कहानी-संग्रह तथा कविताएँ, निबंध तथा आलेख शामिल हैं।

कुछ अन्य साहित्यकार भी कभी-कभी हिंदी भाषा में अपनी अभिव्यक्तियों को लिपिबद्ध करते रहते

हैं। वैसे नेपाल में हिंदी भाषा और साहित्य में लेखकों तथा साहित्यकारों की कलमें लगातार चल रही हैं और उत्कृष्ट रचनाएँ पाठक वर्ग को उपलब्ध भी हो रही हैं। नेपाल में चूँकि हिंदी प्रेमियों की तादाद लाखों में हैं, वे लोग भारत तथा विश्व के प्रसिद्ध तथा चर्चित हिंदी लेखन को संग्रहित भी करते हैं। वे इसका रुचि के साथ पठन भी करते हैं। हिंदी के अनेक उत्कृष्ट ग्रंथों का अनुवाद नेपाल की विभिन्न भाषाओं में हो रहा है, जिसकी वजह से हिंदी साहित्य के प्रति नेपाली बौद्धिक वर्ग की अभिरुचि बढ़ रही है।

हिंदी के लिए कार्यक्रम

नेपाल में हिंदी भाषा तथा साहित्य के संबंध में प्रतिवर्ष अनेक कार्यक्रमों का आयोजन भी होता रहता है। विश्व हिंदी दिवस हो या हिंदी दिवस हो या हिंदी के साहित्यकारों की जयंती, उक्त अवसरों पर निबंध, काव्य-गोष्ठी तथा परिचर्चा आदि का आयोजन होता है। इस अवसर पर हिंदी के विद्वानों तथा लेखकों को भी सम्मानित किया जाता है।

नेपाल में 'द पब्लिक' हिंदी मासिक पत्रिका ने पहली बार 2011 में विश्व हिंदी दिवस का आयोजन किया था। उसके बाद से प्रत्येक वर्ष 'द पब्लिक' द्वारा तथा भारतीय दूतावास और त्रिभुवन विश्वविद्यालय के सहयोग से आयोजित विश्व हिंदी दिवस तथा हिंदी दिवस के अवसर पर हिंदी पखवाड़ा मनाया जाता है। क्षेत्रीय स्तर पर भी 'विश्व हिंदी दिवस' के अवसर पर हिंदी संस्थाओं तथा स्कूलों में कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

रोज़गार के क्षेत्र में हिंदी

रोज़गार के लिए नेपाल से विदेशों में जाने वाले लाखों युवक जब अपना बायोडाटा भरते हैं, तब उसमें भाषा के कॉलम में अनिवार्य रूप से हिंदी को शामिल करते हैं।

नेपाल में हिंदी भाषा रोज़गार का बहुत बड़ा माध्यम है। पर्यटन क्षेत्र हो या अन्य व्यापार-व्यवसाय का क्षेत्र हो, हिंदी भाषा नेपाली और सीमा क्षेत्रों से जुड़े लाखों लोगों को उनके व्यवसाय संबंधी कार्य को सहज बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर रही है।

यही कारण है कि नेपाल में आकर व्यापार-व्यवसाय करने वाले हिंदी की वजह से फल-फूल रहे हैं, बल्कि लाखों नेपाली जो कि भारत के विभिन्न राज्यों में जाकर अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं, उनके संप्रेषण का माध्यम भी हिंदी ही है। इसी प्रकार भारतीय सेना में कार्यरत गोरखा सैनिक और उनके परिवारों की रोज़ी-रोटी चलाने में हिंदी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी वजह से पश्चिमी तथा पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों के गाँव-गाँव में हिंदी की मशाल प्रज्ज्वलित है। नेपाल में 1 लाख 25 हज़ार अवकाश प्राप्त गोरखा सैनिक हैं, जिन्हें भारत सरकार पेंशन देती है। सैकड़ों वर्षों की परम्परा के अनुसार पुश्त-दर-पुश्त, भारतीय फ़ौज में सेवारत इन गोर्खाली जवानों के परिवारों में हिंदी दूसरी मातृभाषा बन गई है। उसी प्रकार लाखों भारतीय भी नेपाली भाषा की अनभिज्ञता के बावजूद, हिंदी की वजह से नेपाल में तरह-तरह के व्यापार-व्यवसाय में संलग्न हैं।

पर्यटन क्षेत्र में हिंदी

नेपाल की राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा स्रोत पर्यटन है। प्रतिवर्ष नेपाल भ्रमण पर आने वाले विदेशी पर्यटकों में सबसे ज़्यादा संख्या भारतीयों की होती है। दोनों ही देशों के बीच धार्मिक पर्यटन की भी प्राचीन परम्परा है। वर्तमान में भारत के कुछ राज्यों की नीति के अंतर्गत नेपाल के धार्मिक पर्यटन हेतु, अपने नागरिकों को आर्थिक सुविधा उपलब्ध कराने की नीति के कारण नेपाल के धार्मिक स्थलों का भ्रमण करने वालों की तादाद में काफ़ी बढ़ोतरी हुई है। उसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि हिंदी पूरे नेपाल में समझी जाने वाली भाषा है। नेपाल के किसी भी क्षेत्र के भ्रमण या पर्यटन में भाषागत कठिनाई नहीं आती है। इस संदर्भ में हिंदी की उपयोगिता और महत्त्व को समझा जा सकता है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में हिंदी

नेपाल एवं भारत के बीच आर्थिक और व्यावसायिक संबंध ही नहीं है, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा धार्मिक संबंध भी उतना ही गहरा और व्यापक है। बिहार-उत्तर प्रदेश की हज़ारों बेटियाँ नेपाल में ब्याही जाती हैं। ससुराल में उनके जीवन को सहज तथा सरल बनाने में हिंदी भाषा का ज्ञान तथा बोली का ही उपयोग होता है। वही स्थिति नेपाल से ब्याह कर भारत के विभिन्न राज्यों में जानेवाली नेपाली महिलाओं का भी है।

नेपाल तराई हो या पहाड़, सामाजिक-सांस्कृतिक समारोहों में हिंदी फ़िल्मी गीत-संगीत पर थिरकना आम बात है। हिंदी फ़िल्म तथा हिंदी टेली सीरियल देखे बिना, आम नेपाली का लंच और डिनर खत्म ही नहीं होता। होटल, रेस्टोरेंट, पार्टी पैलेस, सार्वजनिक यातायात शादी-विवाह, धार्मिक-सांस्कृतिक उत्सव, राजनीतिक जलसों आदि में बजने वाले हिंदी भाषा के भजनों, गीतों, गज़लों तथा चुटकुलों की लोकप्रियता तथा उपयोगिता यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि हिंदी की संभावनाएँ व्यापक हैं और क्षेत्र विस्तृत।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नेपाल में हिंदी जिस अवस्था से गुज़र रही है, उसका वर्तमान तथा भविष्य दोनों उज्ज्वल तथा संभावनाओं से भरा हुआ है।

इसलिए यह अत्यंत ज़रूरी है कि हिंदी भाषा को सहज पठन-पाठन के लिए उपयुक्त वातावरण दिया जाए। पूर्व की तरह हिंदी को भी शिक्षा का माध्यम बनाने की ठोस पहल के रूप में जिस प्रकार अंग्रेज़ी को सभी स्कूलों में मान्यता दी गई है, उसी प्रकार हिंदी को भी स्थान मिले।

बेरोज़गारी की समस्या से जूझ रहे नेपाली युवाओं के लिए यह क्षेत्र रोज़गार की व्यापक संभावना पैदा कर सकता है, इसमें कोई शक नहीं। लेखकों को पर्याप्त प्रोत्साहन तथा सहयोग की आवश्यकता है। विश्व की हिंदी सेवी संस्थाओं से नेपाल के सर्जकों को सहयोग की पूरी आशा है।

समय का तकाज़ा है कि हिंदी भाषा के महत्त्व, योगदान तथा उसकी उपयोगिता को देखते हुए, नेपाल में भी हिंदी को सभी पक्षों द्वारा सहज रूप से अपनाने की पहल की जाए, क्योंकि इक्कीसवीं सदी में हिंदी अपनी गति में देशों तथा महादेशों में समाहित हो रही है। यह इसका उज्ज्वल पक्ष है। आज ज़रूरत है हिंदी भाषा की आवश्यकता तथा उपयोगिता के मद्देनज़र, इसके प्रति नकारात्मक मानसिकता में परिवर्तन लाया जाए।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन कि "हिंदी एक दिन नवीन तेज लेकर संसार के रंगमंच पर उतरेगी। इसमें छल हृदय का स्वर प्रधान नहीं होगा। दूसरों को हीन बनाने की तिकड़म नहीं होगी। फूट डालने की नीति नहीं होगी। निस्संदेह इसमें शान्ति और सौजन्य की सुगंध होगी और मनुष्य मात्र के प्रति सौहार्द्र का स्वर प्रधान होगा।'' शीघ्र ही सार्थक होगा, यह विश्वास है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नेपाल के हिंदी लेखक - डॉ. रामदयाल राकेश
2. हिंदी विकास एक परिचर्चा - रुद्र नारायण झा
3. द पब्लिक, अंक आषाढ़ 2077, 9 जुलाई 2020
4. नेपाल में हिंदी : अतीत, वर्तमान और संभावनाएँ कुमार सच्चितानन्द सिंह

sinhaveena51@gmail.com

thepublicmonthly@yahoo.com

हिंदी : आज के प्रश्न

27. चिराग तले अंधेरा - श्री जनार्दन अग्रवाल

28. इंटरनेट पर हिंदी कम है, तो क्यों है? - श्रीमती सविता तिवारी

29. भारत में हिंदी भाषा की डबिंग ने खोले हैं विश्व सिनेमा कारोबार के नए आयाम - श्री महेश कुमार मिश्रा

30. डिजिटल युग में हिंदी की 'टेढ़ी चाल' बनाम हिंग्लिश - डॉ. कमलेश गोगिया

चिराग तले अंधेरा

- श्री जनार्दन अग्रवाल
लंदन, यू.के.

हम विश्व में हिंदी की दशा पर क्या विचार करें? भारत में हिंदी की दुर्दशा पर रोना आता है। चिराग तले अंधेरा! अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत हम पर बुरी तरह से हावी हो चुकी हैं। इसके लिए इतिहास में जाना आवश्यक है। लॉर्ड मेकॉले ठीक ही कहा था। कितना दुष्ट इरादा था।

जैसा कि आप जानते हैं, अपने उस प्रसिद्ध पत्र में उसने लिखा है - "मेरे द्वारा भारत में परिचायित इस शिक्षा व्यवस्था का प्रभाव तुम पचास वर्षों के बाद देखना जबकि त्वचा और भूषा से भारतीय दिखाई देने वाले भारतीय जन आत्मा से पूर्णतः अंग्रेज़ हो जाएँगे।"

उसकी भविष्यवाणी कितनी सही साबित हुई।

2 फ़रवरी, 1835 को लॉर्ड मेकॉले, तथाकथित इतिहासकार और MP ने भारत की भावी शिक्षा प्रणाली के बारे में जो कहा था, उसका एक नमूना नीचे देखिए उन्हीं के शब्दों में -

"A single shelf of good European library was worth the whole native literature of India and Arabia".

भारत की मातृभाषाओं को मेकॉले ने dialects की संज्ञा दी। "...dialects commonly spoken among the natives of India contain neither literary nor scientific information and are so poor and rude."

अंग्रेज़ी ही भारत की शिक्षा का एकमात्र माध्यम होना चाहिए। इसके पक्ष में उसने यह दलील दी - "In India, English is the language spoken by the ruling class. It is spoken by the higher class of natives..." ज़रा मेकॉले का साहस तो देखिए! आगे कहा - "It was the duty of England to teach Indians what was good for their health, and not what was palatable to their taste".

इस आधार पर 7 मार्च, 1835 को भारत में ब्रिटिश सरकार ने निम्न प्रस्तावों पर विचार करना चाहा। उनमें से पहला प्रस्ताव इस प्रकार है - "His Lordship in Council is of opinion that the great object of the British government ought to be the promotion of European literature and Science among the natives of India and that all the funds appropriated for the purposes of education would be best employed on English education alone".

लगभग बीस वर्ष बाद स्वाभिमान से ओतप्रोत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी भाषा के प्रति जो कहा, उससे आप शायद परिचित होंगे -

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को सूल।।"

ज़रा सोचिए, भारत को स्वतंत्र हुए 64 वर्ष बीत चुके हैं। अंग्रेज़ तो भारत छोड़कर चल दिए, पर अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत यहीं छोड़ गए। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी अभी तक हम गुलाम हैं। अंग्रेज़ी तो बहुत गहराई तक घुस गयी है और इसके पक्ष में कितनी ही दलीलें दी जाती हैं। अंग्रेज़ियत हमसे अभी भी गुलामी कराए, यह कहाँ का न्याय है?

अंग्रेज़ियत या Englishness के कुछ उदाहरण देखिए

हाल में भारतवर्ष के कानपुर शहर में जब शादी के सिलसिले में लड़की का परिवार लड़के के परिवार से मिला, तब लड़के की माँ ने लड़की से पूछ ही लिया,

"कन्वेंट एजुकेटड हो?" यह नोट करने की बात है कि लड़के का परिवार स्वयं कन्वेंट एजुकेटड नहीं है। पर उन्हें कन्वेंट एजुकेटड बहू चाहिए।

लन्दन में हमारे घर के पास एक सिन्धीभाषी भारतीय परिवार रहता है। एक दिन बोले "मेरे बेटे का नाम जानी है, अपनी बेटी को भी एक अच्छा-सा अंग्रेज़ी नाम देना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता हूँ कि बड़ी होकर उसमें कोई हीन भावना आ जाए।" भाई बहन बड़े हो गए हैं। उन्हें जानी और पामेला के नाम से जाना जाता है। क्या उनका व्यक्तित्व कभी निखर पाएगा?

अंग्रेज़ी के महत्त्व पर ज़ोर - कितना सच? कितना झूठ?

अंग्रेज़ी के पक्ष में जो लोग हैं, वे यह कहते सुनाई पड़ते हैं कि अंग्रेज़ी भारत और विदेश में नौकरी पाने के लिए आवश्यक है। इसके अलावा यह भी कहा जाता है कि यह एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है। उच्च शिक्षा की पुस्तकें अंग्रेज़ी में ही हैं। क्या आई.ए.एस., आई.आई.टी., प्री मेडिकल टेस्ट आदि का कल्याण केवल अंग्रेज़ी के माध्यम से ही हो सकता है? इन दलीलों में बहुत कुछ सच्चाई है, पर काफ़ी कुछ भ्रम भी है। क्या विदेश में नौकरी पाने के लिए यह ज़रूरी है कि आप अपनी भाषा को हेय दृष्टि से देखें? फ़्रांस, रूस, जर्मनी, स्पेन आदि कितने ही देश हैं, जहाँ आपस में लोग अपनी ज़ुबान में ही बात करते हैं। अपनी भाषा को वे कितने सम्मान से देखते हैं। चीन और जापान में वही स्थिति है। हाँ, यह सत्य है कि यदि इन देशों को दूसरे देशों से व्यापार करना हो, तो वे अंग्रेज़ी का ही सहारा लेते हैं। पर अपनी भाषा का गला घोंट कर नहीं। जहाँ तक आई.ए.एस., आई.आई.टी., प्री मेडिकल टेस्ट आदि का प्रश्न है, इन प्रतियोगिताओं में भी थोड़ी-सी अंग्रेज़ी, जो अच्छे ढंग से पढ़ायी गयी हो, पर्याप्त होगी। बहुत अधिक अंग्रेज़ी के पीछे भागने की आवश्यकता नहीं है। एक उदाहरण देखिए -

1954 में गुरुकुल पद्धति से बने राँची (झारखण्ड) के पास एक स्कूल खुला 'नेतरहाट पब्लिक स्कूल' के नाम से। वहाँ हिंदी माध्यम से ही पढ़ाई होती है। बहुत कम अंग्रेज़ी का सहारा लिया जाता है। वहाँ के विद्यार्थी सर्वाधिक शिखरस्थ (toppers) रहे हैं। उन्होंने विज्ञान, प्रशासन और तकनीकी आदि क्षेत्रों में सर्वाधिक नाम कमाया है। यह उस सोच पर तमाचा है, जो अंग्रेज़ी को ही दिव्य भाषा मानते हैं।

अपने देश में ही हिंदी की जब यह उपेक्षा है, तब विश्व में कैसे सम्मानित हो सकती है? सयुंक्त राष्ट्र संघ में छह आधिकारिक भाषाएँ निर्धारित की गई हैं। अरबी, चीनी, अंग्रेज़ी, फ़्रेंच, रूसी, और स्पेनिश। आपको मैं बताना चाहता हूँ कि विश्व में अरबी बोलने वाले केवल 23 करोड़ लोग हैं। जब कि भारत में हिंदी बोलनेवाले 90 करोड़ हैं।

प्रश्नावली (Questionnaire)

मैंने एक प्रश्नावली तैयार की भारतवर्ष के स्कूलों के लिए। अपने मित्रों और रिश्तेदारों की सहायता से अनेक प्रान्तों के भिन्न-भिन्न स्कूलों से उत्तर मिले। जिन विद्यार्थियों ने उत्तर भेजे, उनकी उम्र 6 से 15 है। प्रश्नोत्तरों की एक झलक देखिए।

Q) Were your parents interviewed for your admission?

75 प्रतिशत विद्यार्थियों ने लिखा, हाँ, उनके माता-पिताओं का भी इंटरव्यू हुआ था। मैंने एक लड़की के पिता जो अपनी 15 वर्ष की लड़की के प्रवेश के सिलसिले में किसी स्कूल में गए थे, से पूछताछ की। बड़े गर्व से उन्होंने बताया, हाँ यह तो बहुत आवश्यक है। स्कूलवालों को कैसे पता लगेगा कि लड़की के माँ-बाप कैसी अंग्रेज़ी बोलते हैं?

Q) Medium of instruction?

सभी प्राइवेट स्कूलों में शतप्रतिशत अंग्रेज़ी। कई स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई भी अंग्रेज़ी में।

यहाँ गांधी जी के कुछ निज अनुभवों को उद्धृत करना सटीक जान पड़ता है। 1916 में महात्मा गांधी ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के समय जहाँ कि लॉर्ड हार्डिंज भी बैठे हुए थे कहा, प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी, जिसने अपनी पढ़ाई अंग्रेज़ी माध्यम से की है, उसने अपने कम-से-कम 6 वर्ष नष्ट कर दिए हैं। गांधी जी ने आगे कहा, जब वे हाई स्कूल के चौथे वर्ष में थे, तब अंग्रेज़ी का आतंक बहुत अधिक फैल गया था। सभी विषयों जैसे गणित, रेखागणित, रसायनशास्त्र, बीजगणित, इतिहास आदि की पढ़ाई अंग्रेज़ी भाषा से ही होती थी, न कि अपनी भाषा गुजराती में। यदि किसी लड़के ने गुजराती बोलने की कोशिश की, तो उसे सज़ा मिली। उन्होंने आगे कहा कि यह कहाँ का न्याय है कि केवल 5 प्रतिशत अंग्रेज़ी बोलने वाले 95 प्रतिशत भारतीयों पर राज्य करें?

Q) Use of Hindi in conversation at school - freely allowed, restricted or not allowed at all?

अधिकतर विद्यार्थियों ने लिखा कि सभी क्षेत्रों में पाबन्दी है। लगभग 80 प्रतिशत विद्यार्थियों ने हिंदीवर्जित क्षेत्रों के नाम गिनाए हैं। जैसे खेल के मैदान, बरामदा, भोजनकक्ष इत्यादि। हिंदी की कक्षा के अलावा अन्य कक्षाओं में हिंदी बोलना सख़्त मना है। बच्चों के माँ-बाप भी यदि किसी काम से विद्यालय आए हैं, तो उन्हें भी स्वभाषा नहीं, अंग्रेज़ी ही बोलनी होगी, अपने बच्चों से भी। एक स्कूल की अध्यापिका ने जो लिखा ज़रा ग़ौर कीजिए -

"The teachers are supposed to pretend that they don't know Hindi at all while any interaction with the parents and if they have to speak in Hindi then they have to show that they are facing a lot of difficulty in speaking Hindi (order by higher authorities)."

"We have been told to use heavy terms during anchoring that are not understandable to the parents."

मुझे बताया गया कि जब कभी स्कूल में कोई उत्सव होता है, तो जानबूझ कर कठिन से कठिन अंग्रेज़ी का प्रयोग किया जाता है, यह जताने के लिए कि हमारा स्कूल कितना श्रेष्ठ है। उसी स्कूल के किसी उत्सव में जब किसी हिंदी अध्यापक ने आए हुए मेहमानों के स्वागत में "शुभ प्रभात" कहा, तो वहाँ के अधिकारियों ने उसे खरी-खोटी सुनाई। विद्यार्थी को चाहे चोट लगे या किसी हादसे से बहुत दुखी हो, दुख-सुख, शिकायत सभी कुछ अंग्रेज़ी में ही व्यक्त करना होगा, अपनी मातृभाषा हिंदी में नहीं। कितनी वेदनापूर्ण बात है यह। विद्यार्थियों को मानसिक रूप से कितनी पीड़ा सहनी पड़ती होगी।

Q) Are there any sanctions/ punishments for breaking the above rule? What are they?

स्कूलों में दंड इस प्रकार से दिए जाते हैं :

अर्थ-दंड (जुर्माना), दंड-चार्ट में नाम, ऑफ़िस के बाहर या कक्षा से बाहर खड़े रहो, सप्ताह भर के लिए स्पोर्ट पर पाबंदी, माँ-बाप के पास शिकायती पत्र, अपने मित्रों या दूसरे विद्यार्थियों से बोलने पर प्रतिबंध आदि-आदि। मैंने हिसाब लगाया कि 98% (अट्ठानबे प्रतिशत) स्कूलों में ऐसी पाबन्दी है।

Q) How will the teacher find out if you have broken the above rule?

(विद्यार्थियों के ही शब्दों में) - cameras, people constantly monitoring, spot checks, class monitors for this purpose etc.

Q) Have the reasons behind such restrictions ever been explained to you?

कई प्रकार के उत्तर मिले :

“स्पष्ट रूप से कभी नहीं बताया गया”, “English is a global language”, “English gives confi-

dence, for English improvement etc."

प्रवास में हिंदी की स्थिति

सत्तर और अस्सी के दशक में इस देश में भारत से आने वाले लोगों में व्यावसायिक व पढ़े-लिखे लोगों की ही अधिकांशता रही है। उनकी सोच भी कुछ दासत्वधन्य भारत जैसी ही थी। यह नारा बहुत दिनों तक चलता रहा और बहुत कुछ अभी भी है, 'अंग्रेज़ी का अधिक-से-अधिक प्रयोग करना चाहिए, हिंदी तो अपनी भाषा है, बिना प्रयास के भी आ ही जाएगी'। यह मानसिकता माँ-बाप के मस्तिष्क से जाती ही नहीं, चाहे इस क्षेत्र में कितना ही शोध-कार्य न हो जाए।

अंग्रेज़ी, हिंदी दोनों साथ-साथ पढ़ने से बच्चा भ्रमित हो जाएगा, यह पूर्णतया काल्पनिक है। द्विभाषी बच्चा प्रारंम्भ से ही प्रयोग में दोनों भाषाओं को आसानी से अलग कर लेता है। जिस प्रकार बच्चा स्वाभाविक रूप से चलना सीख जाता है, उसी प्रकार से बच्चा बिना किसी ज़ोर या प्रयास के दोनों भाषाओं का ज्ञान हासिल कर लेता है। बच्चों को तुरंत इस बात का आभास हो जाएगा कि परिवार और समाज किस भाषा को किस प्रकार आँकता है, मूल्यांकन करता है, किस भावना और सम्मान से देखता है। (Antonella Sorace - from 'Bilingualism Matters').

स्कूल के अध्यापक भी जर्मन, फ़्रेंच, और स्पेनिश को 'आधुनिक भाषाओं' की श्रेणी में रखते हैं। विद्यालय में तो जर्मन, फ़्रेंच के लिए प्रशिक्षित अध्यापक आधुनिक ढंग से जर्मन, फ़्रेंच पढ़ाते थे और घर में माँ 'क' से 'कबूतर', 'ख' से 'खरगोश' उबाऊ ढंग से पढ़ाया करती थी।

शिक्षानीति निर्धारकों की ओर से हिंदी के प्रति इस सौतेलेपन ने बच्चे के मस्तिष्क में यह बैठा दिया कि हिंदी एक सेकेंड क्लास भाषा है। जिस भाषा के प्रति आदर की भावना न भरी गयी हो, विद्यार्थी उसे कैसे सीख पाएगा। यदि दैवयोग से किसी स्कूल में कोई हिंदी बोलने वाला अध्यापक मिल भी गया, तो वह अपने हिंदी बोलने वाले विद्यार्थी से केवल अंग्रेज़ी में ही बात करना पसंद करेगा। इसके विपरीत टूटी-फूटी फ़्रेंच बोलने वाला अध्यापक भी, एक फ़्रेंच बोलने वाले बच्चे से फ़्रेंच में बड़ी शान से बात करेगा।

एक और दृष्टिकोण

बच्चे के द्वारा अपने साथ लायी गयी उसकी मातृभाषा एक मूल्यवान धरोहर है और देश की सम्पदा में वृद्धि। उसकी मातृभाषा की रक्षा की जाए, न कि उसे लुप्त होने दिया जाए। उसे सुरक्षित रखना तो बच्चे का अधिकार है और शिक्षाधिकारियों का कर्त्तव्य। नहीं तो बच्चे के मानवीय अधिकारों का यह हनन होगा (Skutnabb-Kangas, 2000)।

शोध द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जा चुका है कि बच्चे का पूर्ण व्यक्तित्व निखारने, उसके भाषा-विज्ञान और शैक्षिक विकास के लिए उसकी मातृभाषा को मान्यता देनी ही पड़ेगी। जिन बच्चों की मातृभाषा की नींव मज़बूत होती है, जो बच्चे अपनी दादी, दादा, नानी, नाना से प्यार से कहानियाँ सुनते हैं, उन्हें अभिव्यक्ति के लिए तरह-तरह के मुहावरों और शब्दावली की समृद्धि के साथ-साथ दूसरी भाषाओं की भी पकड़ और उसका व्याकरणबोध सरल और रुचिकर हो जाता है।

यूके में हिंदी अध्यापन की स्थिति

यहाँ अध्यापन की स्थिति तो दयनीय ही है। स्कूल के अधिकारियों की ओर से अंगूठा दिखाया जा चुका है। हिंदी की कक्षाओं का स्थान शाम को या सप्ताहान्त में कम्यूनिटी सेंटर या मन्दिरों में ही हो गया है। अध्यापक चाहे अपने साथ जो कुछ भी पढ़ाई से सम्बद्ध सामग्री ले आएँ, पर घूमफिरकर काले या सफ़ेद बोर्ड पर 'क' से 'कबूतर' और 'रंगों के नाम' वाली ही पढ़ाई की जाती है। यदि हिंदी पढ़ाई के लिए सॉफ़्टवेयर है भी, तो कंप्यूटर की सुविधा नहीं है। संदर्भ में ही, विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से बिना किसी विशेष प्रयास के बहुत कुछ सीख लेगा।

अच्छा हो, अध्यापक जो कुछ पढ़ा रहे हैं उसके साथ-साथ छोटे-मोटे हिंदी नाटक, शॉपिंग, साधारण वैज्ञानिक प्रयोग, सैर-सपाटे आदि शामिल कर दें। बहुत रोक-टोक, एक के बाद एक गलतियाँ निकालने से बच्चा हताश हो सकता है।

अंत में

हिंदी का प्रयोग कम और अनावश्यक अंग्रेज़ी का प्रयोग अधिक, यह सोच सभी दृष्टिकोणों से हानिकारक है। जो गुलामी की मानसिकता लाती है, वह स्वामिनी कैसे बन सकती है?

शायद आपमें से कई डॉ. फ़ादर कामिल बुल्के के नाम से परिचित होंगे। वे बेल्जियम से भारत आकार मृत्युपर्यंत हिंदी, तुलसी और वाल्मीकि के भक्त रहे। 1950 मे राँची के सेंट ज़ेवियर्स कॉलिज में वे हिंदी और संस्कृत के विभागाध्यक्ष बने। उनके ये शब्द मेरे मस्तिष्क में हमेशा गूँजते हैं :

"संस्कृत महारानी, हिंदी बहूरानी और अंग्रेज़ी नौकरानी है।"
“अंग्रेज़ी हिंदी की चेरी बन सकती है, स्वामिनी नहीं।”

बच्चों को गलत सूचना देना, उन्हें भ्रमित करना अपराध है। अभियान चलाना होगा। इसके विरोध में कानून बनाना होगा। कानून का उल्लंघन करने वालों को उचित दण्ड मिलना चाहिए। क्यूमिन्स ने सच कहा है, "To reject a child's language in the school is to reject the child." (Cummins)

बचपन से घर के वातावरण में सीखे गए सांस्कृतिक और भाषा-विज्ञान के अनुभव, बच्चों के भावी ज्ञान की ज़बरदस्त नींव है। इस नींव पर हमें इमारत बनानी है न कि इसे ध्वस्त करना है।

संस्कृत से विकसित सभी भारतीय भाषाएँ, विशेषकर हिंदी मेरी अपनी माँ के समान है। अपनी माँ गुणहीना, दरिद्र, कुरूप होती, तो भी प्राणप्रिया होती है। लेकिन यह तो लालित्य और साहित्यसमृद्धि की महिमा से मंडित अद्वितीया है। प्यारी तो है ही विश्व में गौरव भी देने की क्षमता रखती है। हिंदी के गरिमामय विद्वानों की कमी नहीं। पर उससे काम नहीं बनेगा।

"बड़ा भया तो क्या भया जैसे ताड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।"

जनसामान्य को यदि हम हिंदी का गौरव अनुभव करा सकें, तो हमारा जीवन सार्थक होगा।

ऋग्वेद का यह मंत्र संदेश भी ध्यान देने योग्य है, "आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः" (Let noble thoughts come to us from every side).

भारतेन्दु जी ने कितनी सुन्दर बात कही थी,

"विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु, भाषा माहि प्रचार।।"

agrawaljan@gmail.com

इंटरनेट पर हिंदी कम है, तो क्यों है?

- श्रीमती सविता तिवारी
मॉरीशस

हिंदी विश्व में बोली जानी वाली तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। कुछ विद्वान या आँकड़े इसे चौथे स्थान पर भी बताते हैं। लेकिन प्रमुख बात है कि हिंदी विश्व की शीर्ष भाषाओं में से एक है। यह हिंदी समाज के लिए गर्व करने वाली बात है। वहीं यदि 'इंटरनेट पर हिंदी' की स्थिति देखेंगे, तो हिंदी के विद्वानों के पैरों तले ज़मीन खिसक जाएगी। मैं आपको इंटरनेट पर हिंदी की स्थिति बताऊँ, उससे पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि विश्व की प्रमुख भाषाओं के आँकड़ों की विवेचना करना अपने आप में एक जटिल कार्य है। वहीं 'इंटरनेट पर सर्वाधिक उपयोग में लाई जाने वाली भाषा' के आँकड़ों का विवेचन और भी जटिल प्रक्रिया है। कारण यह है कि अलग-अलग एजेंसियाँ अलग-अलग आँकड़े उपलब्ध कराती हैं। साथ ही, विश्व भर में प्रतिदिन छप रही रिपोर्ट और सर्वे को आजकल संदिग्ध नज़र से देखा जाता है और उनकी विश्वसनीयता एवं पक्षपात रहित होने में संदेह होता है, पर रिपोर्ट एवं सर्वे की नीतियाँ बनाने में उपयोगिता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

तो अधिक अनिश्चितता (सस्पेंस) ना रखते हुए बताते हैं कि 'इंटरनेट पर उपयोग में लाई जाने वाली भाषाओं' की लिस्ट में हिंदी का स्थान 32वें नम्बर पर है। कुछ आँकड़े 37 भी बताते हैं। लेकिन अमूमन सभी एजेन्सियाँ हिंदी को तीस के आगे का ही स्थान देती हैं। इस स्थिति के कारणों की पड़ताल करें, उससे पहले 'विश्व में इंटरनेट की स्थिति' एवं 'विश्व में भाषाओं की स्थिति' के आँकड़ों पर नज़र डालेंगे, तो तस्वीर अधिक साफ़ नज़र आएगी।

विश्व में इंटरनेट की स्थिति

जो भी थोड़ी बहुत तकनीक और विशेष रूप से कम्प्यूटर की दुनिया में दिलचस्पी रखते हैं, वे 'मैरी-मिकर इंटरनेट ट्रैंड्स रिपोर्ट' के बारे में अवश्य जानते होंगे। मैरी-मिकर रिपोर्ट के मुख्य आँकड़ों से पता चलता है कि दुनिया भर में जनवरी 2021 तक क़रीब 4.5 बिलियन सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ता थे। वर्तमान में पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों की संख्या लगभग 8 बिलियन है, इसका मतलब है वैश्विक आबादी की क़रीब 55 प्रतिशत आबादी इंटरनेट के उपयोग के माध्यम से परस्पर जुड़ी हुई है। कुछ लोगों के लिए यह बड़े आश्चर्य की बात है कि 21वीं सदी में विश्व की 45 प्रतिशत आबादी बिना इंटरनेट जैसी सामान्य सुविधा के जीवन यापन कर रही है।

4.5 बिलियन सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में से 92 प्रतिशत मोबाइल फ़ोन के माध्यम से इंटरनेट का उपयोग करते हैं।

चीन, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के मामले में अन्य सभी देशों से आगे हैं। चीन में 854 मिलियन से अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं। भारत में लगभग 560 मिलियन उपयोगकर्ता हैं। हालाँकि दोनों देशों में अभी भी आबादी का बड़ा हिस्सा ऑफ़लाइन है।

विश्व में भाषाओं की स्थिति

उपरोक्त आँकड़े हमें यह बताते हैं कि 'विश्व में इंटरनेट की स्थिति' कैसी है। अब आते हैं एक अन्य आँकड़े पर जो हमें बताएगा कि 'विश्वभर में बोली जाने वाली भाषाओं की स्थिति' कैसी है। इन आँकड़ों का तकनीक से कोई लेना-देना नहीं है। पर आम आदमी और उसके द्वारा

उपयोग में लाई जा रही भाषा से अवश्य है।

आज की तेज़ी से बढ़ती वैश्वीकृत दुनिया में, संचार का एक साझा साधन या कहें कि एक अंतरराष्ट्रीय भाषा पहले से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। और अंग्रेज़ी संचार भाषा के माध्यम के रूप में उभर कर आई है। इसलिए दुनिया भर में 1.1 बिलियन से अधिक लोगों द्वारा उपयोग में लाई जा रही भाषा अंग्रेज़ी इस मामले में सबसे ऊपरी पायदान पर है। इसके एक कदम पीछे है - चीन की भाषा मंदारिन। आगे बढ़ने से पहले दुनिया भर में सबसे अधिक बोली जाने वाली शीर्ष 10 भाषाओं पर एक नज़र डालते हैं :

अंग्रेज़ी	- 1.11 बिलियन
मंदारिन	- 1.10 बिलियन
हिंदी	- 615 मिलियन
स्पेनिश	- 534 मिलियन
फ़्रेंच	- 280 मिलियन
अरबी	- 274 मिलियन
बंगाली	- 265 मिलियन
रूसी	- 258 मिलियन
पोर्चूगीज़	- 232 मिलियन
इंडोनेशियन	- 199 मिलियन

अंग्रेज़ी का व्यापक भौगोलिक वितरण है। अंग्रेज़ी को विश्व के 67 देशों में आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है।

इसके विपरीत, मंदारिन चीनी को केवल पाँच देशों में आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है, जिनमें होंगकोंग, चीन, मकाओ, ताइवान और सिंगापुर शामिल है।

वहीं तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी भारत के अलावा केवल फ़िजी की आधिकारिक भाषा है।

उपरोक्त आँकड़ों से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि विश्वभर की भाषाओं में हिंदी तीसरे स्थान पर गौरव से खड़ी है।

इंटरनेट पर भाषाओं की स्थिति

आज के समय में इसमें कोई संदेह नहीं कि अंग्रेज़ी सबसे लोकप्रिय ऑनलाइन भाषा है, जो दुनिया भर के इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के क़रीब 25 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती है। चीनी अपने 19 प्रतिशत हिस्से के साथ दूसरे स्थान पर है। इन दो भाषाओं का आँकड़ा विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के आँकड़े से मेल खाता है। लेकिन जब हम तीसरे स्थान पर जाते हैं, तो तस्वीर एकदम पलट जाती है। तीसरे नम्बर की प्रसिद्ध भाषा हिंदी का टॉप 10, 20 या टॉप 30 में भी कहीं कोई नामोनिशान नज़र नहीं आता है।

अंग्रेज़ी	- 25.9
चीनी	- 19.4
स्पेनिश	- 7.9
अरेबिक	- 5.2
इंडोनेशियन-मलेशियन	- 4.3
पोर्चूगीज़	- 3.7
फ़्रेंच	- 3.3
जापानी	- 2.6
रूसी	- 2.5
जर्मन	- 2
बाकी	- 23.1

(प्रति व्यक्ति केवल एक भाषा आँकी गई है।)

यह आँकड़ा चकित करने वाला है कि विश्वभर में बोली जाने वाली भाषाओं में तीसरे नम्बर की भाषा इंटरनेट पर इतनी पिछड़ कैसे गई है? तीसरे नम्बर से सीधे 32वें स्थान पर चली गई। 32वें स्थान पर आने का मतलब है कि इंटरनेट पर यदि 100 शब्द लिखे जा रहे हैं, तो उनमें हिंदी का हिस्सा 0.1 प्रतिशत से भी कम है। यानी की सौ में से एक शब्द भी नहीं। हज़ार में से एक हो सकता है।

यह गंभीर स्थिति है, जो समस्त हिंदी समाज का ध्यान माँगती है। इतने कार्यक्रम, इतनी सारी सभाएँ, इतनी वेबिनार, सेमिनार और शोध सब पर सवाल खड़ा करती है। और इस स्थिति के कारणों के विवेचन की माँग करती है। और विवेचन के बाद उनके उपाय और उनका क्रियान्वयन करने के पश्चात् ही दम लेने की माँग करती है।

इस स्थिति का विवेचन करें, उससे पूर्व इसके अन्य पक्षों पर नज़र डाल लेना आवश्यक है।

इस स्थिति का दूसरा पक्ष यह है कि उपरोक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट नहीं है कि यह भाषा की बात कर रहे हैं या लिपी की। क्योंकि इंटरनेट पर हिंदी भाषा लिखते समय एक बड़ा वर्ग रोमन कीबोर्ड का इस्तेमाल करता है। इसलिए बहुत संभावना है कि आँकड़ों को इकट्ठा करते समय रोमन में लिखा हिंदी डेटा भी अंग्रेज़ी के खाते में चला गया हो।

रोमन कीबोर्ड की सीमाओं के बावजूद हर वर्ग के लोग इसके सुविधाजनक होने का लाभ उठाते नज़र आते हैं। एक सास ने अपनी लेखक बहु को रोमन लिपी में हिंदी मैसेज भेजा कि 'तुम्हारी भाषा बहुत सादी है' और बहु ने उसे पढ़ा 'तुम्हारी भाषा बहुत सड़ी है'। तो इस तरह की भयंकर स्थितियाँ पैदा करने में सक्षम रोमन कीबोर्ड सुविधा के कारण लोगों में चहेता बना हुआ है। सादी शब्द रोमन में लिखने के लिए चार बटन दबाने होते हैं, जबकि सादी शब्द देवनागरी में लिखने के लिए फ़ोन पर 6 बटन दबाने होते हैं। सादी शब्द कम्प्यूटर पर इनस्क्रिपट में टाइप करें, तो चार बटनों से काम चल जाता है। लेकिन मोबाइल का देवनागरी कीबोर्ड आज भी रोमन के मुकाबले की सुविधा नहीं देता।

देवनागरी कीबोर्ड में मात्राएँ लिखने के लिए शिफ़्ट बटन दबाना पड़ता है। जबकि अंग्रेज़ी के सारे वॉवल्स एवं कॉन्सोनेंट कीबोर्ड के एक फ़्रेम में आ जाते हैं। माना देवनागरी में अधिक अक्षर हैं, पर इसके मुताबिक बड़ा कीबोर्ड निर्मित किया जाए, जिसमें मात्राओं को कीबोर्ड पर प्रदर्शित करने के लिए शिफ़्ट बटन ना दबाना पड़े, तो मुझे लगता है यह अधिक सुविधाजनक हो सकता है। बाकी इस पर अधिक शोध करना तकनीकी समुदाय का काम है। हम बतौर लेखक अपनी असुविधा बयान कर सकते हैं। साथ ही बड़ी कम्पनियों को भी अपने लैपटॉप एवं डेस्कटॉप हिंदी अक्षर प्रिंटेड कीबोर्ड के साथ बाज़ार में उतारने चाहिए। बजाय अंग्रेज़ी अक्षरों के। नहीं तो विश्वभर के हिंदी राजभाषा अधिकारियों के कीबोर्ड तक अंग्रेज़ी अक्षर वाले होते हैं और वे अपनी याद से 'एम' यानी 'स' टाइपिंग करते नज़र आते हैं।

अब बात करते हैं इस स्थिति के तीसरे पक्ष की। इस पक्ष को देखें, तो पता चलता है कि इंटरनेट पर भले ही हिंदी भाषा कम लिखी जा रही हो, पर हिंदी की सामग्री बहुत पढ़ी और देखी जा रही है। विशेषकर भारत में।

वर्ष 2015 में दैनिक भास्कर डिजिटल के सीईओ ज्ञान गुप्ता ने कहा था कि "डीबी कॉर्प के लिए रणनीति बनाते हुए, हमने पाया कि भारतीय उपभोक्ताओं में 400 मिलियन हिंदी भाषी और 70 मिलियन अंग्रेज़ी भाषी हैं। कहने की ज़रूरत नहीं है कि हम आश्वस्त थे कि भारत की जनता हिंदी बोलती है।"

यह हिंदी के पक्ष में बहुत बड़ी बात थी। पिछले 6 सालों में यह बात और अधिक पुख़्ता हुई है कि भारत की जनता हिंदी पढ़ती है और हिंदी देखती है, वह चाहे हिंदी समाचारों की वेबसाइट हो या यूट्यूब पर हिंदी के कुकिंग शो।

साथ ही इसी वर्ष जनवरी में आई गूगल की रिपोर्ट के अनुसार अन्य भाषाओं से हिंदी में ट्रांसलेट करके पढ़ने की प्रवृत्ति में 50 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।

हिंदी समाचार की वेबसाइटों और उनके सोशल मीडिया पेज को अधिक देखा और साझा किया जाता है।

यहाँ इंटरनेट पर हिंदी को लेकर तस्वीर थोड़ी स्पष्ट होती है कि हिंदी पढ़ने और सुनने का बाज़ार बड़ा है, बस हिंदी लिखने में समस्या के चलते यह भाषा इंटरनेट पर पिछड़ी हुई है। यह इस समस्या का प्रमुख कारण है।

एक अन्य कारण यह भी है कि इंटरनेट की इतनी

बड़ी दुनिया में केवल 0.04 प्रतिशत वेबसाइटें ही हिंदी भाषा में हैं। इसका कारण भी तकनीक पर और तकनीकी साक्षरता की कमी पर मढ़ा जा सकता है। क्योंकि हिंदी लेखकों की कुछ तकनीकी शिकायतों में फ़ोंट ग़ायब होने और फ़ॉर्मेटिंग बिगड़ जाने की शिकायतें आम हैं।

दूसरी ओर अंग्रेज़ी की वेबसाइटों का विश्व में हिस्सा प्रतिशत 55 है। यही स्थिति अन्य भारतीय भाषाओं की है। 'गूगल ईयर इन सर्च 2020 : इंडिया फ़ॉर डिटरमाइंड प्रोग्रेस' रिपोर्ट के अनुसार भारत में 90 प्रतिशत इंटरनेट उपयोगकर्ता अपनी स्थानीय भाषा में सामग्री का उपभोग करना पसंद करते हैं।

बावजूद इसके इन भाषाओं की वेबसाइटों का विश्व में अनुपात (बंगाली, हिंदी, मराठी, तमिल, तेलुगु और उर्दू) का 0.1 प्रतिशत से भी कम हैं।

तकनीकी साक्षरता में कमी

इन विसंगतियों का एक कारण कीबोर्ड तो है ही, इसके अलावा हम यदि भारत के इतर अन्य देशों और उनकी भाषाओं की स्थानीय स्थिति पर नज़र डालें, तो पता चलता है कि वहाँ अंग्रेज़ी भाषी बहुत कम है। साथ ही, कई प्रसिद्ध वेबसाइटें और सोशल मीडिया एप्स पर बैन के चलते वहाँ स्थानीय भाषा का बोलबाला रहता है। यह स्थिति प्रमुख रूप से चीन एवं जापान में देखने को मिलती है। वहाँ भी अपनी भाषा में संवाद होता है। साथ ही एक प्रमुख कारण है कि इन दोनों ही देशों में स्थानीय भाषा के कीबोर्ड पर नित नए रिसर्च और एप्प सामने आते रहते हैं, जो स्थानीय भाषा में टाइपिंग को सुविधाजनक बनाते हैं। हिंदी में देवनागरी को लेकर रिसर्च की कमी है, साथ ही तकनीकी साक्षरता में कमी भी इसका एक प्रमुख कारण है। बड़े-बड़े विद्वानों को तकनीक से जूझते देखा जा सकता है। इस दिशा में हिंदी जगत को कार्य करने की महती आवश्यकता है। बड़े-बड़े विद्वानों को एवं हिंदी से जुड़े अधिकारियों को न केवल स्वयं तकनीकी रूप से दक्ष होने की कोशिश करनी चाहिए, बल्कि अपने संस्थान एवं अन्य कर्मचारियों को भी तकनीकी रूप से दक्ष बनाने का प्रयास करना चाहिए।

संभावना

हिंदी एवं स्थानीय भाषाओं की संभावना की स्थिति ऐसी है कि अमाज़ोन से लेकर कैडबरी तक हिंदी भाषा के बाज़ार को भुना रही हैं।

एक अलग से डेटा पर नज़र डालें, तो पता चलता है कि अंग्रेज़ी के वेबपेजों में बढ़ोतरी के प्रतिशत में लगातार गिरावट देखी जा रही है। बढ़ोतरी तो हो रही है, पर अब उसकी रफ़्तार धीमी पड़ रही है। विश्व पटल पर गैर-अंग्रेज़ी वेब पेजों की संख्या तेज़ी से बढ़ रही है।

इंटरनेट पर हिंदी की आपात स्थिति होते हुए भी इस भाषा के सामने संभावनाओं का आकाश है। बस आवश्यकता है कि तकनीकी सहायता लेकर आपदा को अवसर में परिवर्तित किया जाए और हिंदी की स्थिति सुधारी जाए।

7,000 से अधिक भाषाओं के समुद्र में एक भाषा को लेकर स्पष्टता प्राप्त करना कठिन है, पर असंभव नहीं। आवश्यकता है कि सही विवरण प्राप्त कर, शोधपूर्ण तरीके से भाषा को बढ़ावा देने के लिए समझदारी से नीतिगत निर्णय लिए जाएँ। तभी हिंदी भाषा की सौंधी खुशबू विश्वभर में फैल पाएगी और यह जन-जन की भाषा बन पाएगी।

संदर्भ :

1. https://www.statista.com/statistics/617136/digital-population-worldwide/
2. https://www.thinkwithgoogle.com/intl/en-apac/consumer-insights/consumer-trends/hindi-matters-digital-age/
3. https://www.visualcapitalist.com/the-worlds-top-10-most-spoken-languages/

savitapost@gmail.com

भारत में हिंदी भाषा की डबिंग ने खोले हैं विश्व सिनेमा कारोबार के नए आयाम

- श्री महेश कुमार मिश्रा
राजस्थान, भारत

भारतीय हिंदी सिनेमा को अमेरिका के हॉलीवुड की तर्ज पर बॉलीवुड के नाम से जाना जाता है। ल्यूमियर ब्रदर्स के आविष्कार से दुनिया के कई महान शख्सियतों पर गहरा प्रभाव पड़ा और भारत में सिनेमा के पितामह दादा साहब फाल्के भी इससे अछूते नहीं रह पाए। भारत में मूक सिनेमा के सृजन के उपरान्त हिंदी भाषा में सिनेमा की अल्प यात्रा ऐतिहासिक है। हॉलीवुड की तरह भारत का सिनेमा उद्योग भी सबसे पुराने उद्योगों में प्रसिद्ध है। हिंदी के अलावा कई क्षेत्रीय भाषाओं में प्रतिवर्ष लगभग 2000 फ़िल्में भारत में प्रति वर्ष बनती हैं।

आज विश्व में हिंदी भाषा का स्थान दूसरे पायदान पर आता है। कला और मनोरंजन के सशक्त माध्यम के रूप में हिंदी सिनेमा, 136 करोड़ की आबादी वाले देश भारत के साथ विश्व में अपनी पहचान रखता है। साल 1930 में भारतीय हिंदी फ़िल्म वितरण को 6 प्रदेशों में विभक्त किया गया था, जिसमें मुख्यतः बम्बई सर्किट (महाराष्ट्र, दक्षिण गुजरात, कर्नाटक), दिल्ली-यूपी सर्किट (उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल और दिल्ली एनसीआर), पूर्वी पंजाब (पंजाब, हरियाणा और जम्मू-कश्मीर), पूर्वी सर्किट (पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, नेपाल, उड़ीसा और असम), राजस्थान सर्किट (राजस्थान, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और पूर्वी महाराष्ट्र), दक्षिण सर्किट (आंध्र प्रदेश और दक्षिण महाराष्ट्र, मैसूर, बंगलौर, तमिलनाडु) शामिल थे। इसके अलावा विदेशों में फ़िल्मों के वितरण और प्रदर्शन के लिए ओवरसीज़ टेरीटरी (Overseas Territory) भी शामिल की गयी।

महान निर्देशक ख्वाजा अहमद अब्बास की 'धरती के लाल' (1946) भारत के बाहर संयुक्त राष्ट्र रूस (तत्कालीन) में प्रदर्शित हुई पहली फ़िल्म मानी जाती है। पूरे विश्व में 17 भाषाओं में उपशीर्षक (subtitle) के साथ महान निर्देशक महबूब खान की फ़िल्म 'आन' (1952), 28 देशों में प्रदर्शित हुई। इन देशों में यूनाइडेट किंगडम, अमेरिका, फ़्रांस, जापान, रूस आदि कई देश शामिल हैं। इस फ़िल्म ने विदेशों में काफ़ी अच्छा व्यवसाय किया था। करीब 2.5 करोड़ भारतीयों के 110 देशों में फैले होने की वजह से विदेशों में हिंदी सिनेमा में व्यापार का हमेशा से अवसर उपलब्ध रहा है। वर्तमान समय में फ़िल्म उद्योग के विस्तार को देखते हुए इन क्षेत्रों को 11 भागों में विभक्त किया गया है। अरबों रुपये का कारोबार करने वाली फ़िल्मों का प्रदर्शन पूरे भारत में करीब 9,600 सिनेमा घरों में होता है। इसमें भी 6,650 सिंगल स्क्रीन और 2,950 मल्टीस्क्रीन पर प्रदर्शित होती है।

भारत में मुख्य मल्टीप्लेक्स श्रृंखला में पीवीआर सिनेमा लिमिटेड, आईनॉक्स लिज्योर लिमिटेड, पैरामिड साईमारा, वैल्यूएबल मीडिया, मुक्ता ऐडलैब, रियल इमेज, सत्यम् सिनेमा, श्रीनगर सिनेमा, फ़ेम इंडिया लिमिटेड, सिनेमैक्स इंडिया लिमिटेड और फ़न सिनेमा प्रमुख हैं। जबकि फ़िल्म वितरण में मुक्ता आर्टस्, यशराज फ़िल्म्स, सिनेविस्टा, के सेरा सेरा, ई-सिटी इंटरटेनमेंट, यूटीवी मोशन पिक्चर, पीवीआर पिक्टरस्, सहारावन मोशन पिक्चर, श्रीअष्ट विनायक सिनेमाविज़न, ईरोस इंटरनेशनल (Overseas Territory), इंडियन फ़िल्म कंपनी (नेटवर्क-18) प्रमुख हैं।

प्रकाश के साथ ध्वनि की तकनीकी से उन्नत प्रथम

सवाक (बोलती) फ़िल्म 'आलमआरा' की शुरुआत के बाद सिनेमायी महासागर में आज तक हिंदी भाषा में समाए कथानकों, चरित्रों, सामाजिक स्थिति के समय और स्थान को जीवंत करने का कार्य फ़िल्मकारों द्वारा किया जा रहा है। भारत और हिंदी को सिनेमा एक बड़ा उद्योग देखते हुए विश्व सिनेमा के निर्देशक और निर्माता अपनी फ़िल्मों की हिंदी भाषा में डबिंग करके, पूरे विश्व में एक साथ प्रदर्शन कर रहे हैं। दर्शकों में सिनेमा सामग्री का वैश्वीकरण होने से मनोरंजन के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा भी आयी है। तकनीकी विकास और भाषायी सरलता की वजह से विश्व के बड़े बाज़ार में विश्व सिनेमा की कई फ़िल्मों ने भारत में जगह बनायी, जो कि कुछ साल पहले सम्भव ही नहीं था। इसका सबसे बड़ा श्रेय 1990 के उदारीकरण के समय में स्टीवन स्पीलबर्ग की फ़िल्म 'जुरासिक पार्क' (1993) को दिया जाना चाहिए, जिसने पहली बार भारत में उस दौर की बड़ी फ़िल्मों से चुनौती लेते हुए 5 करोड़ से अधिक का व्यापार किया। यह पहली बार था कि हिंदी भाषा में वैश्विक स्तर पर इतने बड़े कारोबार को देखा गया था।

जुरासिक पार्क की वजह से भारत में क्षेत्रीय भाषाओं में हिंदी भाषा के विस्तार और प्रभाव को बाज़ार के अन्तर्गत देखते हुए, क्षेत्रीय निर्माताओं ने हिंदी भाषा में फ़िल्मों के प्रदर्शन पर ज़ोर देना शुरू कर दिया था। मणि रत्नम की फ़िल्म 'रोजा' (1992) और 'बॉम्बे' (1995) ने भी भाषायी स्तर पर क्षेत्रीय प्रभाव के कारोबार को मनोरंजन से जोड़कर अच्छा व्यापार किया। इसका प्रभाव आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि मूलतः क्षेत्रीय भाषा में बनी 'बाहुबली' (दोनों भाग) फ़िल्म को हिंदी भाषा के साथ जोड़कर भारत की सबसे अधिक व्यापार करने वाली फ़िल्म का दर्जा प्राप्त हुआ है। जिन्होंने भारत सहित पूरी दुनिया में करीब 1,683 अरब रुपये का व्यापार किया है।

एक दौर ऐसा भी था, जब विदेशी फ़िल्मों को देखने के लिए समाज के उच्च वर्ग के लोग ही सिनेमाघरों में जाया करते थे। मुख्यतः विश्व स्तर की फ़िल्में अंग्रेज़ी भाषा में ही हुआ करती थीं। इसे एक ऐसी विडम्बना ही कहा जाए कि समय बदलने के अनुरूप हिंदी डबिंग का दौर जब भारत में शुरू हुआ, तब उसका सबसे ज़्यादा फ़ायदा विदेशी फ़िल्मों को ही हुआ। भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाने वाला मध्यम वर्ग कठिन अंग्रेज़ी भाषा से सरल हिंदी अनुवाद को जीवंत और भारतीय परिवेश में सुनकर फ़िल्मों से जुड़ने लगा। फ़िल्मों का कथानक और पात्र विदेशी होने के बावजूद, भाषा की सरलता ने व्यवसाय के नए आयामों को खोल दिया।

भारतीय अर्थशास्त्री भी मनोरंजन और व्यापार का तकनीकी माध्यम से सरल हो जाने की वजह से इसे एक ऐसी चुनौती के रूप में देखते हैं, जिसका असर सीधे रूप से भारतीय फ़िल्मों पर पड़ता है। उदाहरण के तौर पर भारत में राकेश रोशन द्वारा निर्देशित और ऋतिक रोशन द्वारा अभिनय से सजी फ़िल्म 'क्रिश-3' (2013) का प्रदर्शन लगातार टाला जा रहा था, क्योंकि उसी समय मॉर्वल मूवीज़ की एवन्जर्स सीरीज़ और डी सी कॉमिक्स की फ़िल्में भारत में एक के बाद एक हिंदी भाषा में भी प्रदर्शित हो रही थीं। क्रिश-3 की तकनीकी गुणवत्ता और सामग्री से चिंतित निर्माता ने फ़िल्म को ऐसे समय प्रदर्शित किया, जिससे फ़िल्म की लागत, पूंजी और व्यवसाय हो सके। वैश्विक प्रतिद्वंद्विता के इस उदाहरण को आज भी देखा जा सकता है, क्योंकि भारत जैसे देश में स्टार के अनुरूप तैयार होने वाली फ़िल्म तकनीकी स्तर पर आज भी विश्व सिनेमा से निम्नतर ही आँकी जाती है।

2011 में निर्देशक महेश भट्ट ने मुंबई और चेन्नई के कुछ निर्देशकों के साथ मिलकर डब की गई विदेशी फ़िल्मों के खिलाफ़ प्रतिबंध करने की माँग भी की थी। हिंदी, तेलुगु, तमिल, भोजपुरी के साथ अन्य कई भाषाओं में फ़िल्मों की डबिंग से भारतीय हिंदी सिनेमा के कारोबार को चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। विरोध में कहा भी जा रहा था कि विदेशी फ़िल्में स्थानीय फ़िल्मों का बड़ा हिस्सा खा रही हैं। फिक्की-के. पी.एम.जी. की एक रिपोर्ट में विदेशी फ़िल्मों के राजस्व के बारे में जानकारी भी दी गयी कि कुल कारोबार का 35

प्रतिशत हिस्सा डबिंग से आता है। वैश्विक फ़िल्म उद्योग की अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट में भारत में डबिंग की कमाई कुल राजस्व का करीब 10 प्रतिशत बतायी गयी है। भारत जैसे बड़े मनोरंजन बाज़ार के लिए यह आँकड़ा राजस्व के मामले में काफ़ी बड़ा दिखायी देता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में हिंदी भाषा और सिनेमा को मुख्य बाज़ार के रूप में जोड़कर देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि दुनिया के सभी बड़े स्टूडियो भारतीय भाषा की शक्ति और उसकी पहुँच से प्रभावित है। वैश्विक पटल पर सिनेमा को देखा जाए, तो 'जुरासिक वर्ल्ड' (2015), 'फ़ास्ट एंड फ़्यूरियस 7' (2015), 'द जंगल बुक' (2016), 'एवेन्जर्स-एंडगेम' (2019), 'द लायन किंग' (2019), 'टॉय स्टोरी' (2019), 'अलाद्दीन' (2019), ऑस्कर के लिए गई फ़िल्म 'जोकर' (2019), 'जुमानजी' (2019), 'वंडरवूमैन' 1984 (2020), 'टेनेट' (2020) के अलावा मॉर्वेल मूवीज़ की फ़िल्में और डी.सी. कॉमिक्स की फ़िल्में प्रमुख हैं।

हिंदी भाषा के साथ शुरू हुए प्रसार को विदेशी फ़िल्मों के व्यापार ने तब और भी बढ़ा दिया जब डबिंग के लिए अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग शुरू कर दिया गया। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी के अलावा भोजपुरी भाषा में भी डबिंग होने लगी है। फ़िल्म समीक्षकों का भी मानना रहा है कि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग सिनेमाघरों में आएँगे, तो पूरे मनोरंजन जगत के व्यापार की बढ़ोतरी होगी, क्योंकि भारत के सामाजिक परिवेश में हर तरह के दर्शक मौजूद हैं, जो मल्टीप्लेक्स या सिंगल स्क्रीन पर अपनी पसंद की फ़िल्म देखते हैं। विश्व स्तर की बड़ी बजट की फ़िल्में इसीलिए भारत में अरबों रुपये का कारोबार करने में सफल रहती है।

हिंदी भाषा में डबिंग के माध्यम में एशिया में सबसे बड़े सशक्त माध्यम सिनेमा को विश्वस्तर पर भी जगह मिली है। इसी का प्रभाव हम देखें, तो विश्व स्तर की बड़े बजट की फ़िल्मों में भारतीय महाद्वीप से जुड़े कलाकारों का प्रतिनिधित्व देखने को मिल ही जाता है। अली फ़ज़ल ने 'फ़्यूरियस 7' में, इरफ़ान खान ने 'जुरासिक वर्ल्ड' में, प्रियंका चोपड़ा ने 'बे वॉच' में, दीपिका पादुकोण ने 'ट्रिपल एक्स' में, अनिल कपूर ने 'मिशन इम्पॉसिबल' और 'स्लमडॉग मिलियनेर' में मुख्य हिंदी भाषी सिनेमा के अलावा, विश्वस्तर पर देश का प्रतिनिधित्व किया। 'द ग्रेट गैट्सबी' में अमिताभ बच्चन मेहमान की भूमिका में रहे, लेकिन उनके अभिनय को लियानार्डो डिकाप्रियो की तर्ज पर ही माना गया।

2020 के कोरोना काल में जहाँ फ़िल्मकारों और स्टूडियो को अरबों रुपये का नुकसान उठाना पड़ा, तो वहीं भारत में ब्रिटेन मूल के निर्देशक ने 'टेनेट' फ़िल्म का न केवल प्रदर्शन किया, बल्कि भारतीय कलाकारों को भी मुख्य भूमिका में रखा। डिम्पल कपाडिया फ़िल्म कथानक के केन्द्र में मौजूद रहीं और अपने सशक्त अभिनय से भारतीय सिनेमा के परचम को बुलंद रखा। 'टेनेट' को हिंदी भाषा में भी प्रदर्शित किया गया, जिसकी वजह से यह फ़िल्म भारत में सफल कारोबार करने में सक्षम हो सकी। हिंदी भाषा के अलावा यह भारतीयता का प्रभाव था कि कथानक में मुख्य पात्र विदेशी होने के बावजूद, फ़िल्म का काफ़ी हिस्सा भारत में शूटिंग के लिए चुना गया, जिसका प्रमुख कारण दर्शकों से जुड़ाव और व्यवसाय की प्रधानता ही है। पिछले कुछ सालों से भारतीय कलाकारों को प्रमुख पात्र के रूप में विदेशी फ़िल्मों में जगह दी जाने लगी है।

'जुरासिक पार्क' (1993) से भारत में हिंदी भाषा की डबिंग के खुले नए व्यवसाय ने चीनी फ़िल्म, कोरियाई फ़िल्म, एनीमेशन फ़िल्म, हॉलीवुड फ़िल्म, क्षेत्रीय फ़िल्म आदि को अपने भीतर समाहित करते हुए, उसे दर्शक के समक्ष सरल अनुवाद में प्रस्तुत करना शुरू कर दिया है। भारत में डबिंग ने भी एक उद्योग का रूप ले लिया है, जिसमें करीब 2000 से ज़्यादा वॉइस ओवर आर्टिस्ट और 30 से ज़्यादा डबिंग एजेंट कार्य करते हैं। दुनिया भर की दृश्य सामग्रियों को अपनी आवाज़ देने का कार्य लगातार इस उद्योग से जुड़े कलाकारों द्वारा किया जा रहा है।

आबादी और बाज़ार के मिश्रण ने हिंदी भाषा

को वैश्विक स्तर पर इतना प्रभावशाली बना दिया है कि दुनिया के किसी भी देश के निर्देशक हिंदी भाषा में फ़िल्म को प्रदर्शित करने की इच्छा समय-समय पर बता चुके हैं। मनोरंजन में प्रतिद्वंद्विता से दर्शकों को काफ़ी फ़ायदा हो रहा है, क्योंकि उन्हें उच्च गुणवत्ता की फ़िल्में देखने को मिल रही हैं। सेटलाइट ब्रॉडकास्टिंग और ओवर द टॉप (ओटीटी) प्लेटफ़ॉर्म ने भी फ़िल्मों को सर्वसुलभ करने के साथ हिंदी भाषा में फ़िल्मों की सामग्री और तकनीकी को जोड़, एक बेहतरीन संगम प्रस्तुत किया है। जिसकी वजह से आज पूरा विश्व ही एक छोटे से गाँव की तरह हो गया है, जो कि विश्व सिनेमा को अपनी इच्छा के अनुरूप अपनी चुनिंदा भाषा में देख सकता है। भाषा ने सिनेमा की साग्रगी को स्थानीयता प्रदान कर दी है। कोरोना के दौरान अमाज़ोन प्राइम और नेटफ़्लिक्स जैसे ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म दुनिया के 190 देशों में 24 भाषाओं में अपनी सामग्री को प्रेषित कर रहे हैं। भारत में 'दंगल' और 'थ्री-इडियट्स' ऐसे उदाहरण हैं, जिन्हें चीनी भाषा में डबिंग कर प्रदर्शित किया गया और करोड़ों रुपये का व्यापार संभव हो पाया। फिक्की-के.पी.एम.जी. की रिपोर्ट में बताया भी गया है कि साल 2012 में वैश्विक स्तर पर भारतीय फ़िल्मों ने करीब 7.6 अरब रुपये उत्पन्न किए। इस आय का 70 प्रतिशत हिस्सा तीन बाज़ारों से आया - यूरोप, अमेरिका और मध्य-पूर्व एशिया।

भारत में डबिंग का व्यवसाय करीब 120 करोड़ रुपये हैं। बड़ी कम्पनियाँ, छोटी कम्पनियों को डबिंग करने का अवसर प्रदान करती हैं, जिसकी वजह से मशरूमनुमा उद्योग बनकर, पूरे भारत में नए अवसरों को पैदा कर रहा है। एक तीन घंटें की फ़िल्म को टीवी के लिए डब करने में करीब 3 से 5 लाख रुपये तो वहीं सिनेमा के लिए 15 से 20 लाख रुपये की लागत आती है। अनुवादक, भारतीय भाषायी फ़िल्म के लिए 1 रुपये प्रति शब्द कार्य करता है, तो वहीं उसे 10 रुपये प्रति शब्द विदेशी भाषा के लिए मिलते हैं। सिनेमा में प्रदर्शित होने वाली फ़िल्म की पूरी डबिंग में करीब 30 दिन का समय लगता है। इस डबिंग में डबिंग कलाकारों के साथ निर्देशक, निर्माता, ध्वनि संपादक आदि मौजूद रहते हैं, जो कि फ़िल्म के अंतिम स्वरूप को लेकर निर्णय लेते हैं। कई बड़ी फ़िल्मों की आउटसोर्सिंग का भी कार्य जैसे एनीमेशन, मोशन ग्राफ़िक्स, विज़ुअल इफ़ेक्ट के क्षेत्र में भारत अग्रणी भूमिका निभा रहा है।

संचार में प्रेषक और प्राप्तकर्ता के बीच किसी भी तरह के भाषायी अवरोध को डबिंग समाप्त कर देती है। यही वजह है कि कला और मनोरंजन का सशक्त माध्यम सिनेमा कम लागत से हुई डबिंग से दर्शक और फ़िल्म का ऐसा जोड़ सम्भव हो पाता है, जिससे करोड़ों रुपये का सफल व्यवसाय बनता है। तकनीकी के सरल और उन्नत होने से सिनेमा डबिंग में लगातार जीवंतता और विश्वसनीयता प्रदान की जा रही है और यही वजह है कि भारत में वैश्विक फ़िल्म प्रदर्शन के लिए हिंदी डबिंग अति आवश्यक की श्रेणी में विद्यमान हो गयी है। पूरी दुनिया में हो रही डिजीटल क्रांति से हिंदी को न केवल सर्वसुलभ कराने का प्रयास किया जा रहा है, बल्कि भारतीय महाद्वीप और उससे जुड़े लोगों को कला और मनोरंजन की विधा से सार्थक रूप में जोड़ रहा है।

संदर्भ :

1. जाधव, रविन्द्र, मीडिया और हिन्दी : बदलती प्रवृत्तियाँ, वाणी प्रकाशन-2016
2. पारख, जबरीमल्ल, लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ, अनामिका पब्लिशर्स, 2009
3. खांडेकर, विनीता कोहली, भारतीय मीडिया व्यवसाय, सेज पब्लिकेशनस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, 2017
4. Kumar, Keval J, Mass Communication in India, Jaico Publishing House, 2015
5. https://www.thehindubusinessline.com/news/variety/after-hollywood-foreign-films-stealing-the-show/article29829418.ece
6. https://www.statista.com/statistics/948620/india-

market-share-of-domestic-films-by-language/
7. https://www.businesstoday.in/opinion/perspective/story/india-will-continue-being-a-country-with-lowest-number-of-film-screens-232559-2019-10-03
8. https://www.indiantelevision.com/television/tv-channels/regional/inside-indias-dubbing-and-subtitling-industry-180612

mahesh.bid@banasthali.in

डिजिटल युग में हिंदी की 'टेढ़ी चाल' बनाम हिंग्लिश

- डॉ. कमलेश गोगिया
रायपुर, भारत

लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व 'कालचक्र' में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा था, 'हिंदी नए चाल में ढली (हरिश्चन्द्री हिंदी) सन् 1873 ई.।' तत्कालीन समय के बड़े शैलीकार भारतेंदु जी ने लालित्यपूर्ण हिंदी का अविष्कार किया था। यह हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत थी। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, 'नई चाल' से उनका तात्पर्य नवीन 'भाषा-शैली का वैशिष्ट्य' था। उन्होंने जिस भाषा की नींव डाली, उसमें किसी प्रकार का कोई बंधन नहीं था, और न किसी प्रकार से कृतिम रूप से वह गढ़ी हुई थी। वस्तुतः भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके सहयोगियों ने जिस प्रकार की भाषा में अपने लेख और ग्रंथ लिखे, वह बहुत स्वाभाविक और भाव-प्रकाशन में समर्थ भाषा थी। 1873 में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'हरिश्चंद्र मैग्ज़ीन' (हरिश्चंद्र चंद्रिका) निकाली, जिसमें परिष्कृत हिंदी का रूप प्रकट हुआ। भारतेंदु ने अपने जीवन काल में इस पत्रिका की युगान्तरकारी भूमिका देख ली थी। इसलिए हिंदी के नयी चाल में ढलने की बात उन्होंने उसके प्रकाशन के आरंभ होने के वर्ष से जोड़ी। तब से हिंदी भाषा और साहित्य ने प्रगति की तथा उन बुलंदियों को स्पर्श किया, जहाँ तक कोई अन्य भाषा अथवा साहित्य नहीं पहुँच सका। समय के साथ-साथ हिंदी में उर्दू, अरबी, फ़ारसी, पंजाबी, मराठी, अंग्रेज़ी आदि के शब्द समाहित होते चले गए और ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के नए संस्करणों में भी हिंदी के शब्दों को शामिल किया जाने लगा। लेकिन आज जब हम डिजिटल युग में हिंदी के स्वरूप में धीमे ज़हर की भांति हो रहे बदलाव को देखते हैं, तो यह प्रतीत होता है कि इस पर 'हिंग्लिश' अथवा 'हिंग्रेज़ी' का आवरण ओढ़ाकर पूरी चाल ही टेढ़ी की जा रही है। टी.वी., रेडियो, फ़िल्म, विज्ञापन, मोबाइल इंटरनेट आदि में हिंदी भाषा का रूप बदला हुआ है।

भाषा विचारों की वाहक होती है और भाषा की स्वाभाविक गति होती है, कठिनता से सरलता की ओर बढ़ना और एक भाषा में दूसरी भाषा की बोलियों और शब्दों का मिलना भी स्वाभाविक रूप से होता है। 'जलेबी' शब्द अरब के साथ आया और हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया। हिंदी में न सिर्फ़ देशज बल्कि उर्दू, अरबी, फ़ारसी और अंग्रेज़ी के सार्थक शब्द भी शामिल होते रहे हैं, जिन्हें हिंदी की प्रकृति और आवश्यकता के अनुसार स्वीकार किया जाता रहा है। ऑक्सफ़ोर्ड द्वारा प्रकाशित होने वाले अंग्रेज़ी शब्दकोश के लगभग प्रत्येक नए संस्करण में हिंदी के अनेक शब्दों को समाहित किया जाता रहा है। लेकिन इन सबसे अलग हिंदी पर हिंग्लिश का अवरण हिंदी भाषा के अस्तित्व के लिए खतरा समझा जा रहा है। इसके अनेक कारण समझे जा रहे हैं। भूमंडलीकरण के दौर में बाज़ारवाद हिंदी भाषा के स्वरूप को बदलता जा रहा है। 'यह दिल माँगे मोर', 'दिवाली सेलिब्रेशन', 'नो उल्लू बनाविंग', जैसी बिगड़ी हुई भाषा से हम विषय का अनुमान लगा सकते हैं। लगता है कि बाज़ार की चाहतों को पूरा करने वाली हिंदी भाषा गढ़ी जा रही है। यह विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए कि महापुरुषों ने अपनी समर्थ भाषा की वजह से ही अपने प्रबल विचारों और मान्यताओं को स्थापित किया है। हिंग्लिश रोज़मर्रा की आवश्यकता पूर्ति करने में सक्षम और ज्ञान-विज्ञान की शब्दावली से संपन्न नहीं मानी जा सकती।

21वीं सदी के आते-आते उन्नत सूचना प्रौद्योगिकी और संचार क्रांति ने पूरी दुनिया को 'ग्लोबल विलेज' में

परिवर्तित कर दिया और आज हम पलक झपकते ही विश्व के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति तक अपना संदेश पहुँचाने की सुविधाओं से पूरी तरह लैस हो चुके हैं। भौगोलिक दूरी के अब कोई मायने नहीं रह गए हैं। निःसंदेह वैश्वीकरण के दौर की यह प्रगति गौरव का विषय है, किन्तु इसके दुष्प्रभाव से हिंदी भाषा का संरक्षण आवश्यक है, जिस पर हिंग्लिश का आवरण चढ़ता जा रहा है। हिंग्लिश के वाचिक और लिखित प्रयोग में शुद्ध हिंदी और शुद्ध अंग्रेज़ी का अभाव ही पाया जाता है।

हिंदी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि यह दूसरी भाषा के शब्दों को आसानी से अपने में समाहित कर लेती है और यह समावेश इस तरह होता है कि दोनों में भेद करना मुश्किल प्रतीत होता है। ठीक पानी की तरह, जिसमें कोई भी रंग घोल दो वह उसी रंग का हो जाता है। वह दौर नहीं रहा जब रोज़मर्रा की दिनचर्या से लेकर शिक्षा और व्यापार तक में सहज और सरल हिंदी का प्रयोग किया जाता था, अब अंग्रेज़ी के शब्दों का भरपूर प्रयोग किया जाता है। भाषाओं में आदान-प्रदान होता रहा है। हिंदी में अंग्रेज़ी के शब्दों के प्रचलन का दौर 19वीं सदी में ही प्रारंभ हो गया था, जब देश में तकनीकी विकास की शुरुआत हुई थी और यह आवश्यक भी समझा जाने लगा था, क्योंकि ट्रेन, टेलीग्राम, टेलीफ़ोन जैसे शब्दों के हिंदी में बेहतर विकल्प नहीं थे। आज भी मिस्ड कॉल, रीचार्ज, इंटरनेट, इंस्ट्राग्राम, फ़ेसबुक जैसे शब्द आम बोलचाल की भाषा के शब्द हैं, जिन्हें बदला नहीं जा सकता। संभवतः विश्व के अन्य देशों में भी वहाँ की आम बोलचाल की भाषा में अंग्रेज़ी को मिलाकर बोला जाता होगा। इसके पीछे मूल कारण व्यावसायिक जान पड़ता है। बदलते परिवेश में हिंदी के नये स्वरूप को लेकर श्रीमती संतोष बंसल लिखती हैं - 'किसी भी क्षेत्र का आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक बदलाव उसकी भाषा में भी परिलक्षित होता है और सही भाषा वही होती है, जो अपने परिवेश से पैदा होती है। यही तथ्य हिंदी भाषा पर लागू होता है, क्योंकि 'वर्चुअल टाइम' के बदलते परिवेश ने उसका स्वरूप बदला है और उसे आज विभिन्न नए नामों से पुकारा जा रहा है। कोई उसे 'ग्लोबल हिंदी' नाम देता है और कई विद्वान उसे 'आज की हिंदी' या 'नयी वाली हिंदी' कहकर सम्बोधित कर रहे हैं।'

योगेंद्र दत्त शर्मा के अनुसार, 'अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में विकसित देशों की संस्कृति, सभ्यता व भाषा का बोलबाला है। उन्हीं के आकर्षणपाश में भारतीय भौतिकता की प्रतिस्पर्धात्मक होड़ में बंधे जा रहे हैं। विदेशी कंपनियाँ वस्तु-विनिमय के लिए हिंदी-प्रयोग के प्रति आग्रही तो हैं, लेकिन उसके व्याकरण के प्रति खिलवाड़ भी कर रही हैं। हिंदी हिंग्रेज़ी हो गई है।' राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ युवाओं की जेब तक पहुँचने के लिए उनकी आम बोलचाल की भाषा को ही अपने प्रचार का माध्यम बनाती हैं। घर-घर में विभिन्न कंपनियों के उत्पादों के प्रचार का सबसे अहम माध्यम टेलीविजन है, जिसमें हर मिनट विज्ञापन प्रसारित होता है। वह धारावाहिक हो या न्यूज़ चैनल; सर्वाधिक विज्ञापन हिंदी में ही प्रसारित किये जाते हैं। आज विज्ञापन सिर्फ़ तेल-साबुन की सूचना नहीं देते, बल्कि जीवन-साथी भी दिलाते हैं। हर चीज़ को चमकदार बनाकर परोसने में विज्ञापन का कोई सानी नहीं है। आज इसकी भाषा बदल गई है। पहले विज्ञापनों में व्यवसाय के साथ ग्राहक की भावनाओं को बनाए रखा जाता था और हिंदी भाषा में अंग्रेज़ी के शब्दों की मिलावट इतनी नहीं हुआ करती थी, जितनी आज देखने को मिलती है। हिंदी के अधिकांश विज्ञापनों में अंग्रेज़ी के अक्षरों का भरपूर प्रयोग किया जाता है। वास्तव में, विज्ञापनों में भाषा का मनमाना प्रयोग देखने को मिलता है। शैम्पू, साबुन के विज्ञापनों से 'किटाणु' शब्द की जगह 'जर्म्स' ने ले ली है। पानी की प्यास 'दिल माँगे मोर' से बुझाई जाती है, तो रोग प्रतिरोधक क्षमता की जगह इम्युनिटी पॉवर जैसे शब्द प्रयोग में लाये जाते हैं। टेलीविजन में प्रसारित होने वाले विभिन्न धारावाहिकों और फ़िल्मों के प्रोमो से लेकर संवाद योजना तक में हिंग्लिश के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग होता है। हिंदी धारावाहिकों के नाम

अंग्रेज़ी के अक्षरों से लिखे जाते हैं। इसमें कोई दो मत नहीं है कि वैश्विकरण की वजह से हिंदी भाषा का पूरे विश्व में व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार हुआ है और यह प्रक्रिया जारी है, लेकिन जिस उद्देश्य से अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों को शामिल किया जाने लगा है, वह हिंदी भाषा को समृद्ध करने की दिशा में उठाया गया कदम नहीं है। आम बोलचाल की भाषा में अंग्रेज़ी के वे शब्द सहज ही आते चले गए हैं, जिनका कोई विकल्प हिंदी में नहीं था। लेकिन जिन शब्दों के लिए हिंदी में शब्द हैं और उनका अच्छा प्रयोग भी किया जा सकता है; फिर भी अंग्रेज़ी के शब्दों का जानबूझकर प्रयोग किस प्रयोजन से किया जाता है, यह समझ से परे है। हिंग्लिश को लेकर कोई आक्रोश भी नहीं है और न तो प्रतीकात्मक रूप से किसी तरह का कोई विरोध। सच तो यह है कि हमारी हिंदी वर्ण संकर होती जा रही है और हम मौन रूप से सब कुछ स्वीकार कर इसे अपनी स्वीकृति दे रहे हैं। प्रगति और विकास के साथ हिंदी के बदलते स्वरूप को लेकर कोई चिंता नहीं और इसके पीछे यह तर्क भी है कि अंग्रेज़ी मिश्रित हिंदी अर्थात् हिंग्लिश से हिंदी कभी विलुप्त नहीं होगी। हमने टेलीविजन और मनोरंजन को स्वीकार किया है, समाचार-पत्रों को स्वीकार किया है, रेडियो और फ़िल्मों को स्वीकार किया है, तो क्या हमें भाषायी प्रदूषण को भी स्वीकार करना होगा, क्योंकि अंग्रेज़ी शब्दों को छाँटने वाला कोई फ़िल्टर नहीं है ?

मनोरंजन, उद्योग, मीडिया के क्षेत्र में हिंदी भाषा का जहाँ सबसे ज़्यादा प्रचार-प्रसार होता है, वहीं हिंग्लिश का भी। पूरे विश्व में सफल मानी जाने वाली अंग्रेज़ी वैश्विक भाषा के रूप में विकसित हो चुकी है, जो इंटरनेट में सबसे ज़्यादा उपयोग में लाई जाने वाली भाषा है। चिकित्सा, शिक्षा और अनुसंधान सहित विभिन्न क्षेत्रों में अन्य भाषाओं की तुलना में हिंदी सबसे आगे है। लेकिन इसके साथ ही हिंग्लिश का बढ़ता चलन इस बात का संकेत देने लगा है कि अंग्रेज़ी की तुलना में हिंदी और अंग्रेज़ी मिश्रित भाषा का महत्त्व भविष्य में बढ़ जाएगा। मोबाइल फ़ोन भी हिंग्लिश कीबोर्ड के साथ आ चुका है।

वर्ष 2012 में बीबीसी हिंदी में एक आलेख प्रसारित किया गया था, जिसमें यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या हिंग्लिश अंग्रेज़ी को पछाड़ने जा रही है ? इसके बाद भाषा विज्ञानियों के हवाले से यह अनुमान व्यक्त किया गया था कि आने वाले 10 सालों में अंग्रेज़ी भाषा इंटरनेट पर राज करेगी, लेकिन वह अंग्रेज़ी भाषा आज की अंग्रेज़ी से जुदा होगी। नौ वर्ष पुरानी इस रिपोर्ट में व्यक्त किया गया अनुमान अब वर्ष 2021 में प्रमाणित माना जाने लगा है। हिंग्लिश यानी हिंदी, पंजाबी, उर्दू और अंग्रेज़ी के मिश्रण से बनी भाषा भारतीय ऑनलाइन उपभोक्ताओं के बीच आम हो गई है। रोज़मर्रा की ज़िंदगी में जिस तरह इंटरनेट का प्रयोग बढ़ रहा है, वह मिश्रित भाषा के फलने-फूलने का ज़रिया बन रहा है।

वैश्विक परिदृश्य में हिंग्लिश विषय पर वर्ष 2013 में अपने अध्ययन में सोनी पांडे ने दर्शाया है कि 'भाषा एक समय को और समाज की मनोदशा को भी दर्शाती है। आपकी संस्कृति की खिड़की भाषा है और हमेशा एक पदानुक्रम होता है। हिंग्लिश समय की माँग है और इसे समाज ने बनाया है। हिंदी को अपनी अस्मिता के लिए अनेक संघर्ष करने पड़े हैं।'

वर्ष 2016 में सत्याग्रह ब्यूरो ने प्रश्नवाचक चिह्न के साथ ऑनलाइन खबर प्रसारित की, जिसका शीर्षक था - 'क्या हिंग्लिश भारत में अंग्रेज़ी की जगह ले सकती है?' यह ब्रिटेन की एसेक्स यूनिवर्सिटी के भाषा विभाग की व्याख्याता विनीता चांद का आलेख था, जो 'द कन्वर्सेशन' पर प्रकाशित हुआ था। इस आलेख में यह संभावना व्यक्त की गई थी कि अंग्रेज़ी दुनिया की सफलतम भाषा है, लेकिन इस भाषा को हिंग्लिश से प्रतिस्पर्धा मिलने लगी है। अंग्रेज़ी बोलने वालों की संख्या के संदर्भ में भारतीय पूरी दुनिया में दूसरे स्थान पर हैं। देश के कुछ राज्यों में हिंदी माध्यम के सरकारी स्कूलों का अंग्रेज़ीकरण किया गया है। इसकी वजह रोज़गार-व्यवसाय में सफलता और सामाजिक प्रतिष्ठा मानी जाती

है। भारत के संदर्भ में महानगरों और उच्च वर्गों तक अंग्रेज़ी का प्रभाव माना जाता रहा है, लेकिन तकनीकी क्रांति के फलस्वरूप दूर-दराज़ ग्रामीणों तक संचार के आधुनिक माध्यम पहुँचे हैं, जिनमें पारंगत होने के लिए अंग्रेज़ी के शब्द सभी को जानने पड़ते हैं। सीमित वातावरण के बाद भी सभी अंग्रेज़ी बोलना चाहते हैं और विकल्प के तौर पर भाषायी मिश्रण का रूप हिंग्लिश देखने को मिलता है। अपने अध्ययन में विनीता ने भाषायी बदलाव को जानने के लिए, भाषायी प्रतिस्पर्धाओं का सांख्यिकीय प्रतिरूपण (स्टेटिस्टिकल मॉडलिंग) किया। विनीता के मुताबिक, अध्ययन में जिन द्विभाषी लोगों को शामिल किया गया था, उनमें से कोई भी सफलतापूर्वक सिर्फ़ हिंदी भाषा नहीं बोल पाया। बल्कि उनकी बातचीत में कुल मिलाकर करीब 18.5 फ़ीसदी तक अंग्रेज़ी का प्रयोग किया ही गया। इस प्रयोग के बाद विनीता की टीम ने भारतीय टेलीविजन पर आने वाले एक रियलिटी शो के पूरे दो सत्रों का विश्लेषण भी किया। इससे यह पता लगाया गया कि शो के हर प्रतिभागी द्वारा सामान्य बातचीत में अंग्रेज़ी का कितना प्रयोग किया गया। इस अध्ययन के बाद दो नतीजे सामने आए; पहला - हिंग्लिश बोलने वाले लोग ऐसी किसी भी परिस्थिति में, जहाँ सिर्फ़ हिंदी बोलना ज़रूरी है, उसे (हिंदी भाषा) नहीं बोल सकते। और इसी तरह की परिस्थिति में वे अंग्रेज़ी भी धाराप्रवाह नहीं बोल सकते। विनीता के अनुसार इस दौरान कुछ लोगों ने तो माना भी कि वे सिर्फ़ हिंग्लिश ही धाराप्रवाह बोल सकते हैं। यानी उनके पास कोई विकल्प नहीं होता। दूसरा नतीजा यह सामने आया कि हिंग्लिश बोलने वाले एक-दूसरे के साथ संवाद में भाषायी तालमेल आसानी से बिठा लेते हैं। हिंग्लिश उनकी आधुनिकता संबंधी ज़रूरत तो पूरा करती ही है, उन्हें स्थानीय स्तर पर जोड़कर भी रखती है।

बीबीसी में 7 मार्च, 2018 को यूट्यूब समाचार प्रस्तुत किया गया कि यू.के. में छात्रों को एक नई भाषा सिखाई जा रही है, जो हिंदी और अंग्रेज़ी का मिश्रण है। पोर्ट्समाउथ कॉलिज पहला हिंग्लिश पाठ्यक्रम चला रहा है। तकनीकी पर आधारित हिंदी के वे तमाम आलेख जो वेबसाइट्स और ब्लॉग में उपलब्ध हैं, वे अंग्रेज़ी के अक्षरों का प्रयोग किए बिना नहीं लिखे जा रहे हैं। मामला तकनीकी कठिनाइयों का हो अथवा सर्च में हिट्स ज़्यादा पाकर व्यावसायिक लाभ कमाने का हो, तकनीकी आधारित आलेख हिंग्लिश का प्रयोग किये बिना पूरी तरह हिंदी में लिखने जैसा जटिल कार्य कोई नहीं करना चाहता। कम्प्यूटर और सॉफ़्टवेयर के ज्ञान पर आधारित पुस्तकों में हिंदी के साथ अंग्रेज़ी के अक्षरों के शब्दों का प्रयोग जगज़ाहिर है।

हिंग्लिश को प्रोत्साहित करने में प्रिंट मीडिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अनेक राष्ट्रीय समाचार-पत्रों के पूलआउट पेज, जिनमें पेजथ्री पत्रकारिता की झलक उनके हैडर (नाम पताका) से ही देखने को मिलती है, बिना हिंग्लिश के साँस नहीं ले सकते। इन पत्रों में कुछ इस तरह से शीर्षक प्रकाशित होते हैं - 'ओडिसी नृत्य कॉम्पेटिशन में ऑनलाइन दे रहे प्रस्तुति', 'ग्रीन थीम में सेलिब्रेट किया सावन, गिफ़्ट किये पौधे'। अनेक राष्ट्रीय समाचार-पत्रों की वेबसाइट में हिंदी दिवस को ही अंग्रेज़ी के अक्षरों में लिखा जाता है। रेडियो की बात करें, एफ़.एम. के आगमन ने भी हिंग्लिश को प्रचिलत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। रेडियो के उद्घोषक एफ़.एम. में, जिन्हें रेडियो जॉकी कहा जाता है, इनके माध्यम से प्रसारित होने वाले अधिकांश क्रायक्रमों में हिंग्लिश का धड़ल्ले से प्रयोग होता है। हिंदी भाषा की चाल टेढ़ी करने में निजी रेडियो चैनलों ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। न्यूज़ चैनल के समाचारों से लेकर विशेष कार्यक्रमों की प्रस्तुति में भी हिंग्लिश का खुलकर प्रयोग होता है।

वर्ष 2018 में जागरण में प्रसारित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) मंडी की सहायक प्रोफ़ेसर डॉ. नीतू कुमारी के शोध के अनुसार हिंदी व इंग्लिश की जगह हिंग्लिश ले रही है। अब हिंग्लिश ही आम लोगों की भाषा बनती जा रही है। वर्ष 1961 से

2011 तक की जनगणना में दावा किया गया था कि हिंदी व इंग्लिश बोलने वालों के साथ बहुभाषियों की संख्या बढ़ी है। डॉ. नीतू कुमारी ने अमेरिका के दो नामी शिक्षण संस्थानों के शोधकर्ताओं के साथ इस पर शोध किया। भारत में 26 फ़ीसदी ग्रामीण व 13 प्रतिशत शहरी लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। इंग्लिश इन लोगों की पहुँच से दूर है। हिंदी बहुल कई राज्यों में भी लोग शुद्ध हिंदी नहीं बोलते हैं। हिंग्लिश ने अंग्रेज़ी के व्याकरण की अनिवार्यता को भी काफ़ी संकुचित कर दिया है। शोध में कई टेलीविजन शो व इंटरव्यू का अध्ययन किया गया। डॉ. नीतू कुमारी के अनुसार देश में हिंदी व इंग्लिश की बजाय हिंग्लिश बोलने वालों की संख्या बढ़ रही है। यह हिंदी व इंग्लिश के लिए खतरे की घंटी है।

बॉलीवुड की बात करें, तो आज हिंदी फ़िल्मों के नाम अंग्रेज़ी में रखे जाते हैं और ये फ़िल्में हिट भी होती हैं। इनकी लम्बी कतार है। उदाहरण के तौर पर 'राउदी राठौर', 'द डर्टी पिक्चर', 'पार्टनर', 'नो एन्ट्री', 'कॉरपोरेट', 'द वाइट टाइगर', 'द गर्ल ऑन द ट्रेन', 'बेल बॉटम', 'राधे योर मोस्ट वांटेड भाई', 'न्याय-द जस्टिस', आदि के उदाहरण दिए जा सकते हैं। इन फ़िल्मों के संवाद और गानों तक में भी हिंग्लिश का प्रयोग देखने को मिलता है। वैसे शोले के दौर की पुरानी हिंदी फ़िल्मों के पोस्टर्स देखें, तो लगभग सभी फ़िल्मों के नाम अंग्रेज़ी के अक्षरों में ही प्रिंट हुआ करते थे। हिंदी समेत क्षेत्रीय भाषाओं की फ़िल्मों में पात्रों का नाम अंग्रेज़ी में देने का चलन पिछले कुछ समय से बढ़ गया है। अब सेंसर बोर्ड (सीबीएफ़सी) ने फ़रवरी 2021 में इसकी सुध लेते हुए निर्माताओं से कहा है कि फ़िल्मों के शीर्षक, कलाकारों के नाम और क्रेडिट उसी भाषा में दिखाएँ, जिस भाषा में प्रमाणन के लिए भेजी गई है।

वस्तुतः हम जब मीडिया के विभिन्न माध्यमों से लेकर आम बोलचाल तक में हिंदी के वर्ण संकर के इस रूप को देखते हैं, तब यह बात दुखी करती है कि पूर्वजों द्वारा परिवर्धित-परिष्कृत, पोषित एवं संस्कारित हिंदी भाषा को हम संरक्षित नहीं कर पा रहे हैं। यह बड़ा विरोधाभासी है कि जब हम आज़ाद नहीं थे, तब अंग्रेज़ी भाषा को साम्राज्यवादी शोषकों की भाषा माना जाता था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद अंग्रेज़ी भाषा को अपनाने की होड़ लगी रही। जिन्हें ठीक से अंग्रेज़ी नहीं आती या जो हिंदी भी ठीक से नहीं बोल पाते, हिंग्लिश को अपनाकर गर्व करने लगे हैं। क्या हिंदी और अंग्रेज़ी का बिगड़ा रूप हिंग्लिश समय की माँग है? यह डिजिटल युग में संवाद की ज़रूरतों को पूरा करती है अथवा क्या हिंदी भाषा के लिए यह खतरे का संकेत है? क्या इतिहास पुनः अपने नये स्वरूप को लेकर हमारे सामने चुनौतियाँ पेश कर रहा है? यह विवशता है या समय की दरकार अथवा यह भविष्य में कितना उपयोगी साबित होगा? इन सवालों के जवाब समय के हाथों में हैं। हाँ, विश्व के विभिन्न देशों में बसने वाले भारतीय और विश्व हिंदी सचिवालय के प्रयासों से हिंदी भाषा हिंग्लिश की तमाम चुनौतियों के बीच संरक्षित है; यह बात गौरवान्वित अवश्य करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. द्विवेदी, हज़ारी प्रसाद, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, मूल संस्करण 1952, आठवीं आवृत्ति 2007, पृष्ठ-208.
2. शर्मा, रामविलास, हिंदी भाषा की विकास परंपरा और भारतेंदु युग, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ-330.
3. शर्मा, रामविलास, हिंदी भाषा की विकास परंपरा और भारतेंदु युग, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ-137.
4. शर्मा योगेंद्र दत्त, आधुनिक हिंदी साहित्य के कीर्ति-स्तंभ, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, सूचना भवन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011.
5. पाण्डे, रतनकुमार, मीडिया का यथार्थ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ-157.

6. https://www.bbc.com/hindi/international/2012/12/121214_english_online_arm
7. https://hindi.webdunia.com/aaina-2016/year-2016-hindi-hinglish-hindi-language-english-116123100083_1.html
8. https://www.aajtak.in/india-today-hindi/story/attitude-is-bigger-problem-than-hinglish-112741-2011-12-19
9. https://www.pravakta.com/hinglish/
10. https://www.hindisamay.com/content/2046/
11. https://www.amarujala.com/channels/downloads?tm_source=text_share
12. https://www.bbc.com/hindi/international/2012/12/121214_english_online_arm
13. https://satyagrah.scroll.in/article/102917/can-hinglish-replace-english
14. https://www.pravakta.com/hinglish/
15. https://www.jagran.com/himachal-pradesh/mandi-hinglish-is-taking-place-in-hindi-and-english-18693872.html Publish Date:Thu, 29 Nov 2018 01:32 PM (IST)Author: **Babita**
16. https://www.youtube.com/watch?v=GTqvzmlfFqw
17. https://www.amarujala.com/columns/opinion/language-of-advertisements-is-changing
18. https://navbharattimes.indiatimes.com/india/notice-to-fm-channel/articleshow/16943780.cms
19. https://www.amarujala.com/entertainment/bollywood/censor-board-to-makers-names-of-characters-should-be-given-same-language-film-is-made
20. https://hindi.culturebooklet.com/Blog/New-form-of-Hindi-in-changing-environment
21. http://www.hindisamay.com/Default_12_07_13.aspx

kamleshgogia@gmail.com

हिंदी के पथप्रदर्शक

31. पंजाब में हिंदी के उन्नायक : बाबू नवीनचंद्र राय - डॉ. राकेश कुमार दूबे

32. हिंदी साहित्य के दधीचि और अमर शहीदों के चारण : - डॉ. स्वाति कपूर चड्ढा
श्रीकृष्ण सरल

पंजाब में हिंदी के उन्नायक : बाबू नवीनचंद्र राय

- डॉ. राकेश कुमार दूबे
वाराणसी, भारत

हिंदी साहित्यिक जगत् में कई नाम ऐसे हुए हैं, जिनको जो प्रसिद्धि और यश मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। ऐसा ही एक नाम है पंजाब के बाबू नवीनचंद्र राय का। 19वीं सदी में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं उसके साहित्य के उन्नयन, श्रीवृद्धि एवं विस्तार में भारत के जिन हिंदी सेवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान था, उनमें बाबू नवीनचंद्र राय का अति विशिष्ट स्थान रहा है। 19वीं सदी, जो कि हिंदी के पुनरुत्थान की सदी थी, के उत्तरार्द्ध में बाबू नवीनचंद्र राय का उदय हुआ और उन्होंने उर्दू बहुल पंजाब प्रांत में अपने उत्तमोत्तम कार्यों द्वारा हिंदी की जो सेवा की उसका अपना अलग ही महत्त्व है। बाबू नवीनचंद्र राय भारतेंदु हरिश्चंद्र के समकालीन ही थे और जिस प्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने काशी से हिंदी की असीम सेवा की, वही कार्य बाबू नवीनचंद्र राय ने पंजाब में किया।

19वीं सदी के आरंभ में भारत की ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार ने कुछ बंगाली बाबुओं को अपने काम के सिलसिले में पंजाब भेजा, उनमें से राढ़ीय श्रेणी के एक ब्राह्मण राममोहन राय भी थे, जो कि वर्धमान ज़िले के रहने वाले थे। बाबू नवीनचंद्र राय उन्हीं राममोहन राय के पुत्र थे। नवीनचंद्र राय का जन्म 20 फ़रवरी, 1838 ई. को उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर में हुआ था।[1] जब वे केवल डेढ़ वर्ष के थे, तभी उनके पिता पंडित राम मोहन राय का निधन हो गया। पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण उनके भरण-पोषण का भार उनकी विधवा माता पर आया और उनका बचपन आर्थिक विपन्नता में बीता। पिता की मृत्यु और आर्थिक तंगी के कारण उन्हें विधिवत शिक्षा ग्रहण करने के सुयोग से वंचित होना पड़ा। मेरठ में शिक्षा का कोई उत्तम प्रबंध नहीं था। जब उनकी अवस्था 9 वर्ष की हो गई, तब वे मेरठ से लगभग 10 किलोमीटर दूर सरधना के स्कूल में पढ़ने के लिए जाने लगे। कुछ बड़े होने पर उन्होंने बांग्ला भाषा में रामायण पढ़ना सीख लिया। उनके घर के पास एक बंगाली सज्जन रहते थे। वे उनसे रामायण का पाठ सुनते और उन्हें रोज़ कुछ पैसे दे दिया करते थे, जिन्हें वे अपने विद्याध्ययन में खर्च करते थे। उनका विद्या अध्ययन की ओर असाधारण अनुराग इसी से प्रकट होता है कि उस किशोरावस्था में वे नित्य 10-12 किलोमीटर जाते और आते थे।

आर्थिक विपन्नता के कारण उन्हें 13 वर्ष की अल्पायु में ही सरधना में 16 रु. मासिक की नौकरी करने को विवश होना पड़ा, फिर भी उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा। उन्होंने स्वाध्याय से हिंदी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत और अंग्रेज़ी की अपनी योग्यता बढ़ाई। उन्होंने देखा कि यदि इंजीनियरिंग का अभ्यास कर लिया जाए, तो कुछ बड़ी तनख्वाह मिल सकती है, तो उन्होंने गणित का अभ्यास किया और थोड़े ही दिनों में इंजीनियरिंग की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और 50 रु. मासिक वेतन पाने लगे।[2] इसी प्रकार वे अपने कठिन परिश्रम से अपनी कार्य-निपुणता से अपनी आय बढ़ाते रहे और धीरे-धीरे उनकी आय 16 रु. से लेकर 700 रु. मासिक तक बढ़ गई, जो कि

उस युग में बहुत बड़ी बात थी।

नवीन चंद्र राय ने केवल अपनी आर्थिक अवस्था ही नहीं सुधारी, बल्कि इसी के साथ-साथ उन्होंने अपनी आध्यात्मिक उन्नति भी खूब की। विद्या से उन्हें विशेष प्रेम था। उन्होंने केवल अपनी चेष्टा से ही अंग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत में असीम योग्यता प्राप्त कर ली और विविध भाषाओं में विभिन्न विषयों के ग्रंथों को पढ़कर मनुष्य जीवन संबंधी विविध धार्मिक तत्वों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। वे योगी, संन्यासी, फ़कीर, पंडित, मौलवी, पादरी आदि धार्मिक पुरुषों से मिलते थे और धर्म के तत्वों की जाँच किया करते थे। अंत में उन्होंने एक परब्रह्म परमात्मा को ही सबका नियंता मानकर उसी पर अपनी श्रद्धा और भक्ति स्थिर की।

वे आरंभ से ही विचारों से ब्रह्म समाज और स्त्री-शिक्षा के परम हिमायती थे। जब वे अपनी आजीविका के प्रसंग में उत्तर प्रदेश से पंजाब गए, तब वहाँ पर उन्होंने हिंदी के प्रचार की दिशा में बहुत बड़ा कार्य किया। उत्तर प्रदेश में जो कार्य शिक्षा विभाग में रहते हुए राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने किया, वही कार्य पंजाब विश्वविद्यालय का असिस्टेंट रजिस्ट्रार रहते हुए नवीन चंद्र राय ने पंजाब में किया था। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाएँ स्मरणीय और उल्लेखनीय इसलिए है कि उन्होंने सर्वप्रथम पंजाब में 'फ़ीमेल नॉर्मल स्कूल' की स्थापना की और पंजाब विश्वविद्यालय के अंतर्गत हिंदी की 'रत्न भूषण' और 'प्रभाकर' परीक्षाओं का संचालन महिलाओं के लिए किया। ये परीक्षाएँ बाद में बहुत लोकप्रिय हुईं और महिलाओं के अतिरिक्त समग्र देश के पुरुषों ने भी इनका पूर्ण लाभ लिया।[3] आप जहाँ अनेक वर्ष तक ओरिएंटल कॉलिज लाहौर के प्रिंसिपल रहे, वहीं पंजाब यूनिवर्सिटी के फ़ेलो भी निर्वाचित हुए।

उन्होंने लाहौर में सब विषयों पर वार्तालाप करने के उद्देश्य से एक सत् सभा खोली थी। यह सभा धार्मिक और सामाजिक संस्था थी, जो लाहौर में 1866 ई. में बंगालियों और पंजाबियों द्वारा स्थापित की गई थी, जिसमें बाबू नवीनचंद्र राय, एस. पी. भट्टाचार्य, भानु दत्त बसंतराम और लाला बिहारी लाल प्रमुख थे। इस सभा के द्वारा आर्य समाज के सिद्धांतों का प्रचार किया गया। प्रचलित मान्यताओं की जगह बुद्धिवाद को बढ़ावा दिया गया और महिलाओं की सामाजिक अवस्था सुधारने की दिशा में भी प्रयास किया गया। ब्रह्म समाज भी इसी दिशा में कार्य कर रहा था, पर दोनों में प्रमुख भिन्नता भाषा के प्रश्न पर थी। ब्रह्म समाज ने अपने साहित्य का प्रचार अंग्रेज़ी अथवा हिंदी भाषा में किया। सत् सभा ने पंजाबी भाषा को गुरमुखी लिपि में प्रचारित किया, जबकि ब्रह्मसमाजी बाबू नवीन चंद्र राय ने शिक्षा और प्रशासनिक क्षेत्र में हिंदी को बढ़ावा दिया।

उर्दू की निवास भूमि कहे जाने वाले पंजाब में वे हिंदी पत्रकारिता के एक प्रकार से जनक थे। उन्होंने 'ज्ञान प्रदायिनी' और 'सुगृहिणी' नामक हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन/संचालन भी किया। 1866 ई. में उन्होंने 'ज्ञान प्रदायिनी' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। पहले यह पत्रिका उर्दू में निकली, पर बाद में यह विशुद्ध हिंदी की पत्रिका बनी। इस पत्रिका में ब्रह्मसमाजी विचारों के अलावा स्त्री-शिक्षा एवं ज्ञान की बातें प्रकाशित होती थीं।[4] 'ज्ञान प्रदायिनी' पत्रिका का संपादन वे स्वयं करते थे और 'सुगृहिणी' की संपादिका उनकी सुपुत्री हेमंत कुमारी चौधरी थीं, जो मासिक हिंदी पत्रिका के रूप में 1888 ई. में निकली थी। बांग्ला भाषा भाषी होते हुए भी उन्होंने हिंदी प्रचार के क्षेत्र में जो कार्य किया, वह सर्वथा अभिनंदनीय कही जा सकती है। ये दोनों पत्रिकाएँ 1894 ई. तक बंद हो चुकी थीं[5], पर हिंदी भाषा के प्रचार में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

बाबू नवीन चंद्र राय बांग्ला भाषी होते हुए भी हिंदी से अत्यंत प्रेम रखते थे। उन्होंने हिंदी में 'नवीन चंद्रोदय', 'सरल व्याकरण', 'निर्माण विद्या' (3 भाग), 'जल गति और जल स्थिति', 'वायु तत्व', 'स्थित तत्व और गति तत्व', 'आचारादर्श धर्म दीपिका', 'ब्रह्म धर्म के प्रश्नोत्तर' तथा 'लक्ष्मी-सरस्वती-संवाद' आदि अनेक पुस्तकें लिखीं।

शिक्षा विभाग से घनिष्ठ संबंध होने पर उन्होंने संस्कृत और हिंदी भाषा में अच्छी-अच्छी पुस्तकों की रचना की, जिनमें से बहुत-सी पुस्तकें पंजाब यूनिवर्सिटी में पढ़ाई जाती थीं।

वे जहाँ शुद्ध हिंदी के समर्थक थे, वहाँ उन्होंने पंजाब में विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार के रूप में शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में भी उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने पंजाब में जहाँ हिंदी पत्रकारिता के प्रेरणा स्रोत का कार्य सर्वथा श्रद्धा भाव से प्रेरित होकर किया, वही उस प्रदेश की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक जागृति के भी वे प्रथम सूत्रधार थे। अपनी 'सुगृहिणी' पत्रिका के माध्यम से पंजाब में नारी जागरण का जो कार्य उन्होंने किया, वह अविस्मरणीय है।

बाबू नवीनचंद्र राय अपने समय के प्रतिष्ठित और विद्वान व्यक्ति थे। उनकी गणना उस समय के प्रतिष्ठित हिंदी सेवियों और पत्र संपादकों में की जाती थी। उन्होंने पंजाब जैसे उर्दू बहुल प्रांत में हिंदी की ज्योति जगाई थी, जो कि पूरे हिंदी जगत् के लिए चर्चा का विषय था। भारतेंदु हरिश्चंद्र से उनके बहुत ही आत्मीय संबंध थे। जैसा कि सर्वविदित ही है कि भारतेंदु जी की गणना हिंदी के उज्ज्वल नक्षत्र के रूप में की जाती है और अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने हिंदी को एक नई दशा एवं दिशा

प्रदान की थी। भारतेंदु जी की पत्रिका के सहायक संपादक मंडल में किसी भी व्यक्ति का नाम शामिल होना, उसके लिए बहुत ही प्रतिष्ठा की बात थी और पूरे हिंदी जगत् में उसका बहुत ही विशिष्ट होना था। बाबू नवीनचंद्र राय भारतेंदु जी की पत्रिका 'श्रीहरिश्चंद्रचंद्रिका' के सहायक संपादक थे और सबसे विशिष्ट बात यह थी कि उनका नाम केंद्र में रखा गया था।

बाबू नवीनचंद्र राय न केवल साधारण हिंदी भाषा प्रचारक एवं उसके साहित्य के उन्नायक थे, बल्कि हिंदी के वैज्ञानिक साहित्य के क्षेत्र में भी उनका योगदान अति विशिष्ट था। हिंदी में उन्होंने 'जल गति और जल स्थिति', 'वायु तत्व', 'स्थित तत्व और गति तत्व', 'निर्माण विद्या' (3 भाग) इत्यादि कई विज्ञान विषयक ग्रंथों की रचना की, जो कि उस समय बहुत बड़ी बात थी।

हिंदी भाषा में अभियांत्रिकी लेखन के जनक

बाबू नवीनचंद्र राय का एक विशिष्ट कार्य यह है कि उन्होंने अभियांत्रिकी पर हिंदी भाषा में सर्वप्रथम पुस्तक लिखने का कार्य किया। उन्होंने 1882 ई. में निर्माण विद्या नामक पुस्तक तीन भागों में लिखी। यह पुस्तक पंजाब विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए लिखी गयी थी और वहीं से प्रकाशित भी हुई थी। इस पुस्तक को लिखने का अभिप्राय उन्होंने स्वयं पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि 'यह पुस्तक निर्माण विद्या का, जो श्रीमन्महाराज जम्मू कश्मीराधिपति के निमित्त अनुवादित हुई थी, प्रथम प्रकरण है। इसका विषय हेनरी ला साहब कृत अंग्रेज़ी पुस्तक से लिया गया है। अब यह पंजाब यूनिवर्सिटी के व्यय से मुद्रित और प्रकाशित हुई है। इसके अध्ययन से विद्यार्थी को निर्माण के अन्यान्य प्रकरणों में यथा गृहादि, सड़क, पुल, नहेर प्रभृति में प्रवेश का अधिकार हो जायेगा।'[6]

बाबू नवीन चंद्र राय अपने अनुष्ठान के बड़े दृढ़ और बहुत ही परोपकारी पुरुष थे। वे जिस प्रकार सब विषयों के प्रसिद्ध पंडित थे, वैसे ही सदाचारी, जितेंद्र और दानशील

भी थे। वे सदा दीन-दुखी लोगों की सहायता करते थे। उन्होंने गरीबों को औषधि देने के लिए कई दवाखाने खोल रखे थे। जन समुदाय के उपकार के कामों में सदा दत्तचित्त रहते थे। परिश्रमी तो इतने थे कि वृद्धावस्था में भी नवीन विषयों को खोजते समय पाठशाला में पढ़ने वाले बच्चों की तरह परिश्रम करते थे। इनका सिद्धांत यह था कि ज्ञान और विद्या के समुद्र का पारावार नहीं है, इसलिए मनुष्य को यावत्जीवन विद्या उपार्जन में परिश्रम करना चाहिए।

1880 ई. में इन्होंने सरकार से पेंशन ली और उसके बाद रतलाम रियासत के दीवान हुए, पर वहाँ से भी शीघ्र ही अवकाश ले लिया और खंडवा के पास एक गाँव बसाकर उसमें रहने लगे। इस गाँव का नाम उन्होंने 'ब्रह्म गाँव' रखा था, क्योंकि इसमें अधिकतर ब्राह्मण ही निवास करते थे। इसी गाँव में 1890 ई. में इनका देहावसान हुआ।

बाबू नवीनचंद्र राय के जीवन एवं कार्यों का अध्ययन करने पर यह बात प्रकाश में आती है कि उन्होंने उस युग में हिंदी भाषा के प्रचार एवं साहित्य संवर्धन का सराहनीय कार्य किया। यद्यपि आरंभ में उनकी आर्थिक दशा काफ़ी खराब थी, तथापि उन्होंने अपने अध्यवसाय से यह सिद्ध कर दिया कि यदि व्यक्ति में लगन हो, तो वह कुछ भी प्राप्त कर सकता है। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका योगदान सर्वदा प्रशंसनीय था और स्त्री-शिक्षा के लिए उन्होंने पंजाब में जो किया, उसके कारण वे हमेशा याद रखे जायेंगे। हिंदी में साधारण विषयों के अलावा विज्ञान विषयक पुस्तकों का लेखन कर उन्होंने जो कार्य किया, उसके कारण उन्हें हिंदी भाषा में अभियांत्रिकी का प्रथम लेखक होने का गौरव प्राप्त हुआ। निःसंदेह उन्हें भी हिंदी जगत् में वही पहचान मिलनी चाहिए, जो अन्य प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकारों को मिली है।

संदर्भ सूची :

1. दास, श्यामसुंदर सं. हिंदी कोविद रत्नमाला, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1909, पृष्ठ 16
2. सुमन, क्षेमचंद्र, दिवंगत हिंदी सेवी, सगुन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ 277
3. दास, श्यामसुंदर सं. हिंदी कोविद रत्नमाला, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1909, पृष्ठ
4. सरस्वती पत्रिका, भाग 58, सं. 12, दिसंबर, 1957, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ 389
5. दास, राधाकृष्ण, हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास, ना. प्र. सभा, वाराणसी, 1894, पृष्ठ 68
6. राय, नवीनचंद्र, निर्माण विद्या, प्रथम भाग, अंजुमने पंजाब प्रेस, लाहोर, 1882, भूमिका

rkdhistory@gmail.com

हिंदी साहित्य के दधीचि और अमर शहीदों के चारण : श्रीकृष्ण सरल

- डॉ. स्वाति कपूर चड्ढा
पुणे, भारत

विश्व में सबसे अधिक महाकाव्य लिखने वाले हिंदी साहित्यकार, जिनकी लेखनी का एक-एक शब्द पढ़ने वाले के मन में देशभक्ति की ज्योति प्रज्वलित करने में सक्षम है, राष्ट्रभक्ति के दुर्लभ-दृष्टांत लिखने के कारण 'जीवित शहीद' की उपाधि से सम्मानित, स्वतंत्रता संग्राम की महत्त्वपूर्ण, किंतु अचर्चित इकाई, अत्यंत सादे-सरल व्यक्तित्व के स्वामी का नाम है - प्राध्यापक श्रीकृष्ण सरल।

श्रीकृष्ण सरल ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने क्रांतिकारी साहित्य, बाल-साहित्य और राष्ट्रभक्ति साहित्य क्षेत्र की महाकाव्य, उपन्यास, नाटक, निबंध, गज़लें, कविताएँ, संस्मरण आदि अनेक विधाओं की रचना की। जीवन पर्यंत कठोर साहित्य-साधना में लीन रहकर उन्होंने अत्यंत प्रेरणादायक साहित्य का सृजन किया है, किंतु यह आश्चर्य की स्थिति है कि इतने महान् ग्रंथों तथा उत्कृष्ट रचनाओं का सृजन करने के उपरांत भी, उन्हें वह प्रसिद्धि तथा पहचान नहीं मिली, जिसके वे अधिकारी थे।

वे एक युगद्रष्टा साहित्यकार थे। 20वीं और 21वीं, इन दो शताब्दियों के बीच अब तक ऐसी सृजनात्मक शक्ति और एक साथ इतने क्रांतिकारी ग्रंथों के सृजन का विश्व कीर्तिमान स्थापित करने वाले साहित्यकार उनके अतिरिक्त शायद ही कोई हो। इस धरती पर माँ शारदा की मूक साधना करने वाले सहज साधकों और महान् सर्जकों की यदि सूची बनाई जाए, तो अपने खून की लाली में कलम डुबोकर भारत के स्वाधीनता संग्राम की कहानी और महान् देशभक्तों व शहीदों के त्याग का इतिहास अपने ग्रंथों और महाकाव्यों के पृष्ठों पर रचने वाले साहित्यकारों में से शायद सरल जी एक ऐसे इकलौते साहित्यकार हैं, जिनकी साहित्य-साधना के मूल्यांकन की ओर सुधी आलोचकों का ध्यान नहीं गया। उनके लेखन और संघर्षशील साधना का मूल्यांकन करते हुए महान् क्रांतिकारी पं. परमानंद जी ने कहा था - "श्रीकृष्ण सरल जीवित शहीद है, उनकी साहित्य-साधना तपस्या है, क्रांतिकारी लेखन के लिए उनके जीवन का हर पल तिल-तिल कर उन्हें शहादत की ओर ले जा रहा है।"

सरल जी के सुदूर पूर्वज ज़मींदार थे। अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ते हुए वे विद्रोही के रूप में मारे गए और फाँसी पर लटका दिए गए। ग्राम वासियों की मदद से एक गर्भवती महिला बचा ली गई थी, उसी महिला के गर्भ से उत्पन्न बालक से पुनः उस परिवार की वंश वृद्धि हुई। उसी वंश में 1 जनवरी, 1919 को एक निम्न मध्यमवर्गीय किंतु अत्यंत प्रतिष्ठित सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में अशोक नगर, गुना (मध्य प्रदेश) में सरल जी का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम पंडित भगवती प्रसाद बिरथरे एवं माता का नाम श्रीमती यमुना देवी था। जब सरल जी केवल 5 वर्ष के थे, तब उनकी माताजी का स्वर्गवास तीर्थाटन के क्रम में पावन नगरी अयोध्या में हो चुका था। सरल जी को बचपन से ही धार्मिक परिवेश प्राप्त हुआ। अशोकनगर के पास ही ग्राम धौरा में पारिवारिक कृषि भूमि थी, जो कि वर्तमान में भी उनके वंशजों के पास है। सरल जी के परिवार को वर्षा के चार महीने पशुधन को लेकर श्यामाटोरी के जंगलों में रहना होता था, जहाँ अक्सर शेर की दहाड़ सुनने को मिलती थी। ऐसा लगता है कि उस समय अक्सर सरल जी द्वारा सुनी जाने वाली वनराज की

वह गर्जना उनके क्रांति साहित्य में विद्यमान है।[1]

श्री सरल जी में देशप्रेम और क्रांतिकारियों के प्रति अनुराग बचपन से ही था। सरल जी ने 'सरल रामायण' महाकाव्य में अपने आत्मकथ्य में बताया है कि - "जब मैं दस-ग्यारह वर्ष की उम्र का था और अशोकनगर माध्यमिक विद्यालय का छात्र था, उस समय राजगुरू जी को अंग्रेज़ों द्वारा गिरफ़्तार करके ले जाया जा रहा था, भीड़ में मैं भी खड़ा था। जब लोगों ने 'वंदेमातरम्' के नारे लगाए, तो राजगुरू जी ने भी 'वंदेमातरम्' के नारे लगाए। यह देखकर अंग्रेज़ सिपाहियों ने राजगुरू जी को धकेल दिया। यह देखकर मुझे बहुत बुरा लगा और मैंने उस अंग्रेज़ सिपाही के सर पर एक पत्थर निशाना दे कर मारा। निशाने पर मेरा हाथ अच्छी तरह सधा हुआ था। मेरे द्वारा संधान करके फेंका गया पत्थर उस अंग्रेज़ सिपाही के माथे पर कस कर लगा।" फिर क्या था, बालक सरल को अंग्रेज़ों द्वारा बुरी तरह से पीटा गया। बालक सरल अधमरा होकर वही गिर पड़ा, तब अंग्रेज़ उन्हें मरा हुआ समझकर छोड़कर चले गए, क्योंकि उस वक्त ट्रेन भी चल पड़ी थी। जीवन पर्यंत उस पिटाई के घाव उनके शरीर के साथ मन-मस्तिष्क पर भी बने रहे, जिसे वे गर्व से अपने लिए पदक मानते थे।

श्री सरल जी ने गुना के साहित्यिक वातावरण से दिशा प्राप्त की। काव्य-सृजन प्रतिभा तो उनमें 10 वर्ष की आयु से ही दिखने लगी थी। अशोक नगर में अध्ययन के उपरांत सरल जी ने गुना में अध्ययन एवं अध्यापन किया तथा गुना से ही उनकी विभिन्न साहित्य सम्मेलनों की यात्रा आरंभ हुई, जो निर्बाध गति से संपूर्ण राष्ट्र में अविराम चलती रही। उनके प्रखर साहित्य को पढ़ने से यह विश्वास हो जाता है कि गुना की लाल माटी का लावा उनके क्रांतिकारी साहित्य के माध्यम से युवाओं की रगों में रक्त की हिलोरें हमेशा ही मारता रहेगा। सरल जी की लेखन यात्रा हास्य रस से आरंभ हुई। प्रारंभ में उन्होंने हास्य रस से ओत-प्रोत कविताएँ लिखीं, धीरे-धीरे 1962 में भारत-चीन युद्ध के समय तक वे क्रांतिकारी साहित्य लिखना आरंभ कर चुके थे। विभिन्न क्रांतिकारियों के सान्निध्य का लाभ भी उन्हें मिलता रहा। जीवन पर्यन्त कठोर साहित्य साधना में रत सरल जी 13 वर्ष की अवस्था से ही क्रांतिकारियों से परिचित होने के कारण शासन से दंडित हुए। महर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन से प्रेरित, शहीद भगतसिंह की माता श्रीमती विद्यावती जी के सान्निध्य एवं विलक्षण क्रांतिकारियों के समीप आने पर श्री सरल जी ने प्राणदानी पीढ़ियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को अपने साहित्य का विषय बनाया। श्री सरल जी ने राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन के कहने पर युवाओं को संदेश देने के उद्देश्य से क्रांतिकारियों के जीवन पर महाकाव्य का लेखन शुरू किया। भगतसिंह पर जब उन्होंने महाकाव्य लिखा, तब भगतसिंह की माता जी श्रीमती विद्यावती देवी ने उन्हें शहीद चंद्रशेखर पर भी महाकाव्य लिखने को कहा। इस प्रकार क्रांतिकारी साहित्य के सृजन में प्रामाणिकता लाने के उद्देश्य से उन्होंने अपना पूरा जीवन यायावरी में बिताया। वे हमेशा कहते थे -

"मैं शहीदों का चारण, उनके यश गाया करता हूँ।
जो कर्ज़ राष्ट्र का खाया है, बस उसे चुकाया करता हूँ।"

सरल जी ने लेखन में कई विश्व कीर्तिमान स्थापित किए। उन्होंने 124 ग्रंथों का प्रणयन किया, सर्वाधिक क्रांति-लेखन और सर्वाधिक 12 महाकाव्यों की रचना का श्रेय भी श्रीकृष्ण सरल जी को ही प्राप्त है। सरल जी की पद्य रचनाएँ तो फिर भी हिंदी साहित्यकारों के बीच कहीं-न-कहीं परिचित है और उनका बहुत न सही, कुछ मूल्यांकन ज़रूर हुआ है, किंतु उनकी गद्य रचनाएँ हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में नितांत अपरिचित और गुमनाम-सी है। आश्चर्य का विषय यह है कि श्रीकृष्ण सरल द्वारा रचित अधिकांश साहित्य महान् क्रांतिकारियों को समर्पित है तथा उनकी ये बेजोड़ कृतियाँ एक देशभक्त की सच्ची राष्ट्र-अर्चना कही जा सकती हैं, फिर वे हिंदी साहित्य के समीक्षकों से अछूती कैसे रह गईं।

श्रीकृष्ण सरल जी का रचना संसार अति व्यापक है। उन्होंने भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, सुभाषचंद्र, जय

सुभाष, शहीद अशफ़ाक उल्ला खाँ, विवेकश्री, स्वराज्य तिलक, अंबेडकर दर्शन, क्रांतिज्वाल कामा, बागी करतार, क्रांतिगंगा, कवि और सैनिक, महारानी अहिल्याबाई, अद्‌भुत कवि सम्मेलन, जीवंत आहुति, महाबलि, सरल रामायण जैसे अनमोल महाकाव्यों तथा खंडकाव्यों का सृजन किया है। इसी तरह गद्य में संस्कृति के आलोक स्तंभ, हिंदी ज्ञान प्रभाकर, संसार की महान् आत्माएँ (निबंध संकलन), संसार की प्राचीन सभ्यताएँ (निबंध संकलन), विचार और विचारक देश के दीवाने, क्रांतिकारी शहीदों की संस्मृतियाँ (संस्मरण), शिक्षाविद् सुभाष, कुलपति सुभाष, सुभाष की राजनैतिक भविष्यवाणियाँ, नेताजी के सपनों का भारत, नेताजी सुभाष दर्शन, राष्ट्रपति सुभाषचंद्र बोस, नेताजी सुभाष जर्मनी में, सेनाध्यक्ष सुभाष, देश के प्रहरी, बलिदान गाथाएँ - (कहानी-संग्रह), क्रांतिकथाएँ - भाग 1 एवं भाग 2 (कहानी-संग्रह), देश के दुलारे क्रांतिवीर, क्रांतिकारी कोश - भाग 1 से लेकर भाग 5 (कहानी-संग्रह), मेरी सृजन यात्रा इत्यादि उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

स्वतंत्रता संग्राम के अनन्य पुजारी श्रीकृष्ण सरल जी ने चंद्रशेखर आज़ाद जी के बारे में अत्यंत परिश्रमपूर्वक शोध करके इतिहास के तथ्यों का संकलन करके 'चंद्रशेखर आज़ाद' नामक उपन्यास की रचना की, नेताजी सुभाषचंद्र बोस और आज़ाद हिंद आंदोलन पर आधारित कृति 'जय हिंद' का लेखन किया है। श्रीकृष्ण सरल जी कहते हैं कि नेताजी पर लगभग दस हज़ार पृष्ठ तथा पंद्रह कृतियाँ लिख चुकने के पश्चात् भी मैं महसूस करता रहा था कि अभी मुझे वह चीज़ लिखनी है, जो नेताजी के समस्त प्रभाव को थोड़े में समेट सके और उनका सही चित्र लोगों के सामने रख सके। 'जय हिंद' उसी दिशा में किया गया एक प्रयास है।

उन्होंने सन् 1757 से लेकर भारत में गोवा की आज़ादी सन् 1961 तक के स्वाधीनता संग्राम की महागाथा को अपनी लेखनी से कलमबद्ध कर 5 खंडों में प्रकाशित क्रांतिकारी कोश को अपनी लेखनी से कलमबद्ध किया। उनके 'चटगाँव का सूर्य' नामक उपन्यास में सूर्यसेन उर्फ़ मास्टर दा जैसे वीर क्रांतिकारी के नेतृत्व में अनेकों किशोर क्रांतिकारियों की वीरता प्रदर्शित की गई है, तो 'बाघा जतिन' नामक उपन्यास में सरल जी ने बाघा जतिन (जतीन्द्रनाथ मुखर्जी) के जीवन पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार 'दूसरा हिमालय' नामक उपन्यास में उन्होंने लोकमान्य तिलक के जीवनसंघर्ष और उनके द्वारा किए गए महत्त्वपूर्ण कार्यों को प्रकाशित किया है तथा 'राजगुरु' नामक उपन्यास में राजगुरु की देशभक्ति और बलिदानों का परिचय पाठक वर्ग से करवाया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देशभक्ति एवं क्रांतिकारी लेखन उनका वैशिष्ट्य रहा है, जो उनकी समस्त रचनाओं में प्रतिबिंबित होता है।

सरल जी ने देशभक्तों और क्रांतिकारियों पर एक-दो नहीं, बल्कि अनेक प्रकार का साहित्य सृजन किया है। देश की स्वतंत्रता के लिए हुई क्रांति का पूरा इतिहास लिखने वाले वे अकेले साहित्यकार हैं। उनकी लिखी रचनाएँ पढ़कर कोई सहज ही समझ सकता है कि विश्व की महान् विभूतियों में गणना करने योग्य महान् साहित्यकार श्रीकृष्ण सरल को अपने ही देश में अपेक्षित सम्मान, पहचान और सुयश नहीं मिला। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि आधुनिक भारत के रूप में क्रांतिकारियों का विश्वकोश कहा जाने वाला बेजोड़ महाकाव्य 'क्रांतिगंगा' लिखने वाले सरल जी के व्यक्तित्व में महर्षि वेदव्यास और गोस्वामी तुलसीदास दोनों के व्यक्तित्व का प्रतिबिंब हमें एक साथ दिखाई देता है। इस दृष्टि से उनका तुलसी के जीवन और रामकथा पर केंद्रित महाकाव्य 'तुलसीमानस' आधुनिक युग की रामायण कहलाता है। इसी प्रकार उन्होंने अकेले सुभाषचंद्र बोस पर ही 16 ग्रंथ प्रकाशित किए हैं।

वे रचना कर्म को सामाजिक दायित्व और संशक्ति से जोड़कर देखते हैं। इसलिए वैयक्तिक अनुभूति अथवा चेतना को रचना के धरातल पर सार्वभौमिक बनाकर ही देखना चाहते हैं। कोई भी विचारधारा यदि वह

व्यापक कल्याण के अनुकूल नहीं है, तो उनकी दृष्टि में वह रचनाकर्म में बाधक ही होगी। इसलिए वे मानते हैं कि लेखक की प्रतिबद्धता विचारधारा से नहीं आंतरिक ईमानदारी और मानवीय मूल्यों के साथ होनी चाहिए। श्रीकृष्ण सरल जी ने 'मेरी सृजन यात्रा' में लिखा है कि 'मैंने अपने जीवन का यही उद्देश्य बताया है कि मैं केवल उन लोगों पर लिखूँ, जिन्होंने देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया और वे ही सर्वाधिक उपेक्षित रहे। मेरे जीवन का हर क्षण उन्हीं के चिंतन में बीता है, इसलिए अपने विषय में सोचने और लिखने का मुझे अवसर ही नहीं मिला।' इसके अलावा उन्होंने 'मेरी सृजन यात्रा' में अपनी रचना प्रक्रिया के उद्देश्य के बारे में कहा है कि "मैंने जो कुछ भी लिखा है, वह स्वांत: सुखाय नहीं लिखा है। मैंने सोद्देश्य लिखा है। मेरे लेखन का उद्देश्य ही यह रहा है कि समाज में परिवर्तन हो और समाज अच्छा बने।"

श्रीकृष्ण सरल जी की रचना प्रक्रिया का उद्देश्य था - देश की आज़ादी के लिए अपना तन-मन अर्पित करने वाले अमर शहीदों और क्रांतिकारियों के बलिदानों और त्याग को आम जनता के सामने लाकर उनके प्रति आदर प्रकट करना, जनता में देशप्रेम और देशभक्ति का भाव जागृत करना, युवा पीढ़ी में उत्साह भरना और उन्हें देशभक्ति, ईमानदारी, त्याग, समर्पण के सच्चे संस्कार देना। उन्होंने अपने अमूल्य साहित्य द्वारा भारतीय जनमानस का देश के स्वर्णिम अतीत से साक्षात्कार कराया है। उनका साहित्य देशभक्ति की ऊर्जा का अक्षय स्त्रोत है।

श्रीकृष्ण सरल जी ऐसे अनोखे व्यक्तित्व का नाम है, जो भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी कलम को तलवार बनाकर जूझते रहे, जिन्होंने अमर क्रांतिकारियों की गाथाएँ जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से साहित्य-सृजन किया, जिन्होंने अपनी पुस्तकें स्वयं के खर्चे पर प्रकाशित करने के लिए अपनी ज़मीन-जायदाद तक बेच दी, जिन्होंने अपनी पुस्तकें पूरे देश में घूम-घूम कर लोगों तक पहुँचाई और स्वयं के व्यक्तिगत प्रयासों से अपनी पुस्तकों की 5 लाख प्रतियाँ बेच दीं, किंतु अपने लिए कुछ नहीं रखा। पुस्तकों को बेचकर सरल जी को जो धनराशि मिली, उसे वे चुपचाप शहीदों के परिवारों के लिए समर्पित करते रहे। प्रख्यात साहित्यकार होने के बाद भी उनकी यही आकांक्षा रही कि उन्हें महाकवि या महान् साहित्यकार के नाम से नहीं, बल्कि शहीदों के चारण के नाम से जाना जाए।

क्रांति कथाओं का शोध पूर्ण लेखन करने के संदर्भ में स्वयं के खर्च पर उन्होंने 12 देशों की यात्रा की। उन्होंने ये यात्राएँ विशेषकर नेताजी सुभाषचंद्र बोस पर अनेक महत्त्वपूर्ण गद्य रचनाएँ लिखने के संदर्भ में गुमनाम तथ्यों को खोजने के लिए कीं। पुस्तकों के लिखने और उन्हें प्रकाशित कराने में सरल जी की अचल संपत्ति से लेकर उनकी पत्नी के आभूषण भी बिक गए। बहुत बार सरल जी को हृदयाघात हुआ, किंतु उनकी कलम नहीं रुकी। अमर शहीदों की चारण की भूमिका का अच्छी तरह निर्वाह करते हुए सरल जी ने अपनी मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व सुभाषचंद्र बोस के जीवन पर आधारित उपन्यास 'इतिहासपुरुष सुभाष' पूर्ण किया।

जीवित शहीद की उपाधि को सार्थक करने वाले अमर साहित्यकार श्री सरल को सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि ऐसे प्रयास किए जाए, ताकि उनका यह महान् कार्य तथा ओजस्वी विचार जन-जन तक पहुँचे। अमर साहित्यकार श्री सरल जी का समस्त लेखन अब हिंदी साहित्य के इतिहास की अमूल्य धरोहर है। उनकी रचनाएँ कालजयी एवं अमर हैं। सरल जी का साहित्यिक प्रदेय उत्कृष्ट साहित्य की अजर-अमर मिसाल है।

वर्तमान परिदृश्य में श्रीकृष्ण सरल जी द्वारा रचित देशप्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत तथा अमर क्रांतिकारियों के जीवन की संघर्ष गाथा को व्यक्त करने वाले साहित्य का अत्यंत महत्त्व है। आज देश में भ्रष्टाचारियों एवं देशद्रोहियों की बढ़ती संख्या का मूल कारण क्या यह नहीं है कि आज हमने अपने ही देश के उन अमर शहीदों की कुर्बानियों और बलिदानों को भुला दिया है। शहीदों की कुर्बानियों एवं उनके संघर्ष पर लिखे गए

साहित्य को नई पीढ़ी के पाठ्यक्रम में यथोचित स्थान नहीं दिया जाता है। नई पीढ़ी को देश के स्वाधीनता संग्राम का सच्चा इतिहास पढ़ने को नहीं मिलता है। क्या हम यह भूल गए हैं कि देशप्रेम और आपसी भाईचारे और एकता के लिए देशभक्ति का संस्कार ज़रूरी है, देश की स्वाधीनता के लिए मर-मिटने वाले अमर शहीदों और क्रांतिकारियों के बलिदान को भुलाने का ही यह परिणाम है कि आज के नौजवानों की धमनियों में बहता रक्त अपने देशवासियों की पीड़ा को देखकर भी नहीं खौलता। देश सेवा या देश के प्रति कुछ कर गुज़रने की भावना आज लुप्तप्राय ही होती जा रही है। इन परिस्थितियों में श्रीकृष्ण सरल जी द्वारा रचित साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण साबित हो सकता है।

सरल जी अपने क्रांतिकारी साहित्य के द्वारा राष्ट्र के प्रति संवेदना और प्यार जगाते हैं, युवाओं में नया जोश और उत्साह भरते हैं तथा जीवन की चुनौतियों से रूबरू कराकर उनसे निपटने की हिम्मत देते हैं। उनके द्वारा रचित अमर शहीदों की संघर्ष गाथा और बलिदान की कहानियाँ आज की युवा पीढ़ी की चेतना जागृत करने में सक्षम हैं। उनके द्वारा रचित क्रांतिकारी साहित्य के मार्मिक विवरणों को पढ़कर सहज ही एहसास हो जाता है कि आज हम जिस आज़ादी को भोग रहे हैं, वह किस कीमत और किन बलिदानों पर हमें प्राप्त हुई है।

श्रीकृष्ण सरल स्वाधीनता संग्राम सेनानी रहे हैं, वे राष्ट्रकवि हैं, राष्ट्ररत्न हैं, प्रबुद्ध गद्यकार और इतिहासकार हैं, राष्ट्र की आत्मा की आवाज़ हैं, क्रांतिकारियों के सच्चे साधक हैं, देश की आत्मा की आवाज़ हैं, इंकलाब का स्वर हैं, लेकिन इस महान् देशभक्त और तपस्वी साहित्यकार की सृजन-साधना का मूल्यांकन करने में हमारा देश चूक गया। वे विश्व-पटल पर एक महान् विभूति हैं और सारे अलंकरण और सम्मान उनके कृतित्व के सामने बौने से लगते हैं।

क्रांतिकारियों और अमर शहीदों के बलिदान को केन्द्र में रखकर लिखा गया उनका संपूर्ण साहित्य यथार्थ की ठोस ज़मीन के आधार पर विरचित है। सरल जी की रचनाओं की मुख्य विशेषताएँ हैं - देशभक्ति व राष्ट्रीयता, नैतिकता, ऐतिहासिक चेतना, मानवीय मूल्यों की स्थापना और जनमानस की अभिव्यक्ति। ये पाँचों तत्व उनकी साहित्य-सृष्टि के पंच तत्व हैं और कहीं स्वतंत्र रूप में तो कहीं सम्मिलित रूप में प्रकट होकर ये तत्व उनकी रचनाओं को अलंकृत करते हैं। उन्होंने अपने देशभक्तिपूर्ण साहित्य के माध्यम से देश के नौजवानों में जोश, उत्साह और देशभक्ति का भाव फूँकने के जितने व्यक्तिगत प्रयास किए, वे कई संस्थाएँ मिलकर भी नहीं कर सकतीं। वे वास्तव में 'हिंदी साहित्य के दधीचि' थे, जो आज भी गुमनामी के अंधेरों में गुम है। आज की तारीख में हम भारतीयों का फ़र्ज़ है कि उनके इस महत्त्वपूर्ण योगदान को आम जनता विशेषकर नई पीढ़ी से रूबरू कराएँ, ताकि उनकी मूक साधना सफल सिद्ध हो सके।

संदर्भ ग्रंथ :

1. लोकमंगल पत्रिका, अंक : जनवरी-मार्च 2012, ग्वालियर साहित्य अकादमी
2. दैनिक भास्कर समाचार-पत्र, दिनांक 5 जनवरी, 2011
3. सरल चेतना वेबसाइट
4. मेरी सृजन यात्रा - लेखक श्रीकृष्ण सरल
5. सरल रामायण, लेखक - श्रीकृष्ण सरल, बलिदान भारती प्रकाशन, उज्जैन
6. http://www.saralkavya.blogspot.in
7. हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं श्रीकृष्ण सरल, राजेश्वरी प्रकाशन, गुना, म.प्र.

s.chadha@ncl.res.in

श्रद्धांजलि

33. भारतीयता को समर्पित हिंदी साधक : प्रो. हरिशंकर आदेश - डॉ. दीपक पाण्डेय

34. जादुई अंगुलियाँ और कोकिल कंठ - धीरा वर्मा : एक अद्‌भुत व्यक्तित्व - श्रीमती भावना सक्सैना

35. शिकस्त पर फ़तह का परचम लहराता लेखक : श्री कृष्ण बलदेव वैद - डॉ. दत्ता कोल्हारे

36. प्रो. विजय गंभीर : एक शैक्षिक जीवन-यात्रा - प्रो. हेमंती बैनर्जी

37. डॉ. वशिनी शर्मा : नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा - श्रीमती सुनीता पाहूजा

भारतीयता को समर्पित हिंदी साधक : प्रो. हरिशंकर आदेश
(जन्म - 7 अगस्त, 1936 एवं मृत्यु - 27 दिसंबर, 2020)

- डॉ. दीपक पाण्डेय
नई दिल्ली, भारत

यह गर्व का विषय है कि भारत और भारत से बाहर भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति का वैभव लोगों में लोकमंगल की भावना को प्रतिस्थापित कर रहा है। वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा और साहित्य निरंतर समृद्धि की ओर अग्रसर है। आज विश्व के अनेक देशों में हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में सृजन हो रहा है। अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड, डेनमार्क, जापान आदि देशों में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ सृजनात्मक साहित्य की समृद्ध परंपरा विद्यमान है और इन देशों के हिंदी साहित्य सेवी हिंदी साहित्य के अग्रणी रचनाकार हैं। इन्हीं में चर्चित नाम त्रिनिडाड एवं टोबेगो को कर्मभूमि बनाने वाले हिंदी साधक प्रो. हरिशंकर आदेश का भी है।

त्रिनिडाड एवं टोबेगो कैरेबियन सागर में स्थित द्वीप हैं, जो 1962 में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की गुलामी से आज़ाद होकर स्वतंत्र राष्ट्र बना। इस देश से भारतीयों का संबंध शर्तबंदी प्रथा अर्थात् गिरमिट प्रथा के अंतर्गत भारतीय मज़दूरों के आगमन से जुड़ता है। 19वीं शताब्दी में ब्रिटेन उपनिवेशवादी शासक, भारतीय मज़दूरों को गिरमिटिया प्रथा के अंतर्गत विश्व के अनेक देशों में ले गए, जिनमें - मॉरीशस, अफ़्रीका, गयाना, सूरीनाम, फ़िजी, त्रिनिडाड प्रमुख हैं। इतिहास से प्राप्त जानकारी के अनुसार 1845 में भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों का पहला जत्था 'फ़तह-अल-रज़ाक' से त्रिनिडाड द्वीप पर पहुँचा था और यह क्रम 1917 तक चला, जिससे 1845 से 1917 तक लगभग डेढ़ लाख भारतीय मज़दूर गिरमिटिया प्रथा या शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत इस द्वीप में आए। उपनिवेशवादी ताकतें इन मज़दूरों को देश के गन्ना, कोको, कॉफ़ी, नारियल आदि बागानों के उत्पादन उपक्रमों में काम करने के लिए लाई थीं। समय और परिस्थितियों के कारण अधिकांश भारतीय मज़दूरों ने त्रिनिडाड को ही अपना लिया। आज त्रिनिडाड में 46% भारतीय मूल के लोग हैं। समय के थपेड़ों के साथ भारतीय मज़दूरों और उनकी संतानों की भाषा परिवर्तित होती गई और स्थानीय भाषा उनके कार्य-व्यवहार में प्रवेश कर गई, पर वे भारतीय संस्कृति से जुड़े रहे। त्रिनिडाड में भारतीयता को जीवंत रखने में अनेक लोगों का योगदान है। इसी क्रम में त्रिनिडाड, कनाडा, अमेरिका आदि देशों में भारतीय संगीत, साहित्य, भाषा, कला एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार और उसको लोकप्रिय बनाने में प्रो. हरिशंकर आदेश जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रो. हरिशंकर आदेश द्वारा भारतीयता के संवर्धन-संरक्षण के प्रति समर्पण भाव के कारण ही त्रिनिडाड, कनाडा, अमेरिका में उन्हें बहुत सम्मान से 'गुरुजी' नाम से जाना जाता है।

प्रो. आदेश जी का त्रिनिडाड से परिचय, भारत सरकार द्वारा त्रिनिडाड में स्थित उच्चायोग में सन् 1966 में नियुक्ति से होता है। उन्होंने अपने कार्यकाल में त्रिनिडाड के कोने-कोने में हिंदी और भारतीय साहित्य, कला, संगीत, संस्कृति के प्रति लोगों में नए उत्साह को भरा। त्रिनिडाड के सेवाकाल में किए कार्यों और दायित्व-निर्वहन के कारण त्रिनिडाड-समाज ने उनको भारत के सच्चे एम्बेसेडर के रूप में देखा और उन्हें त्रिनिडाड को ही अपनी कर्मस्थली बनाने के लिए बाध्य किया। स्थानीय लोगों के प्रेम के कारण उन्होंने निश्चय किया कि वे पूर्ण समर्पण के साथ भारत-माता की सच्ची-सेवा के उद्देश्य से त्रिनिडाड को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाएँगे और पूरी

निष्ठा से इस द्वीप में भारतीयता को पुष्पित-पल्लवित करने में सर्वस्व होम कर देंगे और वास्तव में उन्होंने अपने निश्चय का निर्वाह किया है। आदेश जी ने अपने उद्देश्य के लिए 'भारतीय विद्या संस्थान' की स्थापना की, जो भारतीय संगीत, हिंदी, संस्कृत, भारतीय धर्म-दर्शन तथा आध्यात्मिक एवं वैदिक साहित्य के अध्ययन-अध्यापन और भारतीय संस्कृति के संवर्धन के लिए कृत-संकल्पित है। 'भारतीय विद्या संस्थान' त्रिनिडाड के साथ-साथ अमेरिका, कनाडा एवं अन्य देशों में अपने उद्देश्य को पूरा करने के 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना से लोक-कल्याणकारी कार्यों के लिए सक्रिय रहा है।

प्रो. हरिशंकर आदेश भारतीय संस्कृति के सच्चे साधक रहे हैं। संगीत में निपुण एवं विशेषज्ञता के धनी, सृजनशीलता एवं कल्पनाशीलता से ओतप्रोत, भारतीय अध्यात्म के आधिकारिक विद्वान, कुशल नेतृत्व क्षमता से संपन्न व्यक्तित्व के स्वामी हैं। हरिशंकर आदेश जी का जन्म 7 अगस्त, 1936 को ऐसे परिवार में हुआ, जहाँ वेद-पुराणों, गीता-रामायण, भारतीय दर्शन की समृद्ध परम्परा गतिमान रही। पिता पंडित जीवनराम काश्मीर-श्रीनगर के जाने-माने दर्शनशास्त्री और प्रकांड पांडित्य के लिए जाने जाते थे। आदेश जी के अग्रज डॉ. ताराशंकर संस्कृत, अंग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू एवं फ़ारसी के विद्वान थे और दूसरे भाई पंडित विद्याशंकर अनलेश वैदिक साहित्य, रामायण, गीता, कुरआन, बाइबिल के अध्येता थे। त्रिनिडाड स्थित भारतीय उच्चायोग में कार्यकाल के दौरान मुझे गुरुवर आदेश जी से मिलने के अनेक अवसर मिले। एक मुलाकात में उन्होंने बताया, "दीपक भाई, घर में वेद, पुराण, गीता, महाभारत, रामायण जैसे पौराणिक ग्रंथों की उपलब्धता एवं पांडित्य परम्परा और परिवार में शास्त्रार्थ सुन-सुनकर मुझे भारतीय वैदिक तथा अध्यात्म साहित्य एवं सांस्कृतिक मूल्यों के गंभीर अध्ययन का अवसर मिला। मैंने जो ज्ञान उपार्जित किया, उसने मुझे गंभीर चिन्तन-मनन और सृजन की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। यही मेरी पूंजी है।" कविता-लेखन की प्रेरणा के संबंध में आदेश जी ने 'निर्वाण' महाकाव्य के पूर्वकथन में स्वीकार किया है कि "मेरा जीवन अपने अनुभव एवं अनुभूति के प्रादुर्भावकाल से ही परिवार में प्रवाहित साहित्य-संगीत एवं दर्शन की त्रिवेणी में अनवरत अवगाहन करता रहा है। चैतन्य होते ही शैशव में एक-एक शब्द की तुकें मिलाना, पुन: एकाधिक शब्दों की तुकबंदी करना। इस प्रकार उत्तरोत्तर पंक्तियों की तुकें मिलाते-मिलाते कब कविता-सृजन के क्षेत्र में प्रविष्ट हो गया, ज्ञात ही नहीं हुआ।"

पारिवारिक संस्कारों और परिस्थितियों के प्रेरणा-स्वरूप आदेश जी की हिंदी, अंग्रेज़ी और उर्दू भाषाओं में साहित्य, संगीत एवं कला की लगभग सभी विधाओं में लगभग 350 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति एवं पौराणिक कथाओं पर आधारित उपदेशों और संगीत-विद्या से संबंधित दृश्य-श्रव्य ऑडियो-वीडियो सामग्री भी तैयार की है, जो विद्यार्थियों और उनके शिष्यों में बहुत लोकप्रिय हैं। आदेश जी को उनके गहन, गंभीर और समाजोपरक कार्यों में समर्पण के लिए देश-विदेश के उच्चतर सम्मानों से विभूषित किया गया है, जिनमें हमिंग बर्ड गोल्ड मेडल, विश्व हिंदी सम्मान, इंटर्नेशनल पीस प्राइस, युनाइटेड किंग्डम का इंटरनेशनल मैन ऑफ़ द ईयर 2002 और ग्रेटेस्ट लिविंग लेजेंड प्रमुख हैं।

आदेश जी से नवंबर 2019 में त्रिनिडाड में मेरी आखिरी मुलाकात हुई थी, जिसमें उन्होंने बताया था कि 83 वर्ष की अवस्था में भी वे ब्रह्ममुहूर्त में रोज़ाना चार-पाँच घंटे लेखन कार्य करते हैं, अर्थात् अंतिम समय तक उनका लेखन निरंतर जारी रहा। अब तक उनकी लगभग 350 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, इन रचनाओं में शामिल हैं -

महाकाव्य : अनुराग, शकुन्तला, महारानी दमयन्ती, ललित गीत रामायण, देवी सावित्री, रघुवंश शिरोमणी श्रीराम, रविनंदन कर्ण

मुक्तक काव्य : निराशा, रवि की भाभी (हास्य-व्यंग्य), मन की दरारें, लहू और सिंदूर, आकाश गंगा, देवालय, शतदल, निर्वेद, रजनीगंधा, शरद:शतम्, लहरों का संगीत, प्रवासी की पाती भारत माता के नाम, रम्य भाव रश्मियाँ, आमों का पंचायत, वैदिक नीहारिका, पत्नी चालीसा गुरु शतक, पति शतक, देशांतर, बिखरे फूल, रत्ना के कंत, मनोरंजन, राम कह तू, रमज़ान, ईद मुबारक, क्रिसमस आया, देवी महातम, मदिरालय, आहत आकांक्षाएँ, देव और दानव, नियति के चरण, रविप्रिया, मंजु मिलन, ललित पत्र प्रसून, आकाश यात्रा, देश-विदेश, शताब्दी के स्वर, आत्म विवेक, निष्ठा निकुंज, निर्मल सप्तशती, आदेश सप्तशती, जीवन सप्तशती, जमुना सप्तशती, विवेक सप्तशती, सुरभि सप्तशती, पत्नी सप्तशती, प्रवासी सप्तशती

खण्ड काव्य : मनोव्यथा, सावित्री, महाभारत कथा, देवी उपाख्यान, जनगीता, निष्पाप, रहस्य, साधना, नुत्त हंस, महिमा, ललिता लक्ष्मी, हैतुक भक्ति, तपस्वी हाथी, आचरणवान साधु, शव दहन स्थान, कोप भाजन, राजतनय, गरिमा, सत्संगति, महत्त्व, रह गई याद, पिछली सुधियाँ

कथा साहित्य : रजत जयन्ती, निशा की बाहें, सागर और सरिता, मर्यादा के बंधन, लकीरों का खेल, आत्मा की आवाज़, देवयानी, श्मीम, देवताओं का वरदान, स्वर्ग और नर्क, पिताजी के श्री मुख से

नाटक: देशभक्ति, सूरदास, निषाद कुमार, अशोक वाटिका, शबरी

उपन्यास : निष्कलंक, गुबार देखते रहे

निबन्ध: झीनी झीनी बीनी चदरिया, ज्योति पर्व

उर्दू: शबाब, आज की रात, लम्हें, देवता, मंज़िल नहीं मिली तो क्या?, जाऊँ तो कहाँ जाऊँ

बालकाव्य: विहान, कश्मीर, आओ बच्चो, वेणु, देखो मगर चाचा चले ब्याह रचाने, जीवन के तीन रंग, शिशु संकल्प, मेरा घोड़ा, टीम्मक टु, कबूतर और शिकारी

संगीत : सरगम, षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद, राग विवेक आदि ग्रंथ।

इस लेख में महाकवि आदेश के महाकाव्यों और सप्तशती-साहित्य पर संक्षेप में विचार किया जाएगा। प्रो. आदेश के महाकाव्य पौराणिक आख्यानों के पात्रों पर आधारित हैं। इस विषय पर आदेश जी ने संवाद के दौरान स्वीकार किया है कि - "मैं गर्व से कहता हूँ कि मैंने भारतीय संस्कृति के जिन महान नारी-पुरुष पात्रों के कथानक अपने महाकाव्यों में चित्रित किए हैं, उन पर हिंदी साहित्य में कोई महाकाव्य सृजित नहीं हुआ है। आप ही बताइए हिंदी साहित्य में गंगा, सत्यवती, शांतनु, शकुंतला-दुष्यंत, दमयंती-नल, यशोधरा-महात्मा बुद्ध तथा देवी सावित्री-सत्यवान, सूर्यपुत्र कर्ण पर कोई महाकाव्य सामने आया है। मैंने हिंदी कवियों द्वारा उपेक्षित इन पात्रों को सजीवता प्रदान करने का प्रयास किया है।" सांसारिक मायामोह से विरक्त होने से पूर्व अपने जीवन क्षणों में प्रो. आदेश ने 'रविनंदन कर्ण' महाकाव्य की पांडुलिपि पूर्ण की। 2019 में प्रो. आदेश का सातवाँ महाकाव्य 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' प्रकाशित हुआ था, पुस्तक का बाह्य आवरण ही मर्यादा राम के प्रति आस्था रखने वाले हर व्यक्ति को इस महाकाव्य को पढ़ने के लिए प्रेरित करेगा। मैं सौभाग्यशाली हूँ कि इस महाकाव्य के रचनाकर्म के दौरान मुझे आदेश जी के मुख से 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' महाकाव्य के अनेक अंश सुनने को मिले। आदेश जी ने इस महाकाव्य में लगभग

अठारह सौ छंदों की योजना करके लयात्मकता और गेयता का अनुप्रेरक रूप प्रदान किया है। इसमें एक सौ दस छंदों की पुनरावृति मनमोहक एवं रमणीयता का निर्वहन करती है। 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' महाकाव्य, रामकाव्य-परंपरा का पौराणिक धरातल पर आधुनिक अथवा नव्यतम परिप्रेक्ष्य में श्रीराम भक्त कवि के गंभीर ज्ञान, कर्म, श्रद्धा तथा भक्ति की सहज अभिव्यक्ति में सफल हुआ है। इसमें राम-कथा को मंगलाचरण के अतिरिक्त 18 सर्गों में विभाजित कर त्रेता युग से आद्यपर्यंत - कर्म, उपासना, धर्म, अध्यात्म, दर्शन, इतिहास तथा राष्ट्र-चेतना के सशक्त स्वर में उच्चरित किया है। प्रो. आदेश ने भूमिका में लिखा है - "यह व्यक्ति का काव्य है; समाज का काव्य है; विश्व का काव्य है; यह विगत का काव्य है। आगत एवं वर्तमान का काव्य है। यह केवल हिंदुओं का काव्य नहीं, अपितु प्रत्येक धर्मावलंबी के लिए हितकारी एवं अनुकरणीय काव्य है।" (पुरोवाक् पृ. 50) निश्चित ही यह महाकाव्य सहृदय पाठकों, सुधीजनों को अपनी सरसता के कारण श्री राघवेंद्र के आदर्श चरित्रों का पुनः अध्ययन करने के लिए आकर्षित करते हुए उन्हें आदर्श मार्ग पर चलने के लिए चिरकाल तक प्रेरित करता रहेगा तथा पौराणिक कथा-वाचकों एवं अध्यात्म चिंतकों के साथ-साथ इस महान देश के स्वर्णिम अतीत, अध्यात्म, संस्कृति, मानवीय-मूल्यों, संस्कारों, आदर्शों व भक्ति-भावना को जागृत करता रहेगा। और मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह रचना राम-कथा की समृद्ध साहित्य श्रृंखला में निश्चित ही अपना विशेष स्थान बनाने में सफल होगी।

इस महाकाव्य में सर्वत्र वैश्विक परिवार की भावना की अभिव्यक्ति हुई है, कवि आदेश की दृष्टि में राम-राज्य का अर्थ ही सार्वभौमिक स्वर्ग सदृश्य राज्य है -

"सुर प्रवृत्तियों को आश्रय दें,
असुर भाव बिसराएँ।
जननी वसुंधरा को,
सब मिल-जुल कर स्वर्ग बनाएँ।
जल को स्वच्छ रखें,
धरनी से अधिक न रत्न निकालें।
रखें प्रदूषण-मुक्त वयं, जीवन को स्वर्ग बनाएँ।"

आदेश जी ने आधुनिक समय में युवाओं को सन्देश दिया है। इस महाकाव्य में गुरु वशिष्ठ के माध्यम से शिक्षा दिए जाने के प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ हैं -

"जीवन का उद्देश्य
नहीं है पदच्युत होना
जीवन का उद्देश्य
न पाना चांदी सोना
हो न पाए कदापि
लक्ष्यच्युत मानव-जीवन
जीवन का उद्देश्य
पूर्णत: मानव होना।।

न टूटे कभी आत्म-विश्वास
न हो जीवन में कभी हताश
करो अज्ञान तिमिर को दूर
भरो हर मन में ज्ञान प्रकाश।।"

'निर्वाण' महाकाव्य में कवि आदेश ने बुद्ध के चरित को उनके जन्म से लेकर परिनिर्माण प्राप्त करने की कथा को कविता में पिरोया है। यह पूर्णतया इतिहास पर आधारित है, जिसमें महात्मा बुद्ध के जीवन काल से संबंधित अंगुलिमाल, आम्रपाली आदि अंतर्कथाओं के अतिरिक्त नचिकेता की भी कथा दी गई है। जैसा आप सभी जानते हैं कि महात्मा बुद्ध के दर्शन शताब्दियों से मानवता को महाकरुणा अर्थात् सत्य-प्रेम-अहिंसा का सन्देश देता रहा है और मानवीय जीवन को आनंद की अनुभूति कराता रहा है। कवि आदेश ने इस मूल भावना को लोककल्याणकारी रूप में प्रस्तुत कर स्तुत्य प्रयास किया है। महापुरुष बुद्ध ने सारे संसार को प्रेम एवं अहिंसा का पाठ पढ़ाकर एक कर दिया। गौतम बुद्ध अंतिम सर्ग में कहते हैं -

"सामाजिक बैषम्य को
जड़ से ही हिला दिया है।
औ जाति-पांति अंतर
जन-मन से मिटा दिया है।
वे आगे कहते हैं -
रक्तपात बिना, बिना हथियार के
जीव-हित हे मात्र करुणा प्यार से
न्यूनता ला दी दुखों के भार में
क्रांति ला दी आज इस संसार में।"

यह महाकाव्य विश्व-कल्याण की भावना को अपने अंचल में छुपाए हुए है। हिंदी विद्वान डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इस महाकाव्य पर टिप्पणी करते हुए लिखा है - "इस काव्य को पढ़ते समय मुझे 'कामायनी', 'उर्वशी' का स्मरण हो आया, परन्तु इसका विषय भिन्न होने पर भी 'निर्वाण' की काव्य-संपदा, गीत सौंदर्य, भाषा का अद्‌भुत प्रवाह, कथा संयोजन, पात्रों का अंतर्द्वंद्व तथा इतिहास को जीवंत बनाने की कवि की अद्‌भुत क्षमता इस महाकाव्य को हिंदी महाकाव्य की परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान पर स्थापित करेगी।"

कवि ने तत्कालीन समाज में धर्म के नाम पर व्याप्त अराजकता का चित्रण करते हुए लिखा है -

"ले धर्म-युद्ध का नाम करें,
आतंकवाद का आयोजन
मानव बम बनकर करते हैं
नित्य आत्म-घात कितने ही जन।
होता है धर्म कल्याण हेतु
मानव का सर्व हित साधक है।
जो मानवता के प्राण हरे
वह धर्म नहीं रिपु घातक है।"

हरिशंकर आदेश जी का महाकाव्य 'देवी सावित्री' सावित्री-सत्यवान की पौराणिक कथा पर आधारित है। देवीत्व और नारीत्व की साकार प्रतिमा सावित्री की अलौकिक सौन्दर्य एवं लावण्य के शब्द चित्रांकन के अतिरिक्त, नारी के चरम आदर्श की अभिव्यक्ति इस महाकाव्य में है। आदेश जी भूमिका में लिखते हैं - "मैंने सावित्री को महामानवी तथा देवी की संयुक्त प्रतिमूर्ति मानकर ही काव्य की रचना की है।" समाज में नारी के सम्मान का प्रसंग महत्त्वपूर्ण है, इसी भाव को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं -

"वसुंधरा है अवनी नारी
सकल जगत की जननी नारी
है मंजुल मृदुला मनहारी
नारी ममता की फुलवारी।"

आदेश जी ने समाज में नारी के उत्थान को भी अपनी वाणी देने का उपक्रम किया है, तभी वे कहते हैं -

"नारी शिक्षा हो अनिवार्य
सीखे नारी गृह के कार्य
अर्थशास्त्र में बने प्रवीण
पर न कभी त्यागे औदार्य।"

कवि आदेश सावित्री के माध्यम से, नारी के चार प्रमुख रूपों की चर्चा करके उसे परिवार और समाज की आधार और महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में मान्यता दिलाते हैं -

"जननी, भगिनी, पुत्री, पत्नी
नारी के सद् रूप हैं चार
इनके बल पर ही चलता है
गृह समाज सारा संसार।"

'अनुराग' महाकाव्य में गंगा तथा कालांतर में सत्यवती (मत्स्यगंधा) के प्रति शांतनु के अनुराग को चित्रित किया गया है, यह कथानक महाभारत के असीमकोष से लिया गया है। अनुराग श्रृंगार काव्य का अनुपम उदाहरण है। इस काव्य में आदेश जी ने अलौकिक ईश्वरीय सत्ता का अनेक प्रसंगों में चित्रण किया है, एक प्रसंग देखिए -

"जीवन के मधु गान तुम्हीं हो
जीव-जगत के प्राण तुम्हीं हो

निराकार साकार तुम्हीं हो
सृजन तुम्हीं, संहार तुम्हीं हो।
उदय तुम्हीं, अवसान तुम्हीं हो।"

'शकुंतला' महाकाव्य शकुंतला और दुष्यंत की पौराणिक कथा पर आधारित है, जिसके सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करते हुए वे कथा को वर्तमान सन्दर्भों से जोड़ने का साहस करते हैं और सफल होते हैं। महाकाव्य के अंतिम सर्ग में शस्त्रीयता का अनूठा स्वर गूंजा है, जहाँ कवि समकालीन समस्याओं से आहत होते हैं, तो दृढ़ आशावादी भावना से कहते हैं -

"इक्कीसवीं शती आते-आते एक नया रूप होगा
भारत जग की महाशक्तियों में सबसे आगे होगा।"

आशावादी वाणी में महाकवि अपनी कामना व्यक्त करते हैं -

"जियो कि सृष्टि हो सुखी
न जीव हों कहीं दुखी
हरो विषाद विश्व का
न हो कभी अधोमुखी"

'दमयंती' महाकाव्य नल और दमयंती की पौराणिक कथा पर आधारित है। दमयंती और नल एक आदर्श दंपति हैं, जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता, सिद्धांतों एवं जीवन प्रणाली के प्रतीक हैं। इस महाकाव्य की कथावस्तु में वैयक्तिक एवं सामाजिक आचार-संहिता का जैसा विशद निरूपण है, वह न केवल त्रेता युग की परिस्थितियों का परिचय देता है, वरन् आज के युग के सामाजिक यथार्थ का भी प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। महाकाव्य की कथा का मूल रस श्रृंगार है और संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्षों का मार्मिक चित्रण कवि की अभिव्यक्ति की विशिष्टता है। प्रेम की अभिव्यक्ति दैहिक, मानसिक और आत्मिक स्तर पर हुई है और उसमें वैष्णव भावना का आध्यात्मिक संस्पर्श भी प्रदान किया गया है -

"दृष्टि में व्यापक तृषा है,
राग-रस-माय हिय रसा है
ब्रह्म तो है सत्य ही, पर
कौन कहता जग मृषा है
उड़ रहे युग निमिष बन कर,
भास होते उत्पल मदु से।"

इस प्रकार देखा जाए, तो आदेश जी भारत से बाहर एकाधिक महाकाव्य लिखने वाले पहले कवि हैं। उन्होंने पौराणिक और मिथकीय कथाओं के उपेक्षित पात्रों को नवीन और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सजीवता प्रदान करने का प्रयास कर, प्राचीन कथा को नए कलेवर के साथ पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है, जो साहित्य जगत में अद्‌भुत और अतुलनीय हैं। आदेश जी ने अपने महाकाव्य साहित्य के संबंध में स्वीकार किया है - "महाकाव्य नायक अथवा नायिका के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत तक की कथा होती है, जिसमें जीवन से संबंधित प्रत्येक पक्ष अथवा अंग पर विस्तारपूर्वक चर्चा की जा सकती है। इन महाकाव्यों द्वारा विश्व-परिवार, विश्व-ग्राम तथा विश्व शांति के उपादानों को सरलतापूर्वक व्यक्त कर सका हूँ।"

महाकाव्यों के बाद आदेश जी के मुक्तक काव्य पर चर्चा करें, तो हम पाते हैं कि मुक्तक काव्य में मेरी पसंदीदा उनकी सप्तपदी साहित्य अद्‌भुत है, इनमें साहित्य का वैविध्य और भाषा का प्रवाह आत्ममुग्ध करता है और माना जा सकता है कि ये रचनाएँ सतसई परंपरा की अमूल्य धरोहर हैं। आदेश जी द्वारा सृजित - निर्मल सप्तशती, आदेश सप्तशती, जीवन सप्तशती, जमुना सप्तशती, विवेक सप्तशती, सुरभि सप्तशती, पद्मी सप्तशती, प्रवासी सप्तशती प्रकाशित हो चुकी हैं, इनमें भाव-विचारों की विविध भंगिमाओं का करतल नृत्य देखने को मिलता है। इनमें समाहित दोहों में ईशभक्ति, देशभक्ति, जन जागरूकता, मातृभाषा महत्त्व, पर्यावरण महत्त्व, सामाजिक कुरीतियों, मानवता, राजनीति, स्वास्थ्य, शिक्षा, सुख-दुख आदि वे सभी विषय समाहित हैं, जो वैश्विक परिवेश में हर समाज में किसी-न-किसी रूप में

विद्यमान हैं। इन दोहों में कवि के गाम्भीर्य दार्शनिक चिंतन-मनन और अनुभवों का पिटारा है, जिसका क्षेत्र-विस्तार पूरा संसार और सार्वकालिक है। इन दोहों को पढ़ते हुए कबीर, सूरदास, तुलसीदास, रहीम, बिहारी के दोहों की प्रतिच्छाया मिलती है।

भारतीय संस्कृति में 'माँ' का विशेष महत्त्व है और नारी के मातृ रूप को कवि आदेश ने वरदान रूप में स्वीकार किया है। मातृभक्ति के आशीर्वाद से संसार के कष्टों से मुक्ति पाकर मनुष्य जीवन-लक्ष्य तक पहुँचने की ऊर्जा पाता है, इसी भाव का सन्देश देते हुए कवि 'प्रवासी सप्तशती' में लिखते हैं -

"जननी है भगवान का सबसे पहला रूप
निज प्राणों पर खेलकर, देती जन्म अनूप
बिन वाणी के ही समझती, जो संतति की पीर
सचमुच में माता वही, वत्स बंधाएँ धीर
माँ के पग में स्वर्ग है, माँ के वचनों में शक्ति
कहते हैं सबसे बड़ी, होती माँ की भक्ति।।"

पुरुष वर्ग को पत्नी के प्रति सदाचारी रहने का आग्रह आदेश जी अपनी रचना में करते हुए कहते हैं -

"पत्नी संग करता हिंसा, कहे कापुरुष उसे समाज?
पत्नी का मत हृदय दुखाओ, रखो अखंडित उसकी लाज।
कहो न क्रूर शब्द पत्नी से, सदा लुटाओ उस पर प्यार,
फलत: कर लेगी वह स्वयं, देखना निज त्रुटि को स्वीकार।"

आदेश जी छह-सात दशक से विदेश में रह रहे थे, पर उनकी भावनाएँ भारत माता के प्रति उमड़ती रहती थीं, तभी तो 'विवेक सप्तशती' में अगले जन्म में भारतभूमि पर जीवन प्रारम्भ करने की कामना करते हैं -

"जब-जब ईश्वर जन्म दे
भारत में हो प्राण रवि
चाहे अस्त कहीं पर कर दे
इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति 'प्रवासी की पाती भारत माता के नाम' कविता में हुई है
जिसका नाम अमर है, मित्रो वसुधा के इतिहास में।
बसा हुआ है वह भारत, मेरी हर धड़कन, विश्वास में

भारत भूमि पर कुदृष्टि रखने वालों के प्रति संघर्ष का सन्देश कवि कहता है -

भारत माँ पर आँख गड़ाए जो
उसकी दें हम आँख निकाल
प्राणों की बलि दे सदा रखें
भारत माँ का उज्ज्वल भाल।"

कवि आदेश निराशा को त्यागकर, कर्म पर बल देते हैं - तुलसीदास की पंक्ति है - 'होइहि सोइ जो राम रचि राखा।' इन्हीं भावों की प्रतिछाया आदेश जी की इन पंक्तियों में देखें -

"सोचो मत परिणाम को, रखो काम से अर्थ
जो होना वह होएगा, अश्रुपात है व्यर्थ"

कबीर के दोहे - 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब, पल ...' की ही सम्वेदना आदेश जी के दोहे -

"कल-कल-कल, कल क्यों करे,
करना कर तत्काल
नहीं भरोसा काल का,
चले तस्करी चाल।"

लोककल्याण, मानवतावाद और वसुधैव कुटुम्बकं की भावना आदेश जी के काव्य का मुख्य विषय है। तभी तो उनकी लेखनी इन भावनाओं की सरिता प्रवाहित करती है -

"हे जग जननी दो हमें, ऐसे शुद्ध विचार
भेदभाव भूलें सभी, विश्व बने परिवार
धर्म जाति औ वर्ण का भेद होए निर्मूल
पृथ्वी से मिट जाए, भेदभाव की मूल
मिट जाए आतंक का, वसुधा से ही नाम
सभी सुखी समृद्ध हों, जीवन लिए ललाम

संगति कीजै संत की, मिले स्वतः हर इष्ट
दुष्टों की संगति सदा, करती महा अनिष्ट।"

कवि की मानवतावादी विचारधारा को निम्न पंक्तियों में देखिए -

"मानवता का हो सदा, संस्कृति में साम्राज्य
मानव-मानव प्रेम हो, अमर और अविभाज्य,
प्रेम न देखे वर्ण को, प्रेम न देखे जाति
प्रेम धर्म सबसे बड़ा, प्रेम जाति औ पांति।"

हिंदी भाषा के प्रति आदेश जी का अगाध प्रेम है और आपको जानकर अच्छा लगेगा कि उन्होंने बातचीत के दौरान बताया कि वे अपने संगीत के विद्यार्थियों को पहले हिंदी सीखना अनिवार्य बनाते हैं और हिंदी को स्वाति स्वर कहकर अपनाने का आह्वान करते हैं -

"आओ हम सब हिंदी बोलें
अपनाएँ हम कोई भी मत
अपने मन की गाँठें खोलें
आओ हम सब हिंदी सीखें।"

आदेश जी का काव्य-साहित्य रस, छंद और अलंकार के अद्‌भुत संयोजन का दस्तावेज़ है। 'प्रवासी सप्तशती' से भाषा-चमत्कार को यमक अलंकार के उदाहरण रूप में देखिए -

"ईश्वर-ईश्वर शत्रु है, ईश्वर-ईश्वर मित्र
ईश्वर-ईश्वर दंभयुत, ईश्वर पूजा पवित्र"

इसमें प्रयुक्त ईश्वर के अनेक अर्थ हैं, जिनका क्रमशः अर्थ है - शिव, कामदेव, परमेश्वर, आत्मा, राजा, धनी और पति।

इसी प्रकार के और उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

"ईश्वर चढ़ता ताप से, ईश्वर करे न दोष
कनक-मूल्य बिकता नहीं, ईश्वर होय सदोष।"

यहाँ पर भी ईश्वर का विविध अर्थों में प्रयोग हुआ है, क्रमशः अर्थ है - पारा, समर्थ, शक्तिमान, धनी, परमेश्वर, पीतल।

आदेश जी का साहित्य इतना बोधगम्य, सहज, गंभीर और विषद है कि बहुत कुछ कहा जा सकता है, उपर्युक्त विवरण में आदेश जी के वृहद् काव्य-पक्ष के महाकाव्य और खंडकाव्य में से सप्तशती पर ही चर्चा की गई है। आज प्रवासी हिंदी साहित्य की काव्य-विधा में हरिशंकर आदेश के अलावा कोई दूसरा रचनाकार ऐसा नहीं होगा, जिसके काव्य में आदेश जी के साहित्य-सा वैविध्य हो। इस प्रकार हम पाते हैं बहुमुखी प्रतिभा के धनी, भारतीयता को समर्पित साधक का साहित्य जितना बहुरंगी है, उनका व्यक्तित्व भी उतना ही बहुआयामी है। वे भारतीय कला-साहित्य और संस्कृति के उन्नायक होने के साथ-साथ, संगीत शास्त्र के उद्भट ज्ञाता, पिंगलशास्त्र के मर्मज्ञ हैं और साहित्यकार, गायक, प्रबंधकार, कलाकार, निबंधकार, संस्मरण लेखक, अनुवादक, समीक्षक, नाटककार आदि अनेक विधाओं में अपनी प्रतिभा कौशल से विश्व हिंदी जगत में उच्च स्थान पाते हैं। प्रो. हरिशंकर आदेश ने भारतीय विद्या संस्थान, आदेश आश्रम जैसी संस्थाओं की स्थापना कर और उन संस्थाओं के माध्यम से भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति से संबंधित ज्ञान का जो संचार किया है, वह अनेकों वर्षों तक कैरेबियन देशों, अमेरिका, कनाडा जैसे देशों में प्रवाहित होता रहेगा। आदेश जी का रचना संसार जहाँ समाज सापेक्ष, मानवीय मूल्यों के पोषक, जन्मभूमि के प्रति समर्पण, विश्वबंधुत्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भन्तु सुखिन: की भावनाओं और विचारों का गहन और गंभीर विश्लेषण कर मानव कल्याण के लिए कृत संकल्पित है, वहीं संगीत के गहन ज्ञान के कारण उनके काव्य में सहजता और सरलता के साथ-साथ लयात्मकता और प्रभाव उत्पन्न करने की अद्‌भुत संयोजन क्षमता मिलती है।

हम सभी हिंदी प्रेमी, भारतमाता और भारतीय संस्कृति के सच्चे साधक के प्रति श्रद्धांजलि उनके ही शब्दों में अर्पित करते हैं, जहाँ वे कहते हैं -

"दुनिया में ले के आया हूँ पैगामे मुहब्बत,
हर दिल को प्यार करना सिखा के ही जाऊँगा।"

संदर्भ ग्रंथ :

1. अनुराग - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
2. शकुंतला - शिल्पायन प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली
3. महारानी दमयंती - निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
4. निर्वाण - नटराज प्रकाशन, अशोक विहार, दिल्ली
5. ललित गीत रामायण - निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
6. देवी सावित्री - निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
7. रघुवंश शिरोमणि श्रीराम - निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
8. निर्मल सप्तशती - निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
9. आदेश सप्तशती - निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
10. जीवन सप्तशती - निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
11. जमुना सप्तशती - लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली
12. सप्तशती - निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
13. प्रवासी सप्तशती- निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, शहादरा, दिल्ली
14. विश्व के हिंदी साहित्यकारों से संवाद - डॉ. दीपक एवं डॉ. नूतन पाण्डेय, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली
15. हिंदी का प्रवासी साहित्य - डॉ. कमल किशोर गोयनका, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली

dkp410@gmail.com

जादुई अंगुलियाँ और कोकिल कंठ - धीरा वर्मा : एक अद्‌भुत व्यक्तित्व

- श्रीमती भावना सक्सैना
हरियाणा, भारत

सहज, मधुर व्यक्तित्व, निश्छल मोहक मुस्कान, सदा आशीष के बोल और नेह का आग्रह... कोकिल कंठ की स्वामिनी, छात्रों की प्रिय व सखियों की दुलारी। अपने आवासीय परिसर के सभी उत्सवों की शान। संस्कृति की गहरी समझ, कला की बेजोड़ परख और नई पीढ़ी के साथ अद्‌भुत तादात्म्य। आज भी आँखें बंद करती हूँ, तो उनकी छवि स्मृति पटल पर उभर आती है। मन विश्वास नहीं कर पाता कि वह जीवंतता अब सिर्फ़ चित्रों में कैद हो गई है। मैं जब भी उनसे मिलती, हर बार कुछ नया सीखती, फिर चाहे वह पहली मुलाकात में उनका पकाया मटर का निमोना हो या आखिरी मुलाकात में उनसे हुई पेपर मैशे कलाकृति पर विस्तृत चर्चा। शिक्षण, लेखन, मातृत्व व सामाजिक-पारिवारिक दायित्वों को जितनी कुशलता से वह निभातीं, हमेशा मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत बनी रहीं। इतने दायित्वों के बावजूद पाक-शास्त्र व बागबानी उनके शौक रहे। उनकी बगिया व घर के हर कमरे में रखे छोटे-छोटे गमलों में खिलते-महकते पौधे उनकी जादुई अंगुलियों का परिचय देते थे। देश-विदेश की मनमोहक कलाकृतियों से सजे घर की रसोई की खिड़की में अजवाइन और पुदीना, पिछले अहाते में बड़ा-सा नींबू का पेड़ और घर के सामने के लॉन में हरी मखमली घास व विभिन्न रंग-बिरंगे फूल, सब उनकी कलात्मकता व सौंदर्य-प्रियता के परिचायक थे।

जीवन की राहों में जिन लोगों ने बहुत अधिक प्रभावित किया, उनमें से एक थीं श्रीमती धीरा वर्मा जी। प्रोफ़ेसर धीरा वर्मा, जितनी ज्ञानशील उतनी ही सौम्य व मधुर। लगभग 25 वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय में बल्गेरियन भाषा का अध्यापन व अपनी संस्कृति व भाषा की अनुपम सेतु बन देश-विदेश में संस्कृति को प्रसारित करने वाली धीरा मैम से पहली मुलाकात का अवसर मुझे 1997 के शायद नवंबर या दिसंबर में मिला था। दिल्ली विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर अनुवाद पाठ्यक्रम की छात्रा थी, तब परियोजना कार्य के लिए डॉक्टर विमलेश कांति वर्मा जी को मेरा मार्गदर्शक (गाइड) नियत किया गया था। परियोजना कार्य लगभग समाप्ति पर था। उसे अंतिम मूर्त रूप देने के लिए कुछ मार्गदर्शन की आवश्यकता थी और डॉक्टर वर्मा जी की कक्षाओं और मेरी अपनी व्यस्तताओं में समय निकालकर अंततः एक रविवार को सर के आवास पर परियोजना संबंधी मार्गदर्शन के लिए मैं और मेरी एक और मित्र पहुँचे थे। वहीं हुई थी, धीरा मैम से मेरी पहली मुलाकात। पहली ही मुलाकात में धीरा जी का वात्सल्य और स्नेह अभिभूत कर गया। कार्य समाप्त करके जब हम चलने को हुए, तब धीरा मैम ने बहुत आग्रह से दोपहर के भोजन के लिए रोक लिया। आँखें बंद करती हूँ, तो लगता है वह कल ही की बात है और आँखें खोलती हूँ, तो उनसे सहज बरसात झरने लगती है, यह सोचकर कि अब पुनः उस ममतामयी मूरत के दर्शन न हो सकेंगे...

1999 की उस पहली भेंट के पश्चात् तुरंत कोई अवसर न हुआ उनसे मिलने का, लेकिन उनका स्नेह मन में बसा रहा। फिर 2001 में संस्कृति मंत्रालय की पत्रिका 'संस्कृति' में उनका लिखा आलेख 'हमारे सांस्कृतिक प्रतीक - स्वास्तिक और मंगल कलश' पढ़ने का सुअवसर हुआ। संस्कृति के प्रति उनकी गहरी समझ प्रभावित कर गई। ममतामयी मूरत में एक और आयाम जुड़ा और मन में वह एक प्रभावशाली लेखिका के रूप में स्थापित हो गईं। बाद के वर्षों में उनके अनेक रूप देखे, हर एक में वे

बहुत गरिमामयी व विलक्षण दिखाई दीं।

कुछ ही समय पश्चात् साहित्य अकादमी में अखिल भारतीय लेखिका संघ का कार्यक्रम था। वहाँ उनसे पुनः भेंट हुई, किंतु लेखिका संघ की उपाध्यक्ष के रूप में। सक्रियता से अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए। छात्रों के लिए शिक्षकों को पहचानना सहज सरल होता है, किंतु शिक्षक, वह भी शिक्षक की पत्नी, जिनसे आप एक ही बार मिले हों, तुरंत आपको पहचान ले यह अभिभूत कर जाता है। अत्यंत व्यस्त होते हुए भी उस दिन उनकी आत्मीयता सराबोर कर गई। धीरे-धीरे जैसे-जैसे उन्हें जाना-समझा, तो यह पाया कि स्नेह, वात्सल्य और आत्मीयता उनका सहज स्वभाव था और हर कोई उनके इस स्वभाव का कायल था। इतने मनोहारी स्वरूप के भीतर एक गहन गंभीर अकादमिक मनोवृत्ति आपकी विशेषता थी।

श्रीमती धीरा वर्मा जी का जन्म 2 जनवरी, 1945 को इलाहबाद में हुआ और आपकी शिक्षा भी वहीं पर पूरी हुई। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान विषय में एम.ए. किया था। दो दशकों से भी अधिक समय तक आप दिल्ली विश्वविद्यालय के स्लावोनिक और फ़िनो-उग्रियेन भाषा विभाग में बल्गेरियन भाषा और साहित्य का अध्यापन करती रही। आप एक प्रतिष्ठित अनुवादिका थीं, जिन्होंने बल्गेरियन भाषा की कालजयी कृतियों का मूल भाषा से हिंदी में अनुवाद किया। इनमें विशेष हैं, 'सेपतेम्वरी', 'बल्गेरिया की लोककथाएँ', 'बेला विदाई की' और 'आड़ूचोर'। आपने न सिर्फ़ इन कृतियों का अनुवाद किया, अपितु बल्गेरिया के इतिहास का भी मूल बल्गेरियन भाषा से अनुवाद किया। आप आजीवन बल्गेरिया और भारत के बीच एक सेतु बनी रहीं। यही कारण है कि आपके जाने पर भारत में बल्गेरिया के राजदूत ने विशेष सांत्वना संदेश प्रेषित किया।

मैं हैरान रह गई थी एक दिन जब आपको बल्गेरियन में गाते हुए सुना था। आप बल्गेरियन में ऐसे गाती थीं, जैसे पानी में मीन रहती है। स्व भाषा की ही सहजता से अन्य भाषा में गाने वाले विरले ही होते हैं। यूट्यूब पर अपलोड 'बल्गेरिया में हिंदी शिक्षण के प्रभाव और इतिहास' पर जो फ़िल्म है, उसे हज़ारों लोगों ने देखा है। फ़िल्म के अंत में सुमधुर सधे हुए स्वर में बैंगनी और बादामी रंग की साड़ी में आपकी सौम्य, मनमोहक छवि को पुनः-पुनः देख लेती हूँ आजकल... कि मन अब भी यकीन नहीं कर पाता कि आप अब नहीं हैं।

आप 25 वर्ष से अधिक अखिल भारतीय लेखिका संघ, नई दिल्ली की उपाध्यक्ष रहीं और अपने दायित्वों का बखूबी निर्वहन करते हुए लेखिका संघ के सदस्यों को तकनीक से जोड़ने का आपने भरपूर प्रयास किया, जिसके लिए आप तकनीकी विषयों पर कार्यशालाएँ भी आयोजित कराती रहीं। देश-विदेश में आपने अनेकों बार सफलतापूर्वक असंख्य कार्यक्रमों का आयोजन कराया। अन्य लेखिकाओं के लिए आप सतत प्रेरणा का स्रोत थीं।

इन सबके साथ ही आप तीन दशकों से भी अधिक समय से प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान में संलग्न रहीं। आप 'फ़िजी में हिंदी : स्वरूप और विकास' की सहलेखिका तथा भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य' की सह-सम्पादक भी थीं। गिरमिट गीतों के अध्ययन व अनुसंधान में आपकी विशेष रुचि रही। जब आप गिरमिटिया देशों में गए बंधुआ मज़दूरों की व्यथा-कथा गाकर सुनाती थीं, तब श्रोताओं का गला भर आता था, आपका स्वर व भाव उनकी पीड़ा को बखूबी संप्रेषित किया करते थे। आप गिरमिट गीत को प्रवासी साहित्य की अनुपम निधि मानती थीं। प्रवासी भारतीयों से सम्बंधित गिरमिट गीतों के संग्रह के संदर्भ में आपने फ़िजी, मॉरीशस तथा दक्षिण अफ़्रीका आदि देशों की यात्राएँ कीं और इन देशों के गिरमिट गीतों का संग्रह किया और उनसे सम्बंधित अनेक अनुसंधान पूर्ण आलेख शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किए और आकाशवाणी के विविध चैनलों से उनका प्रसारण भी हुआ।

इनके अतिरिक्त आपने अमेरिका, कनाडा, बल्गेरिया, यूनान, जर्मनी, इटली, स्विटज़रलैंड,

मैसिडोनिया, मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया, वियतनाम, कम्बोडिया, थाईलैंड, म्यांमार आदि देशों की यात्राएँ कीं और सांस्कृतिक आदान-प्रदान में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों पर आपकी सवा सौ से अधिक सोदाहरण संगीत वार्ताएँ आकाशवाणी के विविध चैनलों पर प्रसारित हुईं। आपने ब्रज लोकगीतों के संकलन और संयोजन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपके मधुर कंठ में गाए गीतों से श्रोतागण झूम उठते थे। हिंदी, अवधी, ब्रज, बल्गेरियन, फ़िजीबात में आपका गायन बेहद प्रभावशाली व मधुर था। आप सामाजिक कार्यों में भी बेहद सक्रिय भूमिका निभाती रहीं। वैशाली में आयोजित किसी सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम में आपकी विशेष भूमिका रहती थी।

आपके व्यक्तित्व का एक और उल्लेखनीय पक्ष बाल साहित्य सें आपकी रुचि रहा। आपने बच्चों के लिए 14 लोककथाओं का लेखन व संपादन किया और उनका अनुवाद अंग्रेज़ी में भी किया। सस्ता साहित्य मंडल से प्रकाशित ये पुस्तकें हिंदी अथवा अंग्रेज़ी सीखने वालों के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। आपने न सिर्फ़ बाल साहित्य पर कार्य किया, अपितु बालकों के मनोवैज्ञानिक विकास में भी काफ़ी योगदान दिया। आप एक मनोवैज्ञानिक के तौर पर लंबे समय तक गैर-सरकारी संस्था पालना से जुड़ी रहीं। मनोवैज्ञानिक सहायता के साथ-साथ आपने कई छात्र-छात्राओं के शैक्षणिक विकास के लिए आर्थिक संबल भी प्रदान किया। आपने विशेष रूप से उन बालकों के मनोभावों को समझकर उन्हें मानसिक संबल प्रदान किया, जिनकी आयु अधिक होने के कारण किसी ने उन्हें गोद नहीं लिया था और बार-बार अस्वीकृति का दंश झेलने के कारण उनका आत्मविश्वास खो गया था। आपने उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने का साहस दिया। आप उन्हें एक ऐसा माहौल प्रदान करने की पक्षधर थीं, जो सकारात्मक हो, उत्पादक हो और उन्हें सशक्त करे।

आपने अनेक महिलाओं व बालिकाओं में आत्मविश्वास उत्पन्न करने हेतु कई अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर भी कार्य किया। एक अनुभवी मनोवैज्ञानिक की भाँति आप उनके मनोविज्ञान को बहुत सहजता से समझती थीं और अपने मृदु स्वभाव के साथ एक अनुभवी परामर्शदाता के रूप में उन्हें इस प्रकार समझा पाती थीं कि वे अपनी वेदना से बाहर आकर स्वयं को सक्षम पाने लगती थीं।

आपने डॉक्टर विमलेश कांति वर्मा के साथ कंधे से कंधा मिलाकर उनकी सभी परियोजनाओं में उनका साथ दिया। विशेष रूप से उल्लेखनीय है, आपने दृष्टिबाधित छात्रों के लिए 'डॉ. स्नेह लता श्रीवास्तव स्मृति योग्यता सह साधन' छात्रवृत्ति की स्थापना की, जो हर वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा को दी जाती है।

धीरा वर्मा जी की वेबसाइट पर उनका परिचय कलाकार, लेखक और माँ के रूप में दिया गया है। ये सभी भूमिकाएँ उन्होंने बहुत धैर्य व समर्पण के साथ आजीवन निभाईं। किंतु वेबसाइट पर या किसी भी दस्तावेज़ में जो नहीं लिखा जा सकता है; वह है एक बेहतरीन इंसान के रूप में उनका माधुर्य और उनके संगीत के स्वर, जो गहरे दिल में उतर जाते थे, उनके गीत जो मंत्रमुग्ध होकर घंटों सुने जा सकते थे। गंगा मैया पर वह गीत, जो आँखें बंद करके सुनने पर गंगा की पावन लहरों की अनुभूति की जाती थी, उस पर बहकर आती मंद बयार में सराबोर कर जाता था। संगीत की उन अनुभूतियों को शब्दों में कहाँ उतारा जा सकता है? और न ही शब्दों में उतारा जा सकता है वह नेह-प्रेम, जो सबको आपसे बाँधे रखता था।

25 अप्रैल, 2021 को धीरा मैम का देह त्याग कर जाना, कला व साहित्य जगत् की एक अपूर्णीय क्षति है। मेरी निजी क्षति है कि 22 वर्षों में जो अटूट नाता आपसे जुड़ा, उस वेक्यूम को कोई नहीं भर पाएगा। किंतु आपके स्नेह की अमूल्य धरोहर सदैव मेरी और मुझ जैसे असंख्य छात्र-छात्राओं का प्रेरणास्रोत रहेगी। कुछ माह पहले की ही बात है कि किसी पुस्तक के आवरण को अंतिम रूप देते हुए आपने कहा था - 'भावना हमें तुम्हारे बनाए कवर

ज़्यादा अच्छे लगते हैं'। यह आपकी सहृदयता थी कि आप किसी के छोटे से कार्य को भी इतनी प्रशंसा देती थीं कि उसमें आत्मविश्वास भर उठे। कहाँ होते हैं अब ऐसे लोग जो दूसरों को उठाने में आनंद की अनुभूति करें। यही तो कारण था कि शुरू से ही, जब बिना किसी कारण आपसे बात करने का मन होता मैं सर का मोबाइल नंबर नहीं घर का लैंडलाइन नंबर डायल किया करती, ताकि आपसे बात करने का अवसर मिल सके। वे संक्षिप्त वार्ताएँ अनंत ऊर्जा भरती थीं मुझमें।

यह सच है कि कोई सदा के लिए साथ नहीं रहता, किंतु कुछ व्यक्तित्व ऐसे होते हैं, जो मन पर गहरी छाप छोड़ जाते हैं। वह पवित्र आत्मा देह त्याग भी दे, तो उनकी स्मृतियों की सुगंध मन को सदैव सुरभित करती रहती है, उनके संग बिताए पलों का आलोक जीवन भर अंतस में रहता है और जब भी उनके बारे में सोचते हैं एक मुस्कान अनायास उभर आती है। आप रहेंगी सदा मन में, स्मृतियों में और बातों में। नमन धीरा मैम।

bhawnasaxena@gmail.com

शिकस्त पर फ़तह का परचम लहराता लेखक : श्री कृष्ण बलदेव वैद

- डॉ. दत्ता कोल्हारे
औरंगाबाद, भारत

विदेश में रहकर अंग्रेज़ी भाषा-साहित्य का अध्यापन करते हुए भी मातृभाषा हिंदी को अभिव्यक्ति का माध्यम मानकर साहित्य सृजन करनेवाले तथा के. बी. नाम से पहचाने जानेवाले हिंदी साहित्य जगत् के (कु) प्रसिद्ध रचनाकार कृष्ण बलदेव वैद का 7 फ़रवरी, 2020 को स्वर्गवास हो गया। अपने अंतिम दिनों तक आप लेखन कार्य से जुड़े रहे। यह आपकी साहित्य के प्रति नितांत श्रद्धा का प्रतीक है।

27 जुलाई, 1927 को देश-विभाजन पूर्व के पंजाब प्रांत के 'डिंगा' नामक एक छोटे-से गाँव में आपका जन्म हुआ। वैसे वैद जी का पुश्तैनी गाँव 'डेरा बख्शियाँ' है। देश-विभाजन से प्राप्त हुई त्रासदी को भी आपको सहना पड़ा। सामान्य से अधिक कठिन परिस्थिति में आपका बचपन गुज़रा। परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण अनेक समस्याओं का आपको सामना करना पड़ा। दैनिक गुज़ारे के लिए ट्यूशन भी लेनी पड़ी। देश-विभाजन ने वैद जी को शारीरिक तथा मानसिक तौर पर विभाजित कर दिया था। इसी कारण शारीरिक तौर पर आपको पाकिस्तान से चंडीगढ़, दिल्ली, अमेरिका तथा देश के कई स्थानों पर भटकना पड़ा। अंत में, आप भले ही शारीरिक रूप से दिल्ली में रहे, लेकिन मानसिक रूप से आपका व्यक्तित्व विभाजित रहा, जिसका प्रतिबिंब हमें आपके साहित्य में दिखाई देता है।

मनुष्य के अजीबो-गरीब पहलुओं को वैद ने अपने साहित्य के केंद्र में रखा है। इसी कारण आपके साहित्य को पढ़ते समय बार-बार सवाल उठता है, कि क्यों मनुष्य ऐसा व्यवहार करता है, जो उसके आचरण पर सवाल खड़ा करता हो? हमारे आधुनिक जटिल जीवनानुभवों तथा अचेतन मन के भावों को समझने के लिए आपका साहित्य विशेष महत्त्व रखता है। आपकी कहानी तथा उपन्यासों को पढ़ने के बाद लगता है कि आप मनोविज्ञान के गहन पारखी हैं। मनोविज्ञान को आपने अच्छी तरह से समझा है।

जीवन की आधी से भी ज़्यादा आयु आपने सारस्वत यज्ञ में अर्पित की। इसी के परिणाम में ही हिंदी साहित्य को आपने अनमोल कृतियाँ प्रदान की हैं। आपकी औपन्यासिक कृतियों ने हिंदी उपन्यास साहित्य को क्रांतिकारी मोड़ दिया है। आपकी सभी कहानियों एवं उपन्यासों का शिल्प, शैली एवं कहने का अंदाज़ नया है तथा प्रचलित परिपाटी से हटकर है। कथा साहित्य में किए गए अनोखे प्रयोगों के कारण आपको साहित्य के तत्कालीन मठाधीशों द्वारा हिंदी साहित्य जगत् में हाशिए पर रखा गया। आलोचकों की एकांगी दृष्टि के कारण वैद जी के साहित्य की उचित आलोचना न हो सकी। और जो 'आलोचना' की गयी वह उनके साहित्य के बाहरी पक्ष को लेकर ही हुई। इस कारण हर बार उनके साहित्य पर अनेक आरोप भी लगते रहे, जिनमें से प्रमुख रूप में उनके उपन्यासों में 'काम' चित्रण को देख उन्हें नकार दिया गया, तो कभी उनके उपन्यासों पर 'पाश्चात्य प्रभाव' को लक्ष्य किया गया। भारतीय परिवेश में रचित साहित्य ही आज तक साहित्य जगत् में प्रसिद्धि का पात्र था। वैद जी ने भारतीय एवं पाश्चात्य परिवेश के आकलन, निरीक्षण तथा अध्ययन के पश्चात् अपने अनुभवों के आधार पर साहित्य में नए प्रयोग किए। उन पर लगे आरोपों से विचलित हुए बिना वैद जी ने अपना रचनाकर्म निरंतर जारी रखा। अपने उलझे हुए व्यक्तित्व को तथा देश-

विभाजन से मिली निर्वासन की त्रासदी-पीड़ा को वे अपने साहित्य में बड़े तटस्थ भाव के साथ अभिव्यक्त करते हैं। वैद जी के साहित्य में चित्रित 'आत्म-अभिव्यक्ति' को एवं उनके द्वारा प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को ठीक तरह से समझने के लिए या यूँ कहें कि वैद जी को समझने के लिए उनके साहित्य का उचित एवं सर्वांगीण अध्ययन ज़रूरी है। वैद जी के कथा साहित्य में मनोविज्ञान का चित्रण प्रचुर मात्रा में हुआ है। उनके सम्पूर्ण साहित्य पर प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ़्रायड, एडलर एवं युंग के सिद्धांतों का प्रभाव दिखाई देता है। एडलर और युंग से अधिक वैद जी फ़्रायड के निकट जान पड़ते हैं।

आपका समस्त साहित्य आपके जीवन का प्रतिबिंब है। विशेषतः आपकी चारों डायरियाँ आपके जीवन की खुली किताब हैं। आपने जो जीवन जीया, जिस सुख-दुख, मान-अपमान, चेष्टा-कुचेष्टा, प्रसिद्धि-कुप्रसिद्धि तथा सफलता-असफलता को भोगा, उसे बिना किसी लागलपेट के आपने डायरियों में अंकित किया। आपकी डायरियाँ एवं समस्त कथा-साहित्य ही आपका परिचय-पत्र हैं। पाँच कहानी-संग्रह, दस उपन्यास, चार डायरियाँ, छह नाटक, रेडियो नाटक, अनुवाद, आलोचना आदि विपुल साहित्य संपदा आपके साहित्य के प्रति निष्ठा का परिचय देती है।

"न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।
डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता।।"

'डुबोया मुझको होने ने' नामक अपनी डायरी के प्रथम पृष्ठ पर अंकित ग़ालिब की यह पंक्तियाँ कृष्ण बलदेव वैद के जीवन और साहित्य के बारे में परिचय देती हैं। विभाजन के बाद मिले निर्वासन की पीड़ा को वैद ने सहन तो किया, परंतु शारीरिक और मानसिक रूप से उनके भीतर के 'व्यक्ति' को पूरी तरह से आघात पहुँचा। शारीरिक रूप से यहाँ-वहाँ (देश-विदेश) भटकने के पश्चात् अंत में वैद जी दिल्ली में स्थित हुए। लेकिन मानसिक भटकन निरंतन जारी रही। इस भटकन को हम उनके उपन्यासों तथा कहानियों में देख सकते हैं।

विभाजन ने उनके व्यक्तित्व को और उनके अस्तित्व को हिलाकर रख दिया। ग़ालिब कहते हैं कि इस संसार में जब कुछ भी नहीं था, तब खुदा था और जब सब कुछ खत्म हो जाएगा तब भी खुदा का, ईश्वर का अस्तित्व निरंतर बना रहेगा। वैद जी को उनकी मानसिक पीड़ा ने, दर्द तथा निपट अकेले स्वभाव ने डुबो दिया, लेकिन वे सोचते हैं कि अगर मैं ही न होता तो क्या होता? यह सब कुछ मेरे 'होने' के कारण है। इस सच्चाई को उन्होंने स्वीकार कर अपनी असफलताओं को अपने काम की शक्ति बनाया। यही असफलता उनके साहित्य की प्रेरणा रही है।

कृष्ण बलदेव वैद को हिंदी साहित्य में प्रयोगधर्मी रचनाकार के रूप में देखा जा सकता है। उनके द्वारा किए गए प्रयोग साहित्य के मठाधीशों को आज भी हज़म नहीं हो रहे हैं। उन्होंने हिंदी कथा-साहित्य को नए रूप से समृद्ध एवं विकसित करने में अपना योगदान दिया है। वैद जी ने उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना, अनुवाद आदि विधाओं में निर्भय और बंधनमुक्त होकर खूब लिखा है। उनकी इसी प्रवृत्ति के कारण ऐसे प्रयोगधर्मी रचनाकार को साहित्य जगत् में हाशिये पर रखा गया है।

कृष्ण बलदेव वैद का व्यक्तित्व अपनी आँच में तपा व्यक्तित्व है। ग्रीक-रोमन नायक की एक कथा-मूर्ति जैसे शरीर लेकर जन्मे वैद जी के चेहरे से तमाम असफलताओं के बावजूद एक विशिष्ट प्रकार का तेज छलकता था। इसका कारण शायद उनका निपट अकेला स्वभाव तथा प्रसिद्धि के 'चूहा दौड़' से खुद को बचाए रखकर अपना कार्य बिना किसी अभिलाषा के करते रहना हो सकता है। वैद जी के साहित्य की सही जाँच-परख एवं आलोचना किए बिना उनके साहित्य को पढ़ने के लिए 'अयोग्य' और 'अश्लील' कहकर नकार दिया गया। इसका और एक कारण उनकी प्रयोगधर्मिता बताया जाता है। उन्होंने अपने साहित्य में शिल्पगत तथा भाषागत नवीन प्रयोग किए। इन प्रयोगों को हिंदी साहित्य जगत् में अस्वीकार किया गया।

कोई भी व्यक्ति परिस्थिति के अनुसार बनता-बिगड़ता है। अर्थात् व्यक्ति के निर्माण में परिस्थिति का

योगदान महत्त्वपूर्ण होता है। देश-विभाजन ने कृष्ण बलदेव वैद को शारीरिक और मानसिक रूप से विभाजित कर दिया था। अपने देश और गाँव की दूरी का दर्द उन्हें हमेशा सताता रहा। उनका ज़्यादातर समय अध्ययन-अध्यापन के कारण विदेशों में ही गुज़रा है। इसी कारण उनके मन में संकोच वृत्ति आ गई। परिस्थिति ने उन्हें अन्तर्मुखी बना दिया। यही अन्तर्मुखी दृष्टि उनके साहित्य में देखी जा सकती है।

विभाजन से मिले दर्द तथा साहित्य जगत् से मिली उपेक्षा के कारण वैद जी का स्वभाव अन्तर्मुखी बन गया। अंतर्मन में बैठे चेतन-अचेतन की सहायता से आपने साहित्य रचा। वैद जी ने खुद को एक अन्तर्मुखी लेखक मानते हुए कहा कि - "मैं अपने आपको अन्तर्मुखी लेखक मानता हूँ। लिखने की प्रेरणा मुझे प्रायः अंदर के अंधेरे से ही मिलती है। अंदर जो उजाला है वह भी अंदर के अंधरे में डूबने पर नज़र आता है। बाहर का देखा-भोगा भी समय पाकर वहीं पहुँच जाता है - स्मृति और विस्मृति की भूलभूलैया में से होता हुआ अर्धचेतना या अचेतन का अंग बन जाता है।" अर्थात् वैद जी अपने अचेतन मन में छुपे भावों को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देने का प्रयास करते हैं।

एक अन्तर्मुखी लेखक की तरह वैद जी आत्म-विश्लेषक भी हैं। वे अपनी उलझनों, ऊब और समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए अपनी 'इंद्राज' (डायरियों का संबोधन) में खुद का आत्मविश्लेषण करते हैं। "मुझे बचाने, बचाए रखने में मेरे इस कच्चे और बेसब्र इंद्राज और आत्मविश्लेषण की भूमिका बड़ी और महत्त्वपूर्ण है।... शुरु से ही इसमें अपने खिलाफ़ हर किस्म की शिकायतों की भरमार है या फिर काम न कर सकने या न हो पाने का मलाल और वहाँ और यहाँ की रस्साकशी।... अपनी ऊब और बेज़ारी का माजरा। अपने बिखराव का हाल।" अर्थात् वैद जी आत्मविश्लेषण के द्वारा अपनी उलझनों का सामना करते हैं, अपने आपको टूटने से बचाते हैं। इस में अपने आप पर काबू पाने के लिए आत्मविश्लेषण वैद जी को ज़रूरी प्रतीत होता है। मन के भीतर के अंधेरों में उतरकर वे खुद का आत्मविश्लेषण अपनी डायरियों तथा समस्त साहित्य में करते हैं।

अध्ययन-अध्यापन के कारण आपका अधिकतर समय विदेशों में बीता। लेकिन वहाँ रहकर भी आपने हिंदी में अपने साहित्य की रचना की। विदेश में रहते हुए उन पर अनेक विदेशी लेखकों का प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव को उनके साहित्य पर कुछ अंशों तक देखा जा सकता है। इस प्रभाववश उनके साहित्य को हिंदी साहित्य जगत् में स्वीकृति नहीं मिल सकी। उन्हें नकारा गया। इस बारे में वैद जी का कहना है - "हम अपनी दुनिया के बेदीन बादशाह हैं और हिंदी साहित्य के सौतेले बेटे। वैसे हमारे खिलाफ़ कुछ लोगों की एक शिकायत यही है कि हमने अपनी सौतेली माँ को कभी-कभी यूँ देखा है, मानो वह हमारी महबूबा हो।" अर्थात् वैद जी ने अपने साहित्य में जो नवीन प्रयोग किए हैं, 'सेक्स' का जो खुला चित्रण किया है, हिंदी साहित्य जगत् ने उन्हें 'अश्लील' कहकर नकार दिया। उसे हाशिये पर रखकर उनके साथ सौतेले बेटे जैसा व्यवहार किया है।

कृष्ण बलदेव वैद ने हिंदी उपन्यासों तथा कहानियों के पूर्व प्रचलित ढाँचे को नकारकर साहित्य में शिल्पगत नवीन प्रयोग किए हैं। यह प्रयोग भाषा के स्तर पर भी देखे जा सकते हैं। भाषा में उर्दू-फ़ारसी तथा संस्कृत का मिश्रण उन्होंने बखूबी किया। उन्होंने कथा तत्व को ही नकारा है। उनके इस प्रयोगधर्मिता पर टिप्पणी करते हुए अशोक वाजपेयी लिखते हैं - "मुक्तिबोध की तरह कृष्ण बलदेव वैद एक गोत्रहीन लेखक हैं। उनका हिंदी साहित्य-परंपरा में कोई पूर्वज नहीं आता और उनके बाद उनका कोई वंशज नहीं आता। उन्होंने अपनी राह खुद चुनी - मुश्किल से उसे बनाया-सँवारा। उस पर वे अकेले, सब तरह के जोखिम उठाकर लगातार निर्भीक प्रयोगधर्मिता को बार-बार पुनराविष्कृत करते हुए चलते जा रहे हैं।"

अशोक वाजपेयी के इस मत को वैद जी कुछ अंश तक स्वीकार करते हैं। प्रकाश परिमल द्वारा एक

साक्षात्कार के उत्तर में वे कहते हैं - ''हर मॉडल की नकल आगे भी हो, यह ज़रूरी क्यों हो? मेरा यह कहना एक तरह से काफ़ी सेल्फ़ सर्विंग होगा कि, 'मैं ही ऐसा आदमी हूँ हिंदी में, जिसे समझा नहीं गया, जिसको सराहा नहीं गया' मैं ऐसा नहीं कहता। लेकिन अगर आपकी इस बात को मान भी लिया जाए, तो जिस तरह का मैं लिखता हूँ उसका कोई वंशज नहीं हो सकता, तो न हो।'' वैद जी इस बात की कोई परवाह नहीं करते कि उनके साहित्य को सराहा जाए, उसकी प्रशंसा की जाए। वे तो पहले से ही निपट अकेले हैं। प्रसिद्धि से कोसों दूर हैं। प्रसिद्धि के अनेक साधनों - सम्मेलन, आयोजन, पुरस्कार, मंच आदि से उन्होंने खुद को कोसों दूर रखा। अपने साहित्य-रचना के लिए उन्होंने जो राह बनाई, वह उनकी खुद की है। वे किसी परंपरा, वाद, प्रभाव से दूर रहकर अपना साहित्य कार्य निरंतर करते रहे। वैद जैसे राही का साहित्यिक हमसफ़र बनने का साहस हिंदी का कोई भी लेखक नहीं दिखा सकेगा।

कृष्ण बलदेव वैद पहले अध्ययन के लिए विदेश गए। अपने जीवन के 30-35 साल उन्होंने विदेश में गुज़ारे। इतना ही नहीं, वहाँ रहकर उन्होंने हिंदी में साहित्य की अनेक पुस्तकें लिखीं। वैद पश्चिमी साहित्य से प्रभावित थे, लेकिन उन्होंने पूर्णतः वह प्रभाव ग्रहण नहीं किया। वैद जी के साहित्य को लेकर समीक्षकों ने उनपर जो समीक्षाएँ कीं, उनमें उन्होंने उनके प्रयोगों, नवीन शिल्प एवं शैली तथा भाषागत प्रयोगों को लेकर, उनके साहित्य पर पड़े पश्चिमी प्रभाव आदि की चर्चा की है। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से जो अनुभव एकत्रित किए हैं, उन्हें अपने साहित्य में ऐसे ढंग से रचा है कि वे भारतीय लगे। इस बात को रमेश दवे जी के शब्दों में कहें तो - ''वे अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व में पूर्ण रूप से भारतीय हैं। जो स्वाभाविक अनुभव और चेतस भारतीयता वैद जी के कथा-साहित्य में हैं, उनसे लगता है कि भारतीयता का जो सृजन वैद जी ने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।'' इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में आलोचकों तथा पाठकों की उपेक्षा झेलते वैद जी जैसे साहित्यकार विदेश में रहते हुए भी - वहाँ से प्रभावित होते हुए भी - वहाँ की भाषा में साहित्य न लिखकर हिंदी भाषा में पूर्ण रूप से साहित्य की रचना करते हैं। इसलिए वैद जी का हिंदी व्यक्तित्व विदेश में रहते हुए भी अपनी भारतीयता को थामे हुए है।

अपने अनुभवों के आधार पर साहित्य जगत् में नए-नए प्रयोग करनेवाला प्रयोगधर्मी रचनाकार, प्रसिद्धि से सदैव दूरी बनाए रखने वाला रचनाकार, मुक्तिबोध की तरह गोत्रहीन रचनाकार एवं साहित्य जगत् में नई राह का अन्वेषी रचनाकार आज हमसे भले ही दूर हो गए हैं, परंतु 'उसका बचपन' हम साहित्य के माध्यम से आज भी जी सकते हैं। वैद जी द्वारा रचित 'काला कोलाज' एवं 'मायालोक' हमें आज भी लुभाते हैं। विभाजन से मिले 'दर्द ला दवा' को सह कर अपना 'गुज़रा हुआ ज़माना' याद करता 'बिमल...' आज साहित्य जगत् में 'दूसरा न कोई' है और न होने की संभावना है। उनकी 'नसरीन' या 'एक नौकरानी...' या हर 'नर नारी' सदैव स्मरण रहेगी।

dattafan@gmail.com

प्रो. विजय गंभीर : एक शैक्षिक जीवन-यात्रा

- प्रो. हेमंती बैनर्जी
फ़िलाडेल्फ़िया, अमेरिका

अमेरिका में दक्षिणी एशिया के भाषा-शिक्षण-प्रवर्तकों में से एक, प्रो. विजय गंभीर, 7 जून, 2021 को 75 वर्ष की आयु में हम सबसे सदा के लिए जुदा हो गईं। लगता है उनकी जीवन-यात्रा पूरी हो चुकी थी।

हिंदी भाषा-शिक्षण से लेकर शेष भारतीय भाषाओं तक का उनका योगदान असीम था। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा और उसके अधिग्रहण की शोध-सम्मत विधि के विषय पर लगभग आधी शताब्दी तक उनके अथक प्रयत्नों से अनेक परियोजनाएँ निष्पन्न हुईं। जब उन्होंने अपना शोध-कार्य शैक्षिक सम्मेलनों में प्रस्तुत किया, तो उससे हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाएँ भी लाभान्वित हुईं। प्रो. गंभीर ने भाषा-संबंधी अनगिनत कार्यशालाओं का देश भर में नेतृत्व किया और अपने सहकर्मियों और अगली पीढ़ी के शिक्षकों का मार्गदर्शन किया।

प्रो. गंभीर के हिंदी-शिक्षण की प्रक्रिया नई दिल्ली में स्थित अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़ में 1969 में प्रारंभ हुई। वहाँ अपने तीन वर्षों के अल्पकाल में वे उस कार्यक्रम की निदेशिका बन गईं और फिर 1973 में उन्हें अमेरिका में यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिल्वेनिया के दक्षिण एशिया विभाग से अमेरिका आने का निमंत्रण मिला। अमेरिका में आने के बाद दक्षिण एशिया विभाग में हिंदी-शिक्षण किया और साथ-ही-साथ उसी विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान विभाग से उन्होंने हिंदी भाषा में शब्द-क्रम के स्वातंत्र्य की सीमाओं का न्योम चोम्स्की के ढाँचे में विशद विश्लेषण करके अपना प्रबन्ध लिखा और पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। अपने प्रबन्ध में उन्होंने हिंदी के शब्द-कर्म और तज्जनित शब्द-विपर्यय के ऐसे मानक स्थापित किए, जिनका लाभ हिंदी शिक्षकों और शिक्षार्थियों के लिए भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे शोधों पर आधारित उनकी कार्यशालाओं से भाषा-शिक्षण का क्षेत्र पूरे देश में अधिकाधिक शिक्षार्थी-केन्द्रित होने के साथ-साथ भाषा-शिक्षण कक्षाओं में अनुप्रयुक्त आदर्श-पद्धतियों को अपनाने की दिशा में अग्रसर होने लगा। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण के मानक तो स्थापित हो ही रहे थे, परंतु उसका आनुषंगिक लाभ हिंदी से इतर अन्य भारतीय भाषाओं पर भी स्पष्ट रूप से मिल रहा था।

यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिल्वेनिया में अपने दीर्घ कार्यकाल (1973-2007) के दौरान प्रो. गंभीर दक्षिण-एशियाई भाषाओं की संयोजक रहीं और पेन्न लेंग्वेज सेंटर में कुछ समय तक भाषा-शिक्षण-विशेषज्ञ के रूप में निदेशिका रहीं। अपनी इन भूमिकाओं के माध्यम से यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिल्वेनिया की दक्षिण-एशियाई और दूसरी भाषाओं को विदेशी भाषा के रूप में विशिष्ट उच्च स्तर प्रदान करने में उनका योगदान स्मरणीय रहेगा। जिन विद्यार्थियों एवं सहकर्मियों ने उनके मार्गदर्शन में काम किया है, उनमें से कुछ आज दूसरे स्थानों पर अध्यक्षीय पदों पर आसीन हैं।

अमेरिका में विदेशी भाषाओं का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो प्रकार का है - एक वे भाषाएँ, जिनमें विद्यार्थियों की संख्या अधिक रहती है और जो अनेकानेक संस्थानों में पढ़ाई जाती रही हैं और दूसरी वे, जिनमें विद्यार्थियों की संख्या अपेक्षाकृत कम रहती है और जिनको पढ़ने-पढ़ाने की सुविधा कुछ सीमित संस्थानों तक ही सीमित

होती है। पहले वर्ग की भाषाओं में वर्षों से बहुत शोध होता रहा है और परिणाम-स्वरूप शिक्षण-विधियों और कक्षा में अनुप्रयुक्त श्रेष्ठ शिक्षण-प्रणालियों पर बहुत काम होता रहा है। उनके कार्यों से परिचित होकर प्रो. गंभीर ने हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को भी एक उच्च पटल पर लाकर खड़ा कर दिया। इस संदर्भ में प्रवीणता-उन्मुख (Proficiency Oriented) विधि में निष्णात होकर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के शिक्षण को एक नई दिशा देने का अभूतपूर्व आदर्श उन्होंने स्थापित किया।

वे अमेरिका के हिंदी शिक्षा-क्षेत्र में मौखिक प्रवीणता साक्षात्कार (Oral Proficiency Interview-OPI) की मानक और प्रमाणित विधि के माध्यम से किसी भी शिक्षार्थी की मौखिक प्रवीणता को मूल्यांकन-मापदंड (OPI Proficiency Guidelines) पर निश्चित कर सकने वाली सबसे पहली मूल्यांकन-कर्ता परीक्षक (टेस्टर) थीं। इस विधि में प्रमाणित होने के लिए एक्टफ़ल (अमेरिकन कौंसिल ऑफ़ द टीचिंग ऑफ़ फ़ॉरेन लेंग्वेजज़) नामक अमेरिका में पढ़ाई जाने वाली सभी विदेशी भाषाओं के विशालकाय संस्थान के द्वारा प्रमाणित होना अनिवार्य होता है। चूँकि हिंदी में प्रमाणित कर सकने वाला अभी तक कोई और व्यक्ति नहीं था, इसलिए प्रो. विजय गंभीर को एक विशिष्ट मार्ग से गुज़रना पड़ा। उन्होंने पहले अंग्रेज़ी में वह विशेषज्ञता प्राप्त की। अंग्रेज़ी में प्रमाणित होने के बाद उन्होंने विभिन्न स्तरों (Novice, Intermediate, Advanced, Superior) पर हिंदी में किए साक्षात्कारों को पहले टेपबद्ध किया और तब उनका विश्लेषण अंग्रेज़ी में प्रस्तुत किया। एक्टफ़ल की समिति ने उनके विश्लेषण-कार्य को उनके साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से समझा और सराहा, और परिणाम-स्वरूप उस विश्लेषण के आधार पर उन्हें हिंदी का राष्ट्रीय स्तर पर सबसे पहला मूल्यांकन-कर्ता परीक्षक (टेस्टर) और प्रशिक्षक (ट्रेनर) प्रमाणित किया। इसके बाद ही प्रो. विजय गंभीर के प्रयत्नों से हिंदी शिक्षार्थियों की मौखिक प्रवीणता के मूल्यांकन की परंपरा का अमेरिका में शुभारंभ हुआ। कुछ समय तक अंग्रेज़ी के मूल्यांकन-मापदंड का प्रयोग हिंदी के लिए किया जाता था। उसी कार्य को और अधिक बढ़ाने की दिशा में हिंदी का मूल्यांकन-मानदंड तैयार करने की बृहद् परियोजना बनी, जिसका राष्ट्रीय स्तर पर निदेशन प्रो. विजय गंभीर ने ही किया। इसी परियोजना के साथ-साथ हिंदी में मूल्यांकन-कर्ता परीक्षक (टेस्टर) और प्रशिक्षकों (ट्रेनरों) की एक नई पीढ़ी तैयार करने का काम भी शुरू हुआ और उस कार्य की निष्पत्ति एक मात्र प्रो. विजय गंभीर ही कर सकती थीं। उनके अथक प्रयासों के फलस्वरूप आज अमेरिका में पर्याप्त मूल्यांकन-कर्ता परीक्षक (टेस्टर) और प्रशिक्षक (ट्रेनर) हैं, जिसके कारण अमेरिका में हिंदी-शिक्षण की स्थिति सुदृढ़ हुई है और उसे शैक्षिक क्षेत्र में विशिष्ट सम्मान प्राप्त हुआ है।

उनके शैक्षिक कार्य में बृहद् अनुभव के कारण न केवल हिंदी के लिए एक्टफ़ल की मौखिक परीक्षा के मूल्यांकन की मार्गदर्शिका (ओ.पी.आई. गाइडलाइन्ज़) तैयार हुई, अपितु बंगाली, मराठी जैसी अन्य दक्षिण-एशियाई भाषाओं की गाइडलाइन्ज़ भी उनकी प्रेरणा से धीरे-धीरे बन गईं। एक्टफ़ल संबंधी उनके कार्य से हिंदी और अन्य दक्षिण-एशियाई भाषाओं को कक्षा में प्रयुक्त होने वाली श्रेष्ठ शिक्षण-विधियाँ और भाषा-मूल्यांकन के संबंध में भाषाई चर्चा करने के लिए एक स्पष्ट रूपरेखा और एक भाषिक ढाँचा भी तैयार हो गया।

वे दक्षिण-एशियाई भाषा शिक्षक-संघ (SALTA) के मूल संस्थापकों में से थीं। अमेरिका में हिंदी शिक्षकों का यह एक ऐसा मंच तैयार हुआ, जिसके माध्यम से हिंदी शिक्षक न केवल अपने विचारों और अनुभवों को अभिव्यक्त कर सकते थे, अपितु अपने शैक्षिक अनुभवों पर आधारित प्रगतिशील योजनाओं और सफलताओं को भी उजागर कर सकते थे।

प्रो. गंभीर स्वयं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का अध्यापन करती थीं। यह बहुत बड़ा कारण था कि उन्हें अपने अध्यापन और शोधकार्य को साथ-साथ परखने का मौका मिला। इस कारण से उनके अनेक शोध-पत्रों

का प्रकाशन हुआ। साथ-ही-साथ विविध शैक्षिक सामग्री (श्रवण-बोध, पठन-बोध, ऑनलाइन, व्याकरणिक) का निर्माण हुआ और शैक्षिक सम्मेलनों में भरपूर प्रस्तुतियाँ भी हुईं। उनके शोधकार्य से अमेरिका में दक्षिण-एशियाई भाषाओं के बारे में चिंतन और विचार-विमर्श बढ़ा। उनके प्रकाशित शोध-पत्रों में से कुछ मुख्य हैं –

1. Maintenance and Vitalization of Hindi in the United States
2. The Journey of Hindi in the United States
3. The Rich Tapestry of Heritage Learners of Hindi
4. A Closer Look at Authentic Materials in Less Commonly Taught Languages
5. A Paradigm Shift : South Asian Languages

वर्ष 2006 में प्रो. गंभीर ने एक्टफ़ल के सहयोग से एक और राष्ट्रीय समिति का नेतृत्व किया, जिसका उद्देश्य था हिंदी के लिए राष्ट्रीय मानकीय स्तरों (National Standards for Hindi) को तैयार करना। इसके लिए एक राष्ट्रीय समिति का गठन हुआ और प्रो. विजय गंभीर उस समिति की अध्यक्षा बनीं। उनके नेतृत्व में इस शोधकार्य के संपन्न होने के साथ ही शैक्षिक क्षेत्रों में हिंदी का सम्मान बढ़ा और भाषा-शिक्षण को संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत करने के लिए शिक्षकों और शिक्षार्थियों को एक नया परिप्रेक्ष्य भी मिला। इस प्रकार अमेरिका में अधिक संख्या में पढ़ने-पढ़ाने वाली भाषाओं (जैसे अंग्रेज़ी, फ़्रेंच, जर्मन) और अपेक्षाकृत कम संख्या वाली भाषाओं (जैसे चीनी, रूसी, अरबी) के वर्ग में हिंदी प्रतिष्ठित हो गई।

2007 में समय से पूर्व ही विश्वविद्यालय से सेवा-निवृत्ति लेने के बाद प्रो. गंभीर ने लगभग दस वर्षों तक अमेरिकी सरकार द्वारा स्टारटॉक कार्यक्रम के अंतर्गत नई पीढ़ी के स्कूल और विश्वविद्यालय के शिक्षकों के प्रशिक्षण में अपना विशिष्ट ज्ञान और अनुभव साझा किया। विविध स्टारटॉक कार्यक्रमों में उन्होंने पाठ्यक्रम विकसित करने से लेकर शिक्षक-प्रशिक्षण में अपना वर्षानुवर्ष योगदान दिया।

प्रो. गंभीर का योगदान हर क्षेत्र में उच्च-स्तरीय था, चाहे वह शिक्षण हो, प्रशिक्षण हो, शोध हो, शैक्षिक नेतृत्व हो या फिर व्यक्तिगत अथवा संस्थागत स्तर पर विश्वसनीय सलाहकार के रूप में उनका कार्य हो। उनका सौम्य, विनम्र और मैत्रीपूर्ण स्वभाव उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था और यही कारण था कि छोटे-बड़े सब उनसे बिना हिचक के अपनी समस्याओं के समाधान के लिए संपर्क करते थे। प्रो. विजय गंभीर राष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञों की बैठक में जितनी वैदुष्यपूर्ण विशेषज्ञता के साथ भाग ले सकती थीं, उतनी ही सरलता के साथ वे नए शिक्षकों को भाषा-शिक्षण की प्रारंभिक और आधारभूत अवधारणाओं को भी समझा लेती थीं। अमेरिका के दक्षिण-एशियाई भाषा-शिक्षण क्षेत्र में उनके कार्य और व्यक्तित्व का प्रभाव बहुत गहरा रहा है। अपने निकट के सहकर्मियों को समय-समय पर दिए परामर्शों के कारण और मैत्रीभाव से परिपूर्ण अपने व्यक्तित्व के कारण विजय जी का प्रभाव हम सब के लिए जीवन-पर्यंत स्मरणीय रहेगा।

मैं अपने सभी सहकर्मियों की ओर से प्रो. विजय गंभीर को प्रणाम करते हुए एक बार फिर कहना चाहती हूँ - प्रो. गंभीर जी धन्यवाद!

haimanti@wharton.upenn.edu

डॉ. वशिनी शर्मा : नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा

- श्रीमती सुनीता पाहूजा
मॉरीशस

डॉ. वशिनी शर्मा जी से मेरी मुलाकात कितनी बार हुई, सोचूँ, तो अंगुलियों पर गिन लूँ और फिर भी कुछ अंगुलियाँ बाकी रह जाएँ। लेकिन रिश्ता इतना गहरा था कि सच पूछो तो यह बात मायने ही नहीं रखती। गुरु सरीखी थीं, पर गुरुत्व का दंभ तो उनमें रत्ती भर भी न था! उम्र में बीस वर्ष के अंतर ने भी कभी सखी न होने का अहसास नहीं होने दिया। सच! उनसे जब भी मुलाकात या फ़ोन पर बात होती, हमेशा हिंदी के संवर्धन, विदेशी छात्र-छात्राओं को हिंदी सिखाने, प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण देने की योजनाएँ बनाना, काम कैसे करना है, क्या करना है और क्या-क्या नहीं करना, इत्यादि संबंधी चर्चा इतने सुरुचिपूर्ण ढंग से करतीं कि काम करने का उत्साह दोगुना हो जाता।

वशिनी जी से मेरी पहली मुलाकात वर्ष 2009 में डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा जी ने करवाई थी। त्रिनिडाड एवं टोबेगो स्थित भारतीय उच्चायोग में द्वितीय सचिव (हिंदी एवं संस्कृति) के पद पर मुझे शीघ्र ही कार्यभार ग्रहण करना था, इसी सिलसिले में वशिनी जी और मल्होत्रा जी के साथ मिलकर कुछ परियोजनाओं पर बातचीत हुई। उस दिन उनसे मिलकर लगा ही नहीं था कि किसी अनजान व्यक्ति से बातचीत हुई हो। त्रिनिडाड पहुँच कर यदा-कदा बातचीत हो जाया करती थी। और फिर उनके साथ मिलकर एक बड़ी उपलब्धि हासिल की, त्रिनिडाड के हिंदी शिक्षकों के लिए 9 अक्तूबर, 2010 को एक कार्यशाला का आयोजन, वह भी स्काइप के ज़रिए! उन दिनों यह आज की तरह आसान नहीं था, सोशल मीडिया के साधन तब सुलभ न थे। और फिर भारत और त्रिनिडाड के बीच समय का साढ़े नौ घंटे का अंतर था। लेकिन वशिनी जी का उत्साह तो देखते ही बनता था। पहला अवसर था, हम दोनों के लिए, प्रौद्योगिकी का ऐसा प्रयोग, पर अत्यंत सफल रहा और सराहा भी गया। फिर तो उनके साथ कई बार इस तरह की कार्यशालाएँ कीं।

भाषा प्रौद्योगिकी के प्रति उनका रुझान बहुत पुराना था। पुराने समय से ही केंद्रीय हिंदी संस्थान के भाषा लैब में उनकी बेहद रुचि थी। ऑडियो-विज़ुअल साधनों का प्रयोग उन्हें बहुत भाता था। उन्होंने हिंदी शिक्षण के लिए अनेक सी.डी. भी तैयार की थीं। काश आप देख पातीं कि आज ऑडियो-विज़ुअल साधनों का प्रयोग ऑनलाइन शिक्षण, कार्यालयों की बैठकों और वर्क फ़्रॉम होम इत्यादि के लिए कैसे किया जा रहा है, कैसे आज ये साधन कोरोना की चुनौतियों के बीच अवसर बनकर समय की सबसे बड़ी आवश्यकता बन गए हैं।

टेलीविजन को भाषा-शिक्षण के रूप में अगर कोई समझा तो वशिनी जी ने। चाहे वे ज्योतिष का कोई कार्यक्रम देखतीं या कोई कार्टून फ़िल्म; उनका ध्यान सदा भाषा पर केंद्रित होता। भाषा के सांस्कृतिक पक्ष पर भी आप अत्यंत गंभीरता से काम करती थीं। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में फ़िल्मों की भूमिका को भी वे बखूबी समझती थीं। संभवतः इसीलिए डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा जी का मानना है कि Edutainment - Educating through Entertainment की परिकल्पना जो उनके मन में आई, उसकी मूल प्रेरणा वशिनी जी ही थीं।

वर्ष 2019 में भारतीय उच्चायोग, मॉरीशस में द्वितीय सचिव (हिंदी एवं संस्कृति) के पद पर मेरा चयन हुआ। उन्हीं दिनों मेरे छोटे सुपुत्र की एक परीक्षा का केंद्र आगरा में पड़ा, तो मैंने भी उसके साथ चलने और वशिनी जी से मिलने का कार्यक्रम बना लिया। वे स्वयं मुझसे

मेरे होटल में मिलने आईं। उन्होंने काफ़ी देर तक मेरा मार्गदर्शन करते हुए अनेक मुद्दों पर चर्चा की। इसके बाद उनके सुपुत्र विक्रांत जी और पुत्रवधू दीपा जी अपने बच्चों के साथ आए और फिर वहाँ से हमने उडुपी में जाकर भोजन किया। उनके बच्चों और पोते-पोती के व्यवहार से मन इतना प्रफुल्लित था, इतनी आत्मीयता, इतने आदर-प्रेम से भरा स्नेहपूर्ण वातावरण ...बेमिसाल!

27 अक्टूबर, 2020 को मैं और मेरे पति मॉरीशस पहुँच गए, परंतु कोरोना प्रोटोकॉल के अनुसार 10 नवंबर, 2020 तक 14 दिन के लिए एक होटल में क्वारंटीन रहना था। इस दौरान वशिनी जी से अक्सर बातचीत हो जाती थी और अच्छी-खासी योजनाएँ बनाने लगे थे हम मॉरीशस में हिंदी शिक्षण के लिए।

2 जनवरी, 2021 को नववर्ष की शुभकामनाओं के बीच यह संदेश दिखाई दिया "सौम्य, शालीन और हिंदी के प्रति समर्पित और निष्ठावान विदुषी, केंद्रीय हिंदी संस्थान की पूर्व हिंदी प्रोफ़ेसर, प्रो. वशिनी शर्मा का हृदय गति रुक जाने से शनिवार, 2 जनवरी, 2021 को आगरा में देहांत हो गया"। दिल धक्क से रह गया, सहसा विश्वास नहीं हुआ। बीमार थीं यह तो पता था, पर फिर अस्पताल से घर भी लौट आई थीं। परंतु इस वज्रपात का तो कहीं खटका भी नहीं था मन में। प्रो. विजय कुमार मल्होत्रा जी से बात करके समाचार की पुष्टि तो हो गई, लेकिन दिल ने आज तक आसानी से स्वीकार नहीं किया है इस कठोर सत्य को।

रह-रह कर अनेक दृश्य आँखों के आगे चलचित्र की तरह तैर जाते हैं। बार-बार नज़रों के सामने आ जाता है - बालोचित उत्साह से पूर्ण उनका हँसता-मुस्कुराता चेहरा, जो उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी। उनके इस हँसमुख चेहरे के पीछे था - बहुत ही सुंदर, पवित्र हृदय! ईर्ष्या-द्वेष से कोसों दूर! बहुमुखी प्रतिभा की धनी होते हुए भी अत्यंत सहज-सरल! विदुषी भी, विनम्र भी! अपने सभी उत्तरदायित्वों और मित्रों के प्रति ऐसा समर्पण कि कभी किसी काम को 'न' नहीं करती थीं। उनके सहयोगियों का मानना है कि वे हर काम को बड़े ही उत्साह के साथ करतीं, चेहरे पर कभी शिकन नहीं!

प्रो. वशिनी शर्मा जी का जन्म कर्नाटक के हल्लीखेड नामक स्थान पर सन् 1944 में हुआ था, उन्होंने अपनी शिक्षा हैदराबाद और आगरा में पूरी की। उन्होंने हिंदी और भाषा विज्ञान में एम.ए. किया था और भाषाविज्ञान में पी.एच.डी.। बालभाषा विकास, वाक्-चिकित्सा, भाषा प्रौद्योगिकी, ई-लर्निंग और मीडिया के क्षेत्रों में उनकी विशेषज्ञता थी।

आप केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में प्रोफ़ेसर रहीं, शिक्षा विभाग, विदेशी विभाग और भाषा प्रौद्योगिकी विभाग की विभागाध्यक्ष रहीं। भारतीय एवं विदेशी छात्रों को हिंदी अध्यापन में आपका लगभग 35 वर्षों का अनुभव रहा।

केंद्रीय हिंदी संस्थान का मुख्य उद्देश्य प्रयोजनमूलक हिंदी को स्थापित करना है। इसी मूल उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आपने इस क्षेत्र में आरंभिक पाठ्यक्रम तैयार किए। आपने डॉ. जगन्नाथन जी के साथ मिलकर विदेशी छात्रों के लिए मानक पाठ्यक्रम तैयार करने में भी अहम भूमिका निभाई। विदेशी छात्रों के लिए ऑनलाइन कार्यक्रम भी तैयार किए, आज से कई साल पहले। आप सभी विदेशी छात्रों के साथ पारिवारिक संबंध बना लेती थीं, जिससे उन्हें घर जैसा वातावरण मिले। मुझे याद है कि जिस समय मुझे त्रिनिडाड जाना था, उस समय चल रहे सत्र में आए विद्यार्थियों में तीन त्रिनिडाड से थे। आपने उनसे मेरा परिचय करवाया, ताकि जब मैं नए देश में जाऊँ, तो कोई मेरी जान-पहचान का हो।

आपके सुपुत्र श्री विक्रांत जी का कहना है कि वर्ष 2006 में सेवानिवृत्त होने के बाद आपने कई गुना अधिक काम किया। सेवानिवृत होकर भी सेवा से निवृत्ति नहीं ली। जीवन के अंतिम 14 वर्षों में मानो आपको खुला आसमान मिल गया और पंछी की तरह उड़ान भरने लगीं।

प्रो. वशिनी जी ने कॉर्नेल विश्वविद्यलय के लिए Universals of Child Languages पर कार्य

किया, अमेरिका के व्हार्टन स्कूल के लिए बिज़नेस हिंदी परियोजना पर डॉ. सुरेंद्र गंभीर जी के साथ काम करते हुए, आपने इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, अंतरराष्ट्रीय मानक हिंदी पाठ्यक्रम पर कार्य किया। निकष योजना में भी आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

आपको हिंदी के अलावा उर्दू, तेलुगु, मराठी और अंग्रेज़ी का भी बहुत अच्छा ज्ञान था। तेलुगु में भी आप हिंदी जितनी दक्ष थीं और प्रवाहपूर्ण बोल लेती थीं। आपके पति महोदय संस्कृत और उर्दू, दोनों के विद्वान थे। आपने उनके साथ मिलकर हैदराबादी हिंदी-उर्दू शब्दकोश में भी अपना योगदान दिया। आपने भाषार्जन के साथ-साथ मनोभाषाविज्ञान पर भी काम किया। अपने पोते-पोतियों को कार्टून देखते हुए आप बारीकी से, बड़े गौर से उन्हें देखा करतीं कि Non-verbal communication कैसे प्रभावित करती है। आप बच्चों की भाषा की विशेषज्ञ भी थीं। वाक्दोष चिकित्सक के नाते आप बच्चों में हकलाने, तुतलाने आदि जैसी समस्याओं के समाधान भी सुझाती थीं।

आपने अनेक शोध लेख लिखे, देश-विदेश में अनेक मंचों पर अपने आलेख प्रस्तुत किए, लंदन में आपके द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र का बड़े ज़ोर-शोर से स्वागत हुआ था। आपने 8वें, 9वें और 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन में आलेख प्रस्तुत किए। 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के अलावा आपने अन्य सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों में अपने खर्चे पर प्रतिभागिता की। अमेरिकी सरकार द्वारा युवाओं के लिए गर्मी की छुट्टियों में चलाए जाने वाले स्टारटॉक कार्यक्रम में भी आपको आमंत्रित किया गया था, जिसमें शिक्षण-सामग्री, शिक्षण-प्रणाली पर विस्तृत चर्चा कर आपने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। आपने सदैव निष्काम, निस्वार्थ भाव से काम किया और आपको कभी किसी पुरस्कार का प्रलोभन नहीं रहा।

आपके प्रकाशनों में शामिल हैं - केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा का अंग्रेज़ी-हिन्दी अभिव्यक्ति कोश, विश्व भाषा हिंदी (सं.), गवेषणा संचयन (सं.), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से पुरस्कार प्राप्त मनोभाषा विकास। आप महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से प्रकाशित प्रवासी भारतीयो में हिन्दी की कहानी की सह-संपादिका थीं।

अक्तूबर 2019 में प्रो. सुरेन्द्र गंभीर के साथ मिलकर लिखा आपका लेख 'भारतीय संस्कृति की वाहक हिंदी की गिरमिटिया देशों की यात्रा' पुस्तक भारती में प्रकाशित हुआ। वर्ष 2019 में ही आपकी 'हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप - ई-बुक' प्रकाशित हुई, जिसमें वैश्विक संदर्भ में हिंदी और उसमें रोज़गार की समस्याओं के बारे में बताया गया है। आप अपने 'अस्मि' ब्लॉग पर भी नियमित रूप से लिखती थीं। शायद ही कोई विषय होगा, जो अछूता रह गया आपके इस ब्लॉग पर। हिंदी-शिक्षण की जो नई-नई तकनीकें आपकी जानकारी में आतीं, उन्हें आप सबके साथ साझा करना चाहती थीं। इसी क्रम में आपने 'हिंदी शिक्षण बंधु' नामक वेब मंच का गठन किया, जिसमें 800 से भी अधिक शिक्षकों को जोड़ा। आपने ABC नाम से 'आगरा बुक्स क्लब' भी बनाया। अध्ययन-अध्यापन और लेखन के साथ-साथ संस्कृति, मित्र मंडली और फ़िल्मों में भी गहरी रुचि थी आपकी। आपने हमेशा फ़िल्मों को मनोरंजन से बढ़कर शिक्षण सामग्री के तौर पर प्रयोग किए जाने पर बल दिया। इसके लिए आप गीतों का बखूबी प्रयोग करतीं। आप स्वयं भी एक अच्छी गायिका थीं, आपने गीता दत्त के साथ भी गीत गाया था। आप नया सीखने के लिए हमेशा तत्पर रहती ही थीं। आपका मानना था कि सीखने की कोई उम्र नहीं होती, आप जिस भी काम में हाथ डालतीं, पूरे मनोयोग से लग जातीं, धुन और हुनर की पक्की, सबको साथ लेकर चलना, मान देना आपके सहज गुण थे। सबको सुनने का धैर्य था आपमें, उम्र में छोटे को भी आप ध्यान से सुनतीं और परिष्कार का प्रयास करतीं।

प्रो. वशिनी शर्मा जी की पुण्यस्मृति को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए मॉडलिंग्वा मंच और केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा 16 जनवरी, 2021 को आयोजित एक

ई-संगोष्ठी में वशिनी जी के चार से भी अधिक दशकों तक साथ रहे उनके सहकर्मी विद्वानों ने भी भाग लिया। डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा जी ने उनकी बालसुलभ जिज्ञासा के गुण की ओर इंगित करते हुए बताया कि उन्होंने हैदराबाद में उनके साथ मिलकर रेलवे के उद्घोषकों और चल टिकट निरीक्षकों को हिंदी का शुद्ध उच्चारण करने के लिए विशेष पाठ्यक्रम तैयार किये थे। हिंदी के वरिष्ठ प्रोफ़ेसर डॉ. जगन्नाथन जी ने बताया कि संस्थान के हैदराबाद केंद्र द्वारा संचालित नवीकरण पाठ्यक्रमों में नवप्रवर्तन को शामिल करने में वशिनी जी की विशेष भूमिका रही। उन्होंने अनेक भाषा खेल बनाए। डाकियों के लिए भी पाठ्यक्रम चलाए, ताकि वे हिंदी में लिखे पते पढ़ सकें। प्रो. जगन्नाथन जी की आरंभिक पुस्तक 'प्रयोग और प्रयोग' में सम्मिलित हैदराबादी हिंदी पर लिखे उनके लेख की चर्चा करते हुए केंद्रीय हिंदी संस्थान के आई.टी. के प्राध्यापक श्री अनुपम श्रीवास्तव ने इसे एक शोधपरक लेख बताया। संस्थान की निदेशक प्रो. बीना शर्मा ने उन्हें अजातशत्रु के रूप में याद किया और साझा किया कि जब उन्होंने वशिनी जी से उनकी कविता अहिल्या के बारे में पूछा था, तो उन्होंने कहा था कि अहिल्या को बचाने तो राम आ गए थे, परंतु आज की नारी का उद्धार तभी होगा जब वह स्वयं में विश्वास रखे और स्वावलंबी बने।

वशिनी जी का जीवन दर्शन उनकी इन पंक्तियों में स्पष्ट झलकता है -

"मैं क्या हूँ / जन्म लेना और पलना मेरे हाथ में नहीं था / पर खूब प्यार से पली / कोई दुख-दर्द नहीं / एक प्रेमिल मन के हाथों आँचल इतना भरा कि सब कुछ भीग गया / लिखना कम पढ़ना अधिक / साहित्य से अच्छे पाठक का नाता बना रहा / अभी भी बना हुआ है / नारी मन को समझने का प्रयास मात्र / और क्या"

तमाम व्यस्तताओं और जीवन के झंझावातों के बीच भी आप सदैव मुस्कुराती रहतीं, अपने हर काम के प्रति आपकी लगन और परिवार के प्रति समर्पण अत्यंत प्रेरणादायी हैं। भले ही आप दैहिक रूप में मौजूद न हों, पर आपके काम सदा आपको हमारे दिलों में जीवित रखेंगे और प्रेरणा देते रहेंगे।

वशिनी जी की पुण्यस्मृतियों को नमन करती हूँ और स्वयं से प्रण करती हूँ कि उनके कामों को पूरा करने में यथासंभव सहयोग दूँ, यही मेरी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

spahuja231@gmail.com

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423, मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius

फ़ोन / Phone: 00-230-6600800
ई-मेल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website: www.vishwahindi.com *** डेटाबेस / Database: www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications PVT LTD, Hindi Book Centre, New Delhi - 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइनर : Cathay Printing Ltd.,
La Tour Koenig Industrial Zone, Pointe aux Sable 11109, Mauritius
Tel: +230 234 2668, Fax: +230 234 2828